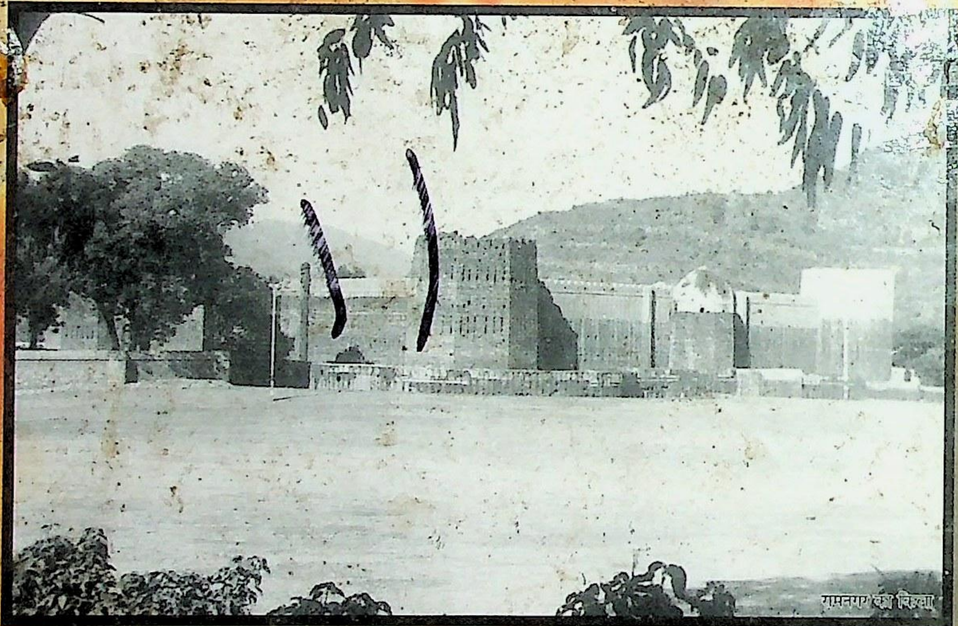
डुग्गर का इतिहास


रामनगर का किला

-शिव निर्मोही

S.K. KAPOOR

वेद मंदिर पुस्तकालय के लिए
लेखक की भेंट

— [illegible]

11.04.2000

डुग्गर का इतिहास

शिव "निर्मोही"

प्रकाशक

शिवालिक प्रकाशन, पैंथल (उधमपुर)

प्रकाशन वर्ष : 1998

प्रकाशक : शिवालिक प्रकाशन, पैंथल (उधमपुर) जे एंड के

मुद्रक : क्लासिक प्रिंटर्ज, नेशनल हाइवे, बाड़ी ब्राह्मणां, जम्मू, फोन (01923) 20243

मूल्य : 30 रुपये

इस पुस्तक के प्रकाशनार्थ लेखक ललित कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी जम्मू कश्मीर से प्राप्त आर्थिक सहायता के लिए आभारी है। पुस्तक के गुण-दोषों से अकादमी का कोई सम्बन्ध नहीं। पुस्तक में प्रकाशित सामग्री का दायित्व लेखक पर है।

पूर्व कथन

'डुग्गर का इतिहास' हिन्दी में लिखी गई पहली पुस्तक है। मैंने यह पुस्तक उन पाठकों के लिए लिखी है, जो कई वर्षों से स्थानीय इतिहास को हिन्दी के माध्यम से जानना चाहते थे किन्तु हिन्दी में पुस्तक उपलब्ध नहीं थी। मैंने इस पुस्तक को लिख कर उस अभाव को दूर करने का प्रयास किया है।

यह पुस्तक इतिहास के विद्वानों, शोध-कर्ताओं की आवश्यकता को पूरा नहीं कर सकेगी। मैंने यह पुस्तक उनके लिए लिखी है जो इतिहास को लोककथाओं की भांति पढ़ने और सुनने के अभ्यस्त हैं। मैंने इस पुस्तक की भाषा इतनी सरल रखी है कि हिन्दी का साधारण विद्यार्थी भी इसे सुगमता से पढ़ सकता है।

इस पुस्तक के द्वारा डुग्गर के राजाओं और महाराजाओं की केवल गाथाएं लिखना ही मेरा उद्देश्य नहीं है, मैंने यह प्रयास किया है कि इस पुस्तक के द्वारा पाठकों को डुग्गर के अतीत का दिग्दर्शन कराया जाए।

इस पुस्तक को लिखने से पूर्व मैंने डुग्गर के ऐतिहासिक स्थानों की स्वयं यात्रा की और चनैनी, रियासी, रामनगर, जसरोटा, पंचारी आदि स्थानों में स्थानीय इतिहास तथा संस्कृति पर संगोष्ठियां आयोजित करवा कर स्थानीय लोगों से सामग्री संकलित की ।

इतिहास मेरा विषय नहीं है किन्तु मान्यवर डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क जी के सम्पर्क में आने के बाद मेरी इस विषय में रुचि बढ़ी है। उनके मार्ग-दर्शन में मैंने डुग्गर के इतिहास पर शोध कार्य आरम्भ किया है।

मैंने इस पुस्तक में डुग्गर की वास्तुकला, चित्रकला, मूर्तिकला आदि पर विशेष चर्चा इसलिए नहीं की क्योंकि इस विषय पर मेरी पुस्तक 'डुग्गर की संस्कृति' पहले से ही प्रकाशित है।

मैं डॉ० सुभाष शर्मा, डॉ० हरि ओम, डॉ० निर्मल सिंह, डॉ० अनीता बलौरिया का आभारी हूं जिन्होंने यह पुस्तक लिखने में मेरी सहायता की है।

❑❑❑

विषय सूची



पहला अध्याय

डुग्गर के लोग

सांस्कृतिक दृष्टि से डुग्गर प्रदेश, भारत के उत्तर में अवस्थित वह पर्वतीय भूखण्ड है जिसके अन्तर्गत जम्मू कश्मीर राज्य के जम्मू मंडल, पंजाब के होशियारपुर और गुरदासपुर जनपदों के पर्वतीय क्षेत्र, हिमाचल प्रदेश के कांगड़ा, चम्बा, मंडी, बिलासपुर और हम्मीरपुर क्षेत्र तथा पाकिस्तान स्थित सियालकोट और जफरवाल तहसील के एक सौ सोलह गाँव परिगणित होते हैं।

किन्तु भारत विभाजन के बाद और भारत में राज्यों के पुनर्गठन के पश्चात् अब केवल जम्मू प्रान्त ही डुग्गर का पर्यायवाची माना जा रहा है।

विश्व मानचित्र में जम्मू प्रान्त भूमध्य रेखा से सवा बत्तीस से सवा चौंतीस अंश उत्तर से एवं प्रधान मध्याहन रेखा से साढ़े तिहत्तर अंश पूर्व से साढ़े छिहतर अंश पूर्व के बीच स्थित है।

इस क्षेत्र के पश्चिम एवं दक्षिण पश्चिम में पाकिस्तान, उत्तर में कश्मीर घाटी, पूर्व में लद्दाख का लेह जनपद दक्षिण में पंजाब और हिमाचल प्रदेश के राज्य स्थित हैं। यह क्षेत्र 26,089 वर्ग किलोमीटर क्षेत्रफल पर फैला हुआ है। इस का कुछ पश्चिमी भाग पाक अधिकृत कश्मीर के अवैध कब्जे में है।[1]

लोक परम्परा के अनुसार यह क्षेत्र तीन खण्ड़ों में विभाजित है और वे हैं– पहाड़, डुग्गर और चिभाल। किन्तु भूगर्भ शास्त्रियों ने मैदानखंड, शिवालिक पर्वत श्रेणी खंड तथा मध्य हिमालय या पर्वतीय खण्ड ये तीन विभाग धरातल के अनुरूप विभक्त किए हैं।

मैदानी प्रदेश वास्तव में पंजाब के मैदान का ही प्रक्षिप्त भाग है। यह नदी निर्मित जलोढ़ मैदान है जो इस भाग में रावी और चिनाव नदियों तथा उनकी सहायक नदियों– उज्झ, बसन्तर, देवक, जम्मू तवी, मनावर तवी आदि द्वारा लाई गई सामग्री के निक्षिप्त होने से बना है। यह सात किलोमीटर से 32 किलोमीटर तक चौड़ा है और इसकी औसत ऊँचाई सागर सतह से 325 से 350 मीटर तक है। इसका सर्वाधिक विस्तार अखनूर, रणवीर सिंह पुरा, साम्बा, हीरा नगर और कठुआ तहसीलों में हैं।

शिवालिक पहाड़ियों का विस्तार रावी और जेहलम नदियों के बीच दो सौ किलोमीटर तक पाया जाता है। इस खण्ड की औसत चौड़ाई बीस से पचास किलोमीटर तक तथा सागर सतह से ऊंचाई 600 से 1200 मीटर तक है। इसी पर्वत क्रम में मानसर और सरूईंसर झीलें स्थित हैं। इस क्षेत्र में बसोहली, रामकोट, डनसाल, कोटली,

संडरबनी की दून वादियां है।

मध्य हिमालय तथा लघु हिमालय का क्षेत्र पुंछ, राजौरी, डोडा तथा ऊधमपुर के कुछ भागों में परिव्याप्त है। सागर तल से इसकी ऊँचाई 1800 मीटर से लेकर 2500 मीटर तक है। इस खण्ड के पर्वत पूर्वी भाग में 60 किलोमीटर चौड़े हैं और जम्मू क्षेत्र के पश्चिमी भाग में मात्र दस किलोमीटर चौड़े हैं।

जलवायु की दृष्टि से यह क्षेत्र उपोष्ण आर्द्र प्रकार का है। यहां ग्रीष्मकालीन तापमान 35^0 से 40^0 सैलसियस तक और शीतकाल में 10^0 से 15^0 सैलसिस तक रहता है। जम्मू क्षेत्र की औसत वार्षिक वर्षा 12 सैंटीमीटर के लगभग होती है।

यह क्षेत्र खनिज सम्पदा से समृद्ध है। देवदार, चीड़, फर, सिल्वर, वेर, किकर, सप्रूस लारेल के अतिरिक्त पौष्टिक घास और अनेक प्रकार की जड़ी-बूटियां तथा अन्य प्राकृतिक वनस्पतियाँ यहां उपलब्ध हैं।

भूगर्भ शास्त्रियों के अनुसार डुग्गर प्रदेश अति प्राचीन है। वैज्ञानिकों का अभिमत है कि मध्य ऊषाकालीन युग के अन्तिम दस लाख वर्ष पूर्व इस क्षेत्र का जन्म हुआ। मानव विकास शास्त्रियों का मत है कि आज से लाखों वर्ष पूर्व यहाँ प्राणी का निवास हो चुका था। वैज्ञानिकों को हरितल्यानगढ़ से जो पशु जबड़ा प्राप्त हुआ है वह अस्सी लाख वर्ष पूर्व का है। इसी प्रकार कठुआ जनपद में रावी नदी के निकट जो पाषाण पत्थर प्राप्त हुए हैं वे चार लाख वर्ष पुराने बताये जाते हैं। इसी तरह के पाषाण शस्त्र गुलेर और नालागढ़ से भी प्राप्त हुए हैं। जिन से यह अनुमान सहज में लगाया जा सकता है कि यह क्षेत्र लाखों वर्ष पूर्व मानव का निवास रहा है।

डुग्गर क्षेत्र में चन्द्रभागा नदी के दोनों किनारों पर आदि हड़प्पा तथा हड़प्पा संस्कृति के अवशेष भी मिले हैं जिससे यह विदित होता है कि इस क्षेत्र में आज से चार-पांच हज़ार वर्ष पूर्व नदियों के तटों के निकट मानव बस्तियाँ स्थापित हो चुकी थीं। और इन बस्तियों के संस्थापक डुग्गर के मूल निवासी ही माने जा सकते हैं। डुग्गर के मूल निवासियों के विषय में भिन्न-भिन्न विद्वानों के मत भिन्न-भिन्न हैं। कई विद्वानों ने नागों को इस क्षेत्र का मूल निवासी माना है तो कईयों का अभिमत है कि किरात इस क्षेत्र के आदिवासी थे। नागों की ही भांति यक्ष- पिशाच आदि प्राक्-ऐतिहासिक जातियां भी इस इलाके में निवास करती थीं।

किन्तु ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में डुग्गर की जिस जाति की सर्वाधिक चर्चा हुई है वह खस जाति है। डाक्टर सुखदेव सिंह चाड़क का मत है कि खसों से भी पूर्व औदुम्बर,

---

1. जम्मू प्रान्तीय भौगोलिकता-डॉ॰ सुखदेव सिंह चिब।

2. वही।

शलव और मद्र इस क्षेत्र के निवासी बन चुके थे। यदि यह सही है तो यह मानना पड़ेगा कि खसों ने इस क्षेत्र में पदार्पण करने के बाद औदुम्बर, शलव और मद्र जाति के लोगों को इस क्षेत्र से भगा दिया या उनको अपने अधीन किया।

औदुम्बर विख्यात योद्धा शल्वों की छह उप जातियों में से एक थे। वे अपने आपको विश्वामित्र का वंशज मानते थे। इन का मुख्य केन्द्र गुरदासपुर था। इनके सिक्के पठानकोट, नूरपुर और हम्मीरपुर से प्राप्त हुए हैं। औदुम्बर कभी रावी नदी के पश्चिम भाग में आये हों, ऐसा इतिहास में कोई प्रमाण नहीं मिलता। इसी प्रकार शल्वों का क्षेत्र भी डुग्गर के बाहर रहा है। सम्भव है कि उन्होंने कभी इस ओर आने का प्रयास किया हो, किन्तु वे यहाँ टिक नहीं पाये।

खस लोग, डुग्गर के मूल निवासी हैं या बाहर से आये, इस प्रश्न के उत्तर में इतिहासकार एक मत है।

वे मानते हैं कि खसों का मूल निवास स्थान पूर्वी मध्य एशिया था और पर्वतों को फांदते हुए ये लोग हिमालय क्षेत्र में आज से लगभग चार हज़ार वर्ष पूर्व आये। ये ठंडे प्रदेश के थे। अत: पर्वतों की तलहटियों में बस गए।

खसों के कद लम्बे, शरीर सुगठित, रंग साफ और नक्श तराशे हुए होते थे। उनकी स्त्रियां भी लम्बी, पतली और सुन्दर होती थीं। ये लोग बड़े पराक्रमी, वीर और उद्यमी थे। इनके स्वभाव में कुछ अक्खड़पन, कुछ जड़ता थी और लचक का प्राय: इन में अभाव था। इन्होंने डुग्गर प्रदेश में प्रवेश करते ही किरात, कोली आदि स्थानीय लोगों की बस्तियां छीन लीं और मूल निवासियों को उनके क्षेत्र से भगा दिया।

खसों का उल्लेख कल्हण कृत राजतरंगिणी में भी कई बार हुआ है। राजतरंगिणी की पाँचवी तरंग में वाद्दिवास के गाँव के निवासी वाण के पुत्र तुंग को खस कहा है। इसी प्रकार सातवीं तरंग में खसराज का उल्लेख, आठवीं तरंग में खसों की निवास भूमि वीरानक (बनिहाल), इसी तरंग में खसाधीश टिक्क और सोमपाल का वर्णन यह सिद्ध करता है कि खस जाति कश्मीर घाटी के बाहर पीर पंचाल पर्वत शृंखला के साथ-साथ निवास करती थी। पुंछ और राजौरी का क्षेत्र खसों का मुख्य केन्द्र था और उधमपुर की पहाड़ियों से लेकर समस्त डोडा जनपद में खसों को बास्तियां थी। आज भी जेहलम तथा रावी नदी तक जो डुग्गर का पहाड़ी क्षेत्र है, खसों का निवास स्थान माना जाता है।

खसों के साथ-साथ किरात भी इस पूरे क्षेत्र में रहते थे। ये लोग सभ्यता में खसों से काफी पिछड़े हुए थे, अत: ये विकास की दौड़ में बहुत पीछे रह गये। किरात लोगों की कई उपजातियां यथा गैन, तेआर नदियाल, सरेआर आज मुख्य रूप से पर्वतीय क्षेत्र में ही रहती है। इनका रंग काला, कद दर्म्याना और शरीर पतला था। इनका मुख्य

व्यवसाय ढोल पीटना पशुचारण, तथा कृषि था। ये लोग मृत पशुओं का मांस खा जाते थे। हस्त शिल्प में दक्ष थे और छोटी-छोटी बस्तियों में रहते थे। डुग्गर की डोम जाति की परिगणना भी कई विद्वान किरात जाति के अन्तर्गत करते हैं किन्तु लाल चंद प्रार्थी ने उन्हें डामर कबीले से सम्बद्ध माना है।

डुग्गर की एक और जाति जिस का उल्लेख लोककथाओं और दन्तकथाओं में आता है वह 'मेघ' है। डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क का मत है कि मेघ जाति के लोग केवल डुग्गर में ही रहते हैं। अत: सम्भावना की जा सकती है कि ये खसों के साथ या उनसे भी पहले इस क्षेत्र में आये हों। इन की गणना, किरात जातियों के अन्तर्गत नहीं की जा सकती है क्योंकि इनकी जीवन शैली में शमान संस्कृति के चिह्न नहीं मिलते। मेघ कबीले के लोगों का रंग गेहूंआ और कद किरातों से कुछ बड़ा है। इन्होंने रावी नदी से लेकर मनावर तवी के मध्य कई बस्तियां बसाईं और डुग्गर की अधिकांश भूमि पर आधिपत्य स्थापित किया। ये कृषि कर्म में बहुत रूचि लेते थे और पशु चारण भी इनका व्यवसाय था। किरात कबीले की उपजातियाँ इन्हें अपने से श्रेष्ठ मानती थी, अत: ये लोग उनके लिए पूज्य रहे हैं।

खसों के आगमन के बाद आर्य जाति की कई शाखाएं इस क्षेत्र की ओर उन्मुख हुई । उनके लिए यह क्षेत्र आकर्षण का केन्द्र इस लिए बना क्योंकि यहां पशुचारण के लिए उत्तम घाटियाँ और पर्याप्त जल स्त्रोत थे। आर्य इस इलाके में सहज नहीं आ पाये। उन्हें इस भूमि में पदार्पण करने के लिए कड़ा संघर्ष करना पड़ा और सम्भवत: उसी का परिणाम दशराजन लड़ाई थी जो आर्य राजा सुदास और दस्यु (किरात) सरदारों के मध्य रावी नदी के पश्चिमी तट पर लड़ी गई। दस्यु सरदारों ने आर्यों को रोकने का भरकस प्रयास किया किन्तु रावी नदी में बाढ़ आ जाने के कारण उनके साथी बह गये और वे पराजित हो गए।

डुग्गर के आदि वासी आर्यों के आगमन से पूर्व अपनी सुरक्षा के लिए कोट बना कर रहते थे। कोट प्राय: एक प्रकार से किला होता था जो बस्ती के लोगों की आपद-काल में रक्षा के लिए निर्मित किया जाता था। यह कोट प्राय: ऊँचे पर्वतीय शिखर पर बनाया जाता था या मैदानी इलाके में बस्ती के चारों और पत्थर की दीवार खड़ी करके तैयार किया जाता था। आर्यों के आगमन के पूर्व इस क्षेत्र में प्रत्येक बस्ती का अपना कोट होता था। यदि निकटवर्ती बस्तियें एक ही कबीले के लोगों की हों तो वे मिल कर 'गढ़' का निर्माण करते थे। गढ़ कोटों का समूह होता था।

आर्यों ने रावी नदी को पार करने के बाद सब से पहले यहाँ के आदि- वासियों के कोट विनष्ट किये। वैदिक साहित्य में यह उल्लेख मिलता है कि आर्यों ने दस्युओं के

सौ कोट विनष्ट किये। आर्य धीरे-धीरे इस प्रदेश में आगे बढ़े। उन्होंने रावी नदी से लेकर चन्द्रभागा नदी की सुन्दर घाटियों पर पहले अपना आधिपत्य स्थापित किया। खसों और आर्यों में टकराव की स्थिति बहुत कम आई क्योंकि वे पहले ही इतने ऊँचे पहाड़ी इलाके में निवास कर रहे थे यहाँ आर्यों का पहुँचना सरल नहीं था।

ऋग्वेद के नदी सूत्र में इस प्रदेश की नदियों का वर्णन मिलता है। इस में जिन नदियों का उल्लेख हुआ है वे हैं- असिक्नी (चन्द्रभागा) मरुद् वृधा (किश्तवाड़ की नदी), अंजसी (रियासी के निकट प्रवाहमान अंजी नदी) वीर पत्नी (वटोत की नदी), आदि। इससे इतना स्पष्ट हो जाता है कि जिस समय ऋग्वेद लिखा गया उस समय में या उससे भी कुछ समय पहले आर्य इस प्रदेश में पदार्पण कर चुके थे।

आर्यों की जिन शाखाओं ने डुग्गर प्रदेश को अपना निवास स्थान बनाया उनका पूरा ब्योरा हमें ज्ञात नहीं है। केवल दो ही वैदिककालीन जातियें डुग्गर में ऐसी हैं जिनका उल्लेख यर्जुवेद की माध्यदित संहिता के अध्याय सोलह में हुआ है वे हैं- नादेय और द्रुहयु। नाद का व्याकरण में अर्थ है नदस्य एवं नादेय अर्थात् जो नद से सम्बन्धित हो। डुग्गर में नादेय को अब नाद कहा जाता है। इस जाति के लोग चन्द्र-भागा नदी के दोनों ओर अखनूर के निकट रहते हैं। सम्भवत: पहाड़ी क्षेत्र में 'नदियाल' कबीले के लोग भी कभी इसी जाति से सम्बन्धित रहे हों। वैदिक युग की दूसरी जाति द्रुहयु का विकृत रूप द्रोड़ा है। इस जाति के लोग त्रिकूटा पहाड़ के निचले भाग में रहते हैं। भद्रवाह क्षेत्र की बोली में वैदिक शब्दों की प्रचुरता को देख कर कई विद्वान यह अनुमान लगाते हैं कि यहां के मूल निवासी किसी वैदिक जाति का ही विकसित रूप हैं।

आर्यों के बाद इस क्षेत्र में शक, कुषाण और हूण आये। शक मूलत: मध्य एशिया के निवासी थे। ईसा पूर्व पहली शताब्दी में हूणों से पराजित होकर वे भारत आये। उन्होंने भारत में मथुरा, तक्षशिला और उजैयिनी में अपने राज्य स्थापित किये किन्तु गुप्तों ने उन्हें वहां से भगा दिया और यह आश्रम ढूंढ़ने के लिए हिमालय पहाड़ के भिन्न-भिन्न भागों की ओर भागे। शक कबीले की कई शाखाएं डुग्गर के पहाड़ी क्षेत्र की ओर भी आईं और इन्होंने इस क्षेत्र में कई बस्तियाँ बसाईं। अनुमान है कि पहाड़ों में जो ठाकुर लोग रहते हैं उनमें से कई शकों के वंशज हैं। डुग्गर के इतिहास में जिस शाक्य जाति का उल्लेख मिलता है सम्भव है वह शक का ही आदि रूप हो।

शकों के बाद इस प्रदेश में कुषाण आये। यह लोग शकों की ही दूसरी शाखा के थे। इस जाति के लोगों ने इस भूखंड पर कोई विशेष प्रभाव नहीं डाला और वे स्थानीय लोगों से घुल-मिल गए। हूण भी इस क्षेत्र में आये वे शक और कुषाण कबीले के लोगों के सन्मुख अधिक समय तक टिक न सके और कुछ समय के लिए पहाड़ों में रहने के

बाद यहां से पलायन कर चले गए।

डुग्गर में मद्र जाति की उपस्थिति का प्रमाण पद्म पुराण का पाताल खंड है जिस में यह स्पष्ट उल्लेख मिलता है कि डुग्गर के अधिकाँश क्षेत्र पर मद्र कबीले का आधिपत्य था। पद्म पुराण का रचना काल सम्भवत: आठवीं शताब्दी लगता है उस समय यह जाति इस क्षेत्र में बस चुकी थी या उस जाति का अधिकार इस क्षेत्र पर हो चुका था।

मद्र जाति का मुख्य केन्द्र सियालकोट नगर था। इस का एक प्रमुख साल- वाहन था जिसके विषय में कहा जाता है कि उसने दसवीं शताब्दी के लगभग पौनी की पहाड़ियों में एक दुर्ग निर्मित किया। वैसे इतिहासकार मद्र लोगों को पौराणिक मानते हैं क्योंकि उनके जनपद का उल्लेख महाभारत में भी मिलता है। इतिहास का अनुशीलन करने से लगता है कि मद्र डुग्गर के निवासी ही नहीं अपितु शासक भी थे। जम्मू के नीचे का मैदान उनके अधिकार में था। लगता है कि मद्र, शक, कुषाण और हूणों से पूर्व इस क्षेत्र में आ चुके थे।

डुग्गर में बाहर से आने वाली जातियों में एक और महत्वपूर्ण जाति टक्क थी। इस जाति के सम्बन्ध में संस्कृत साहित्य में सब से पहले चर्चा वात्स्यायन ने की थी। उसके अनुसार सिंध सहित पंजाब के पांच मिलाकर छह वादियों के ऊपरी तथा मध्यवर्ती क्षेत्र में टक्क रहते थे। एक चीनी यात्री जो हर्षवर्धन का समकालीन था, वह भी टक्क देश आया था। उसने टक्कों के बड़े नगर का नाम साकर लिखा है। डुग्गर के प्रसिद्ध विद्वान् श्री जगदीश चन्द्र साठे का मत है—टक्क एक प्राचीन जाति का नाम था जो पंजाब की नदियों के ऊपरी भाग में तीसरी चौथी सदी में आबाद थी। इतिहासकार सुखदेव सिंह चाड़क का मत है कि टक्क गुज्जरों के बाद इस प्रदेश में आये। डुग्गर में इस समय टक्क कबीले के लोग चन्द्र भागा के पश्चिम में अखनूर क्षेत्र के आगे-पीछे रहते हैं और अपने आप को टकाई कहते हैं और अपना सम्बन्ध टक्क देश से जोड़ते हैं। लगता है कि अखनूर का क्षेत्र या तो टक्क देश का अंग था या टक्क देश से टक्क कबीले के लोग पलायन करके अखनूर में आये। कतिपय इतिहासकारों ने वर्तमान टक्करों या ठाकुरों को ही टक्क जाति का वंशज माना है। टक्कर या ठाकुर इस समय डुग्गर के पूरे क्षेत्र में आबाद हैं, किन्तु इनकी मुख्य बस्तियाँ शिवालिक पहाड़ियों और मध्य हिमालय की घाटियों में हैं।

टक्कों का उल्लेख राजतंरगिणी में भी कई बार हुआ है। उनके देश का उल्लेख सबसे पहले कश्मीर के राजा शंकर वर्मन (883-920) के सन्दर्भ में आया है। इसी प्रकार सातवीं और आठवीं तरंग में भी इस कबीले का उल्लेख मिलता है। टक्क लोगों की भाषा के विषय में काव्य मीमांसा और प्राकृत-चन्द्रिका में वर्णन मिलता है। इन उदाहरणों से यह सुस्पष्ट हो जाता है कि टक्क जाति दसवीं शताब्दी से भी पहले प्रसिद्ध

हो चुकी थी। टक्क कबीले की लिपि को टाकरी नाम दिया गया।

टक्क कबीले के बाद भी इस क्षेत्र में कबीलों का आगमन होता रहा। गुर्जर गद्दी, खुक्खर, कारु, सासिये पेरने तथा बाजीगर भी बड़ी संख्या में इस क्षेत्र में आये किन्तु इन सभी कबीलों में सबसे महत्त्वपूर्ण कबीला, जिसने स्थानीय इतिहास को बदला दुर्गर था।

दुर्गर– इस शब्द का प्रयोग ग्यारहवीं शताब्दी के चम्बा के आभिलेखों में हुआ है। इन अभिलेखों का रचनाकाल 1056 और 1066 के बीच का बताया जाता है। ये अभिलेख चम्बा के राजा सोमवर्मा के शासन काल के हैं। इन में चम्बा के राजा साहिल वर्मा (920-940 ई०) की स्तुति करते हुए लिखा है कि इस राजा ने दुगरेश्वर (दुर्गर के राजा) जिसकी सहायता कीर और स्मातिक कबीलों ने की, लड़ाई में हरा दिया।

यह दुर्गर कबीला कौन था और कहां से आया था, यह प्रश्न इतिहासकारों के लिए शोध का विषय बन गया। विदेशी इतिहासकार डब्लयू बी कनिंघम और ए. एच. बिंगले का अभिमत था कि दुर्गर किसी कबीले का नाम न होकर एक विशेष क्षेत्र का नाम था जो मानसर और सरुईंसर झीलों के निकट स्थित था। इस क्षेत्र के लोगों को ही दुर्गर कहते थे। इन दोनों इतिहासकारों ने संकेत दिया है कि दुर्गर शब्द का ही विकसित रूप डुग्गर या डोगरा है।

किन्तु भाषा वैज्ञानिक इस मत से सहमत नहीं हैं। उनका कहना है कि भाषा विज्ञान की दृष्टि से दुर्गर शब्द से डुग्गर शब्द का विकास हो ही नहीं सकता। भाषा वैज्ञानिकों में से किसी ने डुग्गर की व्युत्पत्ति द्विगर्त से किसी ने दुर्गल से किसी ने दुर्गृह आदि से मानी है। स्थानीय इतिहासकार धर्मचन्द प्रशान्त का मत है कि डुग्गर की व्युत्पत्ति राजस्थानी के पहाड़ वाचक शब्द 'डूंगर' से हुई है। राजस्थान पर जब मुसलमानों के आक्रमण हुए तो राजस्थान के बहुत से राजपूत कबीले राजस्थान से पलायन करके सुरक्षित स्थान की खोज में पहाड़ों की ओर आए। उन्होंने इस पहाड़ी क्षेत्र को अपनी भाषा में 'डूंगर' कहा और डूंगर से ही डुग्गर और डोगरा शब्द बना जिसमें पहले शब्द का अर्थ पहाड़ी प्रदेश और दूसरे का अर्थ पहाड़ी प्रदेश का रहने वाला है।

यह ऐतिहासिक सत्य है कि ग्यारहवीं शताब्दी में राजस्थान, मगध और मैथिल और यहाँ तक कि गौड़ (बंगाल) से भी कई कबीले इस भूभाग में आये। उनके आने से पहले इस भूभाग में राणा शासन प्रणाली का प्रचलन था। किन्तु कही कहीं राजा शासन प्रणाली भी प्रचलित थी। उनके आने से पूर्व जिन क्षेत्रों में राजा शासन प्रणाली स्थापित थी उनमें बब्बापुर, बल्लपुर, काष्ट बाढ़, राजापुरी, नीलपुर और पुरनोत्स के नाम मिलते हैं। यह राज्य भी बहुत छोटे-छोटे थे और बारहवीं शताब्दी के पहले चरण तक कश्मीर के राजाओं के प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अधीन थे। इन राजाओं के स्मारक रावी और

चन्द्रभागा नदियों के मध्य स्थित बब्बापुर, बल्लपुर और क्रिमची में आज भी देखे जा सकते हैं।

राजस्थान और बाहर से आने वाले राजपूत कबीलों के लोगों ने धीरे-धीरे इन राजाओं को युद्ध में या छल-बल से पराजित करके इस भूभाग से भगा दिया। यहां से पलायन करते समय वे अपना इतिहास भी अपने साथ ले गए या नये आए हुए कबीलों के सरदारों ने उनके इतिहास नष्ट कर दिया। सम्भवत: यही कारण है कि हमें ग्यारहवीं शताब्दी से पूर्व का डुग्गर का इतिहास उपलब्ध नहीं है। केवल राजतंरगिणी, नीलमत पुराण, विष्णु धर्मोतर पुराण, वायुपुराण, मत्स्यपुराण, वामन पुराण आदि कुछ ऐसे ग्रंथ हैं जिनमें इस क्षेत्र के इतिहास की धुन्धली रूपरेखा मिलती है।

डुग्गर में जिन राजपूत कबीलों ने दसवीं सदी या उससे कुछ समय पहले इस भू-भाग में शरण ली उनको कनिंघम ने दो वर्गों में रखा है। पहले में राजूपत हैं जो डुग्गर के शासक वर्ग से थे। इनको मिंया शब्द से अभिहित किया गया। मियां एक पदवी थी जो मुहम्मद गौरी के समय में राजवंश अथवा सर्वश्रेष्ठ नायकों को ही दी जाती थी। डुग्गर में जम्बाल, सामियाल, जसरोटिया, मनकोटिया, बन्दराल, हिन्ताल, भूतियाल, भड़वाल, बलौरिया, भद्रवाहिया और किशत बाढ़िया राजवंश के लोक ही इस-पदवी की उपयोग करते थे। कटोच, गुलेरिया, जसवाल, डडबाल सिबेई कल्हुरिया सुकेतर, मंडलियाल, पठानियां, चम्बेयाल भी प्रथम वर्ग के राजपूतों में परिगणित होते थे किन्तु वे अधिक संख्या में रावी के पूर्वी भाग में रहते थे। पुराने समय में इस वर्ग के राजपूतों के लिए यह आवश्यक था कि वे अपने हाथ में हल न पकड़े, अपने से निचले दर्जे के राजपूतों को अपनी कन्याएं ब्याह कर न दें। लड़कियों के विवाह में बरी (एक प्रकार का कन्या का मूल्य) न लें और उनकी पत्नियां पर्दे में रहें। इनके बाद दूसरे वर्ग के राजपूत थे। इन्हें हल चलाने की अनुमति थी। यह सेना में उच्च पदों पर नियुक्त हो सकते थे। इस वर्ग में राजपूतों के जो कबीले आते थे वे थे-भाऊ, चिब, हरचन्द, जराल, लंगेह, मन्हास, सलारिया तथा सोखला इत्यादि। इन में भाऊ, चिब्ब, जराल आदि कबीलों ने अलग अलग स्थानों में राज्य भी स्थापित किये। रावी नदी के पूर्वी भाग में इस वर्ग के राजपूतों में मुतियाल, चौहान, चन्देल, गुरवाह, लुण्डु आदि माने गए थे। किन्तु यह वर्ग भेद सामंतवाद की देन था। सामंतवाद के समापन के साथ ही साथ यह वर्ग भेद भी समाप्त हो गया।

डुग्गर प्रदेश में राणा और ठक्कुर भी राजपूत वर्ग में परिगणित हुए। राणाओं के जितने कबीले थे बाद में उन के उतने ही भेद हो गए। कई राणा अपने नाम के साथ 'राय' शब्द का प्रयोग भी करते रहे हैं। राणाओं के साथ-साथ ठक्करों के भी इस क्षेत्र में कई कबीले थे। जिन में कुछ नाम द्रोहड़ा, कुनियाल, बलवालिया, टेकर, ताराकोटिया,

समसाल, कलस, बन्दबाल, सनेयाल, काटल, सारसु, रूझाल, रासल, चकालिये, ठठुमत, भागमत, वजीरमत, गुनसीमत आदि उल्लेखनीय हैं।

डुग्गर के ब्राह्मण अपने आप को इस भू भाग के मूल निवासी नहीं मानते। उनका कथन है कि वे ऐतिहासिक परिस्थितियों से वशीभूत होकर कश्मीर, पंजाब, अयोध्या तथा दक्षिण भारत से आकर यहाँ बसे। डुग्गर में ब्राह्मणों के भी कई भेद रहे हैं। जो ब्राह्मण खेती करते है उन्हें हलवाहा ब्राह्मण कहते हैं। दूसरे वर्ग के ब्राह्मण पौराहित्य कार्य, व्यापार, शिक्षण तथा नौकरी करते हैं। अन्य प्रदेशों की भाँति डुग्गर के ब्राह्मणों ने कभी भी इस क्षेत्र में अपना शासन स्थापित करने का प्रयास नहीं किया वैसे वे स्थानीय राजाओं के मंत्री और सलाहकार रहे हैं।

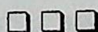
ब्राह्मणों की भी कई शाखाएँ हैं, यथा-केसर, थर्मट्ट, खजूरिया, मगोत्रा, पाधा, बढ़ेयाल, दुबै, मिश्र तथा पलासर आदि।

इसी प्रकार क्षत्रिय और महाजन भी कई भेदों और उपभेदों में विभाजित है, इन की जातियों के लोग दूसरे प्रदेशों में भी हैं, अतः लगता है कि ये लोग बहुत बांद में इस क्षेत्र में आकर आबाद हुए हैं। इन की उपजातियों में झंडेआल, अवरोल, मल्होत्रा, आनन्द आदि मुख्य हैं।

डुग्गर क्षेत्र में मुसलमानों का भी बहुत बड़ा वर्ग रहता है। इनमें गुज्जर और बकरवाल यायावर जातियाँ है जो कई उप जातियों में विभाजित हैं यथा-खटाना, कसाना, लहरवाल, कुरेशी, पशुवाल,चेची, वाणा, बजाड़, बरकुट, ढोई, पजुआला, देद्धड़ू, बोकड़ा, तथा बरकुट आदि। यायावर गद्दी भी कई भेदों में विभाजित हैं, यथा सुंडाल, सिज़ान, कोलडू, चाउ, भसड़े, चुगैनो, रैहलू, ललाल,टनेटु, कोली, जबूतरे, दरगैन तथा नोड़ू आदि।

अनुसूचित जातियों में डोम, रामदासिये, मेघ, सरेआर, मौलगी, तियार गैन आदि परिगणित होते हैं, किन्तु इन सबको अनुसूचित जातियों की सूची में स्थान नहीं मिला है।

इसी प्रकार इस क्षेत्र में मुसलमानों की भी कई उपजातियां हैं।.सिक्ख, बुद्ध, जैन, ईसाई धर्मावलम्बियों का यह भू-भाग निवास स्थल है।



राज्यों की स्थापना

आदिकाल में डुग्गर प्रदेश में विभिन्न कबीलों के लोग रहते थे। इन कबीलों की अपनी अलग बस्ती और अलग क्षेत्र होता था। कबीले का मुखिया कबीले के लोगों का नेतृत्व करता था। कबीले के सभी सदस्य मुखिया के आदेश का पालन करते थे। यदि कोई सदस्य मुखिया के आदेश का उल्लंघन करता तो मुखिया उसे अपनी बस्ती से निष्कासित कर सकता था। यदि वह चाहता तो वह अपराधी को प्राण दंड तक दे सकता था।

प्रत्येक कबीला अपने ढंग से स्वतन्त्र होता था। उस की जीवन शैली, रीति-रिवाज, रहन-सहन, इष्ट देवता अलग होता था। उस समय के समाज में एक प्रकार से कम्यून व्यवस्था प्रचलित थी। कबीले की सम्पत्ति पर कबीले के सभी सदस्यों का अधिकार होता था। कबीले के लोग मिलकर काम करते थे और एक दूसरे को सहयोग देते थे। एक कबीले के सदस्य दूसरे कबीले के क्षेत्र में स्वतन्त्रतापूर्वक आ जा नहीं सकते थे। दूसरे कबीले के इलाके में जाने के लिए उन्हें अनुमति लेनी पड़ती थी। यदि व्यक्ति भूल से दूसरे कबीले के इलाके में चला जाता तो वह उसको पकड़ लेते थे और दंडित करते थे। जिस कबीले का वह व्यक्ति होता उस कबीले के लोग अपने आदमी को छुड़ाने के लिए दूसरे कबीले पर हल्ला बोल देते थे, इससे कबीलों में लड़ाई छिड़ जाती थीं। जो बाद में कई-कई वर्षों तक शत्रुता में बदल जाती थी।

कोट– कबीले के लोगों ने दूसरे कबीले के लोगों के हमलों से बचने के लिए कोट व्यवस्था का प्रचलन किया। प्रत्येक बस्ती का अपना कोट होता था। यह कोट सुरक्षित स्थान पर बनाया जाता था। जो प्राचीरों से घिरा रहता था। डुग्गर में ऐसे कोटों की संख्या सैकड़ों में थी। आज भी इन कोटों के अवशेष डाडन कोट, सावलाकोट, जलसरकोट, जराल कोट, रोत कोट रसोल कोट, धार कोट, ताराकोट, जराल कोट आदि में देखे जा सकते हैं।

गढ़– जब एक ही क्षेत्र में बसने वाले विभिन्न कबीलों के कोटों पर बाहर से आई दूसरी जाति के लोगों ने आक्रमण शुरू किये तो उस क्षेत्र में बसने वाले कबीलों के लोगों ने अपना अस्तित्व बनाये रखने के लिए गढ़ों की स्थापना की। एक गढ़ के अन्तर्गत कई कोट होते थे। प्राचीन काल में इस प्रदेश में कई गढ़ थे। जिन में रामगढ़, सूरगढ़, बसन्त गढ़, सामना गढ़ आदि विशेष प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे।

मंडल– इस क्षेत्र में गढ़ों के बाद मंडल व्यवस्था स्थापित हुई। कई गढ़ों को मिला कर एक मंडल स्थापित किया जाता था। सम्भवतः मंडल ही डुग्गर प्रदेश में

राजनैतिक ईकाई का आदिरूप था। एक मंडल में कई-कई गांव होते थे और मंडल के मुखिया को कहीं 'मंडलीश' तो कही राणा कहते थे। डुग्गर में 'पुर-मंडल' मांडली आदि स्थान मंडल व्यवस्था के ही आदि रूप थे।

जनपद– कई मंडलों के समूह मिलकर जनपद बनाते थे। इतिहासकार जनपद प्रणाली को आर्यों की देन मानते हैं। जनपद प्रणाली के अन्तर्गत एक ही क्षेत्र के लोग अपने आप को एक राजनैतिक इकाई के रूप में सुगठित कर लेते थे। आदि काल में जो जनपद स्थापित हुए उनके दो रूप थे। जिन जनपदों में राज पद्धति प्रचलित हुई वहाँ का शासक राजा बन गया। किन्तु कई जनपद ऐसे भी थे जिन्होंने संयुक्त शासन प्रणाली को अपनाया। ऐसे जनपदों का स्वरूप 'गणराज्य' सा था। डुग्गर में आरम्भ में जो जनपद स्थापित हुए उनका आदि स्वरूप गणराज्य जैसा ही था। किन्तु बाद में बाहर के किसी बलशाली व्यक्ति ने आक्रमण कर के उसको अपने अधीन किया और राजा शासन प्रणाली का प्रचलन किया।

डुग्गर में प्रारम्भ में छोटे-छोटे जनपद थे। इन जनपदों की अपनी-अपनी राजधानियाँ थी, जिन्हें ये 'थड़ा' कहते थे। कई जनपद ऐसे भी थे जिनका शासक मनुष्य नहीं देवता होता था। पूरे जनपद पर देवता का आदेश चलता था। वहाँ के लोग देवता से आदेश प्राप्त कर के ही कोई काम आरम्भ करते थे। डुग्गर में ऐसे जनपद चन्द्रभागा नदी के साथ-साथ थे। उनमें सुराज़ ऐसा जनपद था जिसका स्वामी मनुष्य नहीं भगवान शिव थे।

डुग्गर प्रदेश पर जब बाहर की जातियों ने हमले शुरू किये तो उसका परिणाम यह निकला कि कई छोटे-छोटे जनपद मिट गये और कई छोटे जनपदों ने अपना विलय किसी बड़े पड़ोसी जनपद से किया।

डुग्गर क्षेत्र के इतिहास का अनुशीलन करने से जिन प्राचीन जनपदों का पता चला है वे थे-

गब्दिका जनपद– इस जनपद का उल्लेख पाणिनि ने किया है। यह जनपद सम्भवतः गद्दी कबीले का रहा होगा जिसकी राजधानी पहले ब्रह्मपुर और बाद में चम्बा बनी। डुग्गर का पाडर और भद्रवाह का कुछ इलाका इस जनपद का भाग था। इस जनपद में पहले गणराज्य व्यवस्था थी किन्तु बाद में राजतन्त्र व्यवस्था कायम हुई। यह पहाड़ी इलाके का अति प्राचीन जनपद था।

औदुम्बर जनपद– यह जनपद गणतन्त्रात्मक प्रणाली पर आधारित था। होशियारपुर, गुरदासपुर, हमीरपुर, ऊना का क्षेत्र इसी के अन्तर्गत परिगणित होता था। सम्भवतः रावी का कुछ पश्चिमी भाग भी इसके अन्तर्गत था।

त्रिगर्त जनपद– त्रिगर्त जनपद तीन दूनों का क्षेत्र था। ये दूने सतलुज, व्यास और रावी की घाटियां थी। यह जनपद अति प्राचीन था। इसका उल्लेख महाभारत में भी हुआ है। पाणिनि के समय यहाँ छ: संघ राज्य थे। काशिका में इन संघ राज्यों के नाम कौंडापरथ, दांड कि कौण्टकि जाल-मानि, ब्राह्मगुप्त और जानकि उल्लेखित हैं। इस जनपद में बाद में राजतन्त्र व्यवस्था स्थापित हुई। वंशावली के अनुसार इस राज्य के पांच सौ राजा हुए है। पहले इस जनपद का विस्तार दूर-दूर तक था। डुग्गर का बसोहली क्षेत्र भी सम्भवत: इसी में सम्मिलित था, किन्तु बाद में कांगड़ा क्षेत्र तक ही यह जनपद सीमित रह गया।

टक्क-जनपद– यह जनपद पंजाब की नदियों के ऊपरी भाग में स्थित था। डुग्गर का अधिकांश पहाड़ी क्षेत्र सम्भवत: इसी में समाहित था।

मद्र-जनपद– पाणिनि ने अष्टाध्यायी में ज़िन बीस जनपदों का उल्लेख किया है उनमें मद्र जनपद भी एक था। इतिहासकारों के अनुसार यह जनपद अति शक्तिशाली और समृद्ध था। इस/जनपद की राजधानी शाकल थी। यह जनपद उत्तर मद्र, पूर्वमद्र, और अपर मद्र तीन भागों में विभाजित था। इस जनपद की सीमाएं उत्तर में हिमालय तक फैली थी। डॉ० सत्यपाल श्री वत्स का मत है कि प्राचीन समय में डुग्गर का बहुत बड़ा भाग इस राज्य का अंग था।

दार्व-अभिसार जनपद– मद्र जनपद की ही भाँति चन्द्रभागा नदी से वितस्ता नदी तक एक और जनपद डुग्गर क्षेत्र में परिव्याप्त था जिसे दार्व अभिसार नाम से अभिहित किया गया है। डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क का अभिमत है कि दार्वा- भिसार दो जनपदों का समूह था। दार्व रावी और चन्द्रभागा नदियों के मध्यवर्ती मैदान में फैला था और अभिसार चन्द्रभागा नदी से लेकर वितस्ता नदी तक फैला हुआ है। डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क के मत को यदि स्वीकार कर लिया जाये तो हमें यह मानना पड़ेगा कि वर्तमान जम्मू प्रान्त का सारा क्षेत्र इसी जनपद के अन्तर्गत था।

दार्व– दर्व जाति के नाम पर इस जनपद का नाम दार्व पड़ा। पौराणिक साहित्य के अनुसार चन्द्रवंशी राजा उशीनर की पत्नी दर्वा के पुत्र दर्विन से दर्व जाति की परम्परा चली। इस जाति का उल्लेख महाभारत के सभा पर्व में हुआ है। महाभारत में वर्णित है कि अर्जुन ने दर्व जाति को विजित किया था। बाद में इस क्षेत्र में कई छोटे-छोटे राज्यों का उदय हुआ। राजतरंगिणी में इस क्षेत्र के जिन राज्यों का उल्लेख मिलता है वे थे:-

1. बब्वापुर
2. बल्लपुर
3. काष्ट वट
4. बर्तुल

5. विषलटा तथा

6. जासट आदि।

बब्बापुर डुग्गर का प्राचीन राज्य था। एक दन्त कथा के अनुसार इस राज्य की स्थापना पांडव पुत्र बभ्रुवाहन ने की थी। ग्यारहवीं शताब्दी तक यह राज्य डुग्गर की राजनीति का केन्द्र रहा। इस राज्य के उत्तराधिकारियों ने बाद में इस की राजधानी मनकोट में परिवर्तित की।

बल्लपुर को आज बिलावर या बलौर कहते हैं। यह भी प्राचीन राज्य था। पालवंशीय राजाओं के आगमन से पूर्व इस राज्य के शासकों का उल्लेख केवल राजतरंगिणी में ही मिलता है।

काष्ट वट को अब किष्तवाड़ कहते हैं। इस राज्य का विस्तार पहले चन्द्र- भागा नदी से लेकर तवी नदी के ऊपरी भाग तक था।

बर्तुल राज्य सम्भवत: धर्मकोट और इसके आस-पास के क्षेत्र में परिव्याप्त था। राजतरंगिणी की आठवीं तरंग में इस राज्य का उल्लेख राजा उच्चल के सन्दर्भ में हुआ है जिसने बर्तुलराज की कन्या विज्जला से दूसरा विवाह किया।

विषलटा राज्य बनहाल से लेकर चन्द्रभागा नदी के किनारे राम बन तक फैला हुआ था। इस पूरे क्षेत्र में खसों की बस्तियाँ स्थापित थीं। राजतरंगिणी में इस क्षेत्र का उल्लेख आठवीं तरंग में हुआ है। इस जगह के दो सेनानायक जनक और श्रीवक कश्मीर के राजा सुस्सल के समकालीन थे।

विषलटा का ही अंग खसालय था। यह त्रिकूटा पहाड़ से चन्द्र भागा नदी तक फैला हुआ था।

जासट सम्भवत: जसरोटा राज्य था।

अभिसार– यह जनपद चन्द्र भागा और वितस्ता नदियों के मध्य वर्ती उस भू-भाग में फैला हुआ था जो पंजाब के मैदानों के ऊपर था। यह प्राचीनतम जनपद था। इस जनपद का उल्लेख यूनानी इतिहासकारों ने उत्तर भारत में स्थित तीन महत्त्वपूर्ण जनपदों के साथ किया था। अन्य दो जनपद तक्षशिला और हजारा थे। यूनानी इतिहासकार आरीना के अनुसार अभिसार हज़ारा औंर तक्षाशिला से बहुत छोटा था। सिकन्दर के आक्रमण के समय पुरू ने अभिसार जनपद के राजा को अपने पक्ष में किया था। किन्तु सिकन्दर ने अपनी कूटनीति से अभिसार के राजा को लड़ाई में तटस्थ रहने के लिए राजी कर लिया। इस प्रकार सिकन्दर और पुरू की लड़ाई में अभिसार ध्वंस से बच गया।

सिकन्दर के चले जाने के बाद इस क्षेत्र के इतिहास के विषय में पुष्ट ऐतिहासिक

सामग्री नहीं मिलती है। केवल सेवासेन नामक राजा के शासन काल का इतिहासकार बैले को छल्ले की आकृति का सिक्का मिला था। जिस पर दार्वाभिसार का नाम राजा सहित उत्कीर्ण था।

राजा सेवा सेन के बाद इस क्षेत्र के राजाओं का प्रमाणित विवरण नहीं मिलता। ह्यूनसांग ने सातवीं शताब्दी में जब इस क्षेत्र की यात्रा की तब इस क्षेत्र का कोई राजा नहीं था। सम्भवत: उस समय यह क्षेत्र कश्मीर या किस अन्य जनपद के अधीन था।

दसवीं शताब्दी से पूर्व यह जनपद विघटित होकर चार छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हुआ जिन के नाम थे:-

1. लोहरकोट या पुरनोत्स
2. राजापुरी
3. कालिंजर
4. नीलपुर।

लोहरकोट राज्य का संस्थापक लोहर नामक एक सेनानायक था। सुखदेव मैनी के अनुसार लोहर यूनानी था। कई विद्वान् इस राज्य का संस्थापक लोहरा नामक नाग राजा को मानते हैं। किन्तु राजतरंगिणी में इस राज्य के शासकों को खस राजा कहा गया है।

राजापुरी को अब राजौरी कहते हैं। इसका नाम इतिहास की पुस्तकों में राजौर भी उल्लिखित हैं। यह भी एक पुराना राज्य था। इसका उल्लेख पातंजलि के योग शास्त्र में भी मिलता है। राजतरंगिणी में इसका उल्लेख कई बार हुआ है। पहले यह एक विशाल राज्य था। इसकी सीमाएं चन्द्रभागा नदी से लेकर भिम्बर गली तक थी किन्तु बाद में यह राज्य सिमट गया।

कालिंजर राज्य का उल्लेख राजतरंगिणी में पहली बार सातवी तरंग में आया है। आठवीं तरंग में इस राज्य के राजा का नाम कल्ह वर्णित है। आठवीं तरंग में ही पद्मरथ को कालिजरेश्वर लिखा है। कालिंजर का नाम बाद में 'कोटली' प्रसिद्ध हुआ। वहाँ एक पुराने किले का नाम अब भी कालिंजर है।

नीलपुर राज्य सम्भवत: मीरपुर क्षेत्र में परिव्याप्त था। इस राज्य का उल्लेख राजतरंगिणी में वर्णित हुआ है। यह राज्य भी लोहरकोट, राजपुरी और कालिंजर की भाँति कश्मीर के राजाओं से सम्बन्धित रहा है।

दसवीं और ग्यारहवीं शताब्दी में उत्तरी भारत में मुसलमानों के जब आक्रमण बढ़ने लगे तब राजपूताना, अवध, तथा अन्य प्रान्तों के कई कबीले जिन में राजपूत भी थे, इस क्षेत्र में आये। राजपूत कबीले के लोगों ने पहले तो स्थानीय राजाओं की सेनाओं में

नौकरी की और वाद में जब वे शक्तिशाली हो गए तो वे यहाँ के शासक बन गए। उन्होंने इस प्रदेश में कई नये राज्य भी संस्थापित किये जिन में चिभाल, बसोहली, भूति, रियासी,बसोहली, अखनूर, दलपत्पुर, बन्दरालता, हिमता, आदि उल्लेखनीय हैं।



जम्मू राज्य

लोक परम्परा के अनुसार जम्मू राज्य का संस्थापक राजा जम्बूलोचन था। जम्बूलोचन अग्निगिर का वंशज़ था। अग्निगिर के विषय में कहा जाता है कि वह अयोध्या के सूर्यवंशी राजा रामचन्द्र की वंश परम्परा से था। वह अयोध्या से अज़मेर आया और अज़मेर से हरिद्वार चला गया। हरिद्वार से शिवालिक पहाड़ियों में घूमता हुआ वह नगरकोट पहुँचा। एक दिन उसने रावी नदी को पार किया और इस पहाड़ी क्षेत्र में आ गया। उसने रावी नदी के पश्चिमी भाग में कुछ इलाका अपने अधिकार में लिया और वहाँ राज्य करने लगा। भूप नगरी को उसने अपनी राजधानी बनाया।

अग्निगिर के बाद उसका बेटा बायासर्व और उसके बाद परम-मित्र भूप नगरी का राजा बना। परममित्र का उत्तराधिकारी पूर्ण सिंह और उसका लक्खू बना। लक्खू के बेटे का नाम क्षत यौवन था। उसके देहावसान के बाद अग्निगर्व भूपनगर की गद्दी पर बैठा।

अग्निगर्व के आठ पुत्र थे। जिनके नाम वायालोचन, जम्बूलोचन, हेमलोचन, रूपालोचन, सुर्गलोचन, आदि थे। अग्निगर्व के देहावसान के बाद उसका बड़ा बेटा वायालोचन राजा बना। वायालोचन मद्रदेश के राजा चन्द्रहंस से लड़ता हुआ मर गया तो उसके स्थान पर उसका छोटा भाई जम्बूलोचन भूपनगरी का राजा बना।

जम्बूलोचन ने अपने बड़े भाई की मृत्यु का प्रतिशोध लेने के लिए मद्रदेश पर आक्रमण किया और राजा चन्द्र हंस को परास्त किया।

राजा जम्बूलोचन के विषय में यह भी कहा जाता है कि एक बार वह आखेट खेलता हुआ तवी नदी को पार करके गुम्मट पहाड़ी की ओर आया। वहाँ उसने शेर और बकरी को इकट्ठे पानी पीते देखा। उसने इस स्थान को बहुत ही पवित्र माना और जंगल साफ करवा कर एक शहर बसाया जिस का नाम उसने अपने नाम पर 'जम्बू' रखा। जम्बू ही बाद में बदलता-बदलता जम्मू बना।

राजदर्शनी के अनुसार जम्बूलोचन का एक नाम जामदेव भी था। सम्भवत: जाम से जम्मू बना है।

जम्मू के राजाओं की वंशावली के अनुसार जम्बूलोचन के बाद पूर्ण कर्ण जम्मू

1. राज दर्शनी के अमुसार अग्निगिर 1990 कलियुग वर्ष में अयोध्या से चला था। कलियुग संवत की आरम्भ 3102 ई.पू. माना जाता है।

2. भूप नगरी की पहचान नगरी परोल गांव से की गई है। यह गाँव कठुआ के निकट स्थित है।

3. जम्मू नगर के नाम करण के और भी कई सिद्धान्त है। एक सिद्धान्त यह है कि इस स्थान पर जामुन के घने वृक्ष थे। अत: इस स्थान का नाम जम्मू पड़ा। दूसरा सिद्धान्त यह है कि यहाँ जामबन्त की गुफा थी।

का राजा बना। पूर्णकरण के दो बेटे थे। बड़ा बेटा दयाकरण सतीसर (कश्मीर) चला गया और छोटा बेटा धर्मकरण जम्मू का राजा बना।

धर्मकरण के बाद कीरतकर्ण, अग्निकर्ण, शक्तिकर्ण क्रमांक से जम्मू के राजा बने। शक्तिकरण के विषय में कहा गया है कि वह विद्वान् राजा था। उसने पहाड़ों में शास्त्री संवत चलाया।

राजदर्शनी के अनुसार शक्तिकर्ण की पांचवी पीढ़ी में राजा शिव प्रकाश हुआ। उसके मामा शाल ने शालकोट (स्यालकोट) दुर्ग स्थापित किया जो जम्मू से केवल 25 किलोमीटर दूर था। शाल ने जम्मू पर आक्रमण करके इस नगर को नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। राजा शाल से भयभीत होकर जम्मू राजवंश के लोग पहाड़ों की ओर भाग गए और जम्मू शाल कोट के अधीन हो गया। राजा शाल के वंशजों ने कई वर्षों तक जम्मू में राज्य किया।

जम्मू का राज वंश पहाड़ों में कई सदियों तक भटकता रहा। अन्ततः इस वंश के ही एक राजा सिन्ध राय ने पहाड़ी इलाके में एक सेना गठित की और बब्बापुर के राजा पद्म राय को लड़ाई में पराजित कर के इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया।

सिन्ध राय ने बब्बापुर को ही अपनी राजधानी बनाया किन्तु उसने अपने जीवन काल में जम्मू का अधिकांश क्षेत्र शालकोट (स्यालकोट) के राजा से मुक्त करवा लिया। सिन्ध राय तथा उसके वंशजों के शासन काल को डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क ने राय वंश का नाम दिया है।

राय वंश

गणेश दास भटैहड़ा विरचित राजदर्शनी के अनुसार सिन्धराय ने सन् 262 (सम्वत 318 वि०) से लेकर सन् 312 (वि० सम्वत 368) तक राज्य किया। उसके बाद उसका बेटा जगत राय गद्दी पर बैठा। उसने सन 312 से लेकर सन 332 तक राज्य किया। उसके देहावसान के बाद दुधराय राजा बना। उसने 332 ई० से 344 ई० तक राज सुख भोगा। उसका उत्तराधिकारी जग्गुराय (वि० सम्वत् 400) सिंहासनारूढ़ हुआ। इस राजा के विषय में कहा जाता है कि इसने 87 वर्ष राज्य किया। राजदर्शनी के अनुसार उसके शासन काल में अंगपाल ने इन्दपत के निकट (वि० सम्वत् 429) दिल्ली नगर की नींव रखी। राजा जग्गुराय के एक बेटे का नाम मलान हंस और दूसरे का सूरज हँस था। मलान

अतः जामबन्त के नाम पर इस स्थान का नाम जम्मू पड़ा। तारीख ए फरिश्ता के अनुसार कैद राय ने जम्मू का किला बनवाया।

राजदर्शनी के अनुसार सिन्धराय वि० सं 318 में सत्रारूढ़ हुआ और उसने विक्रमी सम्वत 368 में शरीर छोड़ा।

हंस साधारण किसान की बेटी के गर्भ से पैदा हुआ था, अत: राजा ने उसे अपना उत्तराधिकारी नहीं बनाया। राजा ने मलान हंस को चन्द्रभागा नदी के निकट जागीर के रूप में बहुत सा इलाका दिया। मलान हंस अपनी जागीर में चला गया। उसने वहाँ खेती बाड़ी का काम शुरू किया। उसके वंशज भी कृषि कर्म में प्रवृत्त हो गये। मलान हंस के वंशजों को मन्हास कहा गया।

राजा जगु का दूसरा बेटा जो एक राजकुमारी के गर्भ से पैदा हुआ था, वह उसका उत्तराधिकारी बना। उसका नाम सूरज हंस था।

राजदर्शनी के अनुसार सूरज हंस सन् 431 (वि० सम्वत 487) में गद्दी पर बैठा। राजा सूरज हंस धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसकी प्रजा उसका बहुत आदर करती थी। उसके शासन काल में उसके प्रति श्रद्धावान लोगों का ऐसा वर्ग बना जो उसके दर्शन करके खाना खाता था। इस वर्ग के लोगों को दर्शनी कहते थे।

राय वंश के राजा चाहे जम्मू के राजा कहलाते थे किन्तु इन की राजधानी बब्वापुर ही थी। इन्होंने जम्मू में अपनी राजधानी सम्भवत: इसलिए स्थानान्तरित नहीं कि क्योंकि शाकलकोट (सियालकोट) के राजाओं के आक्रमण का भय उन्हें अभी भी बना हुआ था।

धर वंश

राजा सूरज हंस सूरजधर के नाम से राजगद्दी पर बैठा। उसके वंशजों ने भी अपने नाम के साथ 'धर' उपाधि धारण की। डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार धर वंश के राजाओं ने 390 वर्ष तक इस क्षेत्र में राज्य किया। सूरज धर के बाद उसका उत्तराधिकारी गंगाधर गद्दी पर बैठा। उसका छोटा बेटा बाहु में रहा। उसके वंशज चाड़क कहलाये।

गंगाधर के जिन उत्तराधिकारियों के नाम इतिहास की पुस्तकों में मिलते हैं वे हैं– देवलाधर, सर्वलाधर, कीर्तिधर, अजयधर, विजयधर और बज्रधर।

राजदर्शनी के अनुसार गंगाधर 487 ई० (543 वि०) में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने 45 वर्ष राज्य किया। उसके बाद देवलाधर सन 532 (588 वि०) में राजा बना। उसने 44 वर्ष राज्य किया। उसके देहावसान के बाद सर्वलाधर 576 (वि० सं० 632) में गद्दी पर बैठा। उसने 50 वर्ष राज किया। उसके बाद कीर्तिधर 636 में सिंहासन पर बैठा। उसके शासन काल में महत्वपूर्ण घटना यह घटी कि दिल्ली के राजा विक्रम पाल ने बेहराज के राजा त्रिलोक चन्द पर आक्रमण किया। राजा त्रिलोक चन्द ने इस कठिनाई के समय में कीर्तिधर से सहायता मांगी। राजा कीर्तिधर ने अपनी सेना भेज कर त्रिलोक चन्द की

राजतरंगिणी में कीर्तिधर और बज्रधर का उल्लेख क्रमानुसार कश्मीर के राजा कलश (1087-88) और सुस्सल (1112-1120) के सन्दर्भ में हुआ है। इस प्रकार राजदर्शनी और राजतरंगिणी में इन राजाओं के शासन काल में लगभग 370 वर्ष का अन्तर है। लगता है कि राजदर्शनी में दिए गए सम्वत् अनुमानित हैं।

सहायता की। इस लड़ाई में विक्रम पाल मारा गया और त्रिलोक चन्द ने दिल्ली पर अधिकार कर लिया। इस घटना के बाद जम्मू के राजा के दिल्ली के राजा त्रिलोक चन्द के साथ सम्बन्ध और भी घनिष्ठ हो गए।

साठ वर्ष राज्य करने के बाद कीर्तिधर इस संसार से चल बसा। उसका उत्तराधिकारी अजय धर अनुमानतः सन 696 में राजा बना। उसने 59 वर्ष राज्य किया उसके शासनकाल में इस क्षेत्र में शांति रही। उसके देहान्त के बाद जम्मू की गद्दी पर विजय धर बैठा। उसके देहावसान के बाद सन 834 में (वि० सं० 890) बज्रधर सिंहासनारूढ़ हुआ। डॉ० सुखदेव चाड़क के अनुसार बज्रधर के शासन काल में दिल्ली पर बलदेव चौहान ने अधिकार कर लिया। दिल्ली में राज्य परिवर्तन का प्रभाव जम्मू राज्य पर भी पड़ा। सम्भवतः बलदेव चौहान के शासन काल में ही किसी कारण बज्रधर को जम्मू की गद्दी छोड़कर बनेहर में भागना पड़ा यहां अनुमानतः 850 ई० में उसका देहान्त हुआ।

बज्रधर के देहान्त के साथ ही जम्मू में धर वंश का ह्रास हुआ। धर वंशीय राजाओं की राजधानी बब्बापुर ही रही। बब्बापुर में जितने भी पुरावशेष उपलब्ध हैं अनुमान है कि वे धर वंश के राजाओं के शासन काल के हैं।

देव वंश

राजा सूरज देव-

देव वंश का संस्थापक डॉ० चाड़क के अनुसार सूरज देव था। सूरज देव जम्मू में कहां से आया था इसका विवरण डुग्गर में उपलब्ध वंशावली तथा ऐतिहासिक ग्रंथों में नहीं मिलता। सम्भवतः वह राजपूताना का था और सूर्यवंशी राजपूत था।

राजा सूरजदेव ने धर वंश के अन्तिम राजा बज्रधर से राज्य छीना और स्वयं जम्मू का राजा बन गया। उसने अपनी राजधानी बब्बापुर को ही बनाये रखा। राजदर्शनी के अनुसार वह 817 ई० में शासक बना और उसने 887 तक राज्य किया। उसके शासन काल में अरबों ने मुलतान तक आक्रमण किये जिसका परिणाम यह निकला कि गुज्जर और खुक्खर कबीले के लोग वहाँ से भाग कर पहाड़ों की ओर आये। अरब आक्रमणकारियों को आगे बढ़ने से रोकने के लिए उत्तर-भारत के जिन शासकों ने प्रयास किये उनमें एक सूरजदेव भी था। उपलब्ध वंशावली के अनुसार सूरज देव काबुल के हिन्दू राजा कमल वर्मन के पक्ष में लड़ता हुआ मुसलमान सेनापति शरीफखान के हाथों मारा गया। राजदर्शनी के लेखक गणेशदास भटैहड़ा ने उसे एक सुयोग्य प्रशासक लिखा है।

1. डाक्टर सुखदेव सिंह चाड़क ने राजा सूरज देव के शासन काल का समय 850 ई० से 920 ई० अनुमानित किया है।

राजा सूरजदेव के देहावसान के बाद उसका बेटा भोजदेव राजा बना।

राजा भोज देव– भोज देव जम्मू का एक लोकप्रिय शासक था। कई इतिहासकारों ने देव वंश का संस्थापक उसे ही माना है। वह 887 ई० में शासक बना और उसने 1009 ई० तक शासन किया। भोज देव ने अपने जीवन काल में कई लड़ाईयां लड़ीं।

उसने चम्बा के राजा साहिल वर्मन (930 ई०-40 ई०) पर सौमन्तक राजा सोमपाल और कीर से सहायता प्राप्त करके हमला किया जिस में वह पराजित हुआ।

उसी के शासन काल में पंजाब के राजा जयपाल साही पर नसिर-उ-दीन सुबुक्तरिन ने आक्रमण किया। जम्मू के राजा भोजपाल ने जयपाल साही (986-87) का साथ दिया और लड़ाई में मारा गया।

राजा अवतार देव– राज दर्शनी के अनुसार राजा भोज ने लड़ाई पर जाने से पहले ही अवतार देव को अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया। जब वह मर गया तो 952 ई० में (1009 वि०) में अवतार देव जम्मू का राजा बना। उस समय जम्मू पाल-वंशीय राजाओं के अधीन था।

राजा अवतार देव के शासन काल में महमूद गज़नवी ने सिंध के इलाके पर आक्रमण किया और उसे लूटा। उन दिनों राजा जयपाल तक्षशिला का राजा था। उसने जम्मू के राजा अवतार देव को सहायता के लिए बुलाया। अवतार देव ने अपने बेटे प्रह्लाद देव को भेजा। लड़ाई में प्रह्लाद देव ने बड़ी वीरता दिखाई किन्तु अन्त में शहीद हो गया। इस लड़ाई में जयपाल का दामाद गोपालराय भी शहीद हुआ।

मुहम्मद गज़नवी ने यह लड़ाई जीतने के बाद पेशावर, मुलतान और पंजाब पर भी कई आक्रमण किये। पाल राजाओं की सेना सुलतान की सेना के आगे टिक न सकी। जयपाल का बेटा जब सुलतान का सामना न कर सका तो वह पहाड़ों की ओर भाग गया। राजदर्शनी के अनुसार वह पहले कश्मीर गया उसके बाद उसने जम्मू के राजा से शरण माँगी। जम्मू के राजा अवतार देव ने जयपाल के बेटे आनन्दपाल को बसोहली की जागीर दी और वह वहाँ चला गया।

राजा अवतार देव के समय में महमूद गज़नवी ने भारत पर कई आक्रमण किये। उसने कश्मीर पर भी हमला किया। किन्तु वह वहां पहुंचने में सफल न हो सका। उसने कांगड़ा पर भी हमला किया और शिवालिक पहाड़ियों को रौंदता हुआ वहां पहुंच गया। उसने कांगड़ा को बहुत लूटा और अपने साथ अपार सम्पत्ति ले कर चला गया।

महमूद गज़नवी ने जम्मू को लूटने के लिए अपने बेटे शाहज़ादा मसूद को फौज देकर भेजा। किन्तु उसे मार्ग में ही अवतार देव के बेटे नरदेव ने रोक लिया। दोनों सेनाअ

में लड़ाई हुई। डोगरा सेना के जोधराय, खुरमराय, ताऊदेव और काकू सिंह ने शाहज़ादा मसूद की फ़ौज पर प्रबल हमला किया और शाहज़ादा लड़ाई के मैदान से भाग गया। जम्मू की सेना विजय दुन्दभि बजाती हुई जम्मू वापिस लौट आई। महमूद गज़नवी को अपने बेटे की पराजय पर बहुत क्रोध आया। उसने स्वयं जम्मू पर हमला करने का मन बनाया किन्तु भौगोलिक स्थिति को देखते हुए उसने मन बदल लिया।

राजा अवतार देव्र ने इकतालीस वर्ष राज्य किया। उसने अपने हाथों अपने बेटे जसदेव का राज तिलक किया और उसके कुछ समय बाद उसने शरीर छोड़ दिया।

राजा जसदेव– जसदेव ने महमूद के सम्भावित हमले से बचने के लिए अपनी राजधानी को बदलने का निश्चय किया। उसने अपने इलाके का पूरा चक्कर लगाया। अन्त में उसे उज्झ नदी के निकट स्थित एक पहाड़ी बहुत पसंद आई। उसने वहां एक नगर बसाया जिसका नाम उसने अपने नाम पर जसरोटा रखा। राजा जसदेव ने 57 वर्ष राज्य किया। डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार उसने 1061 में शरीर छोड़ा।

राजा संग्राम देव– जसदेव के बाद उसका बेटा संग्राम देव जम्मू का राजा बना। वह बहुत ही न्याय प्रिय राजा था। उसके शासनकाल में एक बार दो घोड़ियों ने एकस्थान पर एक ही समय में एक-एक बच्चे को जन्म दिया। एक घोड़ी का बच्चा मर गया। दूसरी घोड़ी का बच्चा दोनों घोड़ियों के स्तन चूसने लगा। दोनों घोड़ियों के मालिकों में उस घोड़ी के बच्चे के स्वामित्व को लेकर झगड़ा हो गया। दोनों न्याय प्राप्त करने के लिए राजा के पास चले गए। राजा ने घोड़ी के बच्चे को नदी में बहाया। जो बच्चे की असली मां थी वह उसकी रक्षा के लिए नदी में कूद पड़ी। राजा ने उसी घोड़ी के स्वामी को वह बच्चा दिया। राजा संग्राम देव ने 41 वर्ष राज्य किया। उसने 1094 में शरीर छोड़ा।

राजा चक्रदेव– चक्रदेव 1095 में राजगद्दी पर बैठा। उसके शासनकाल में पंजाब में मलिक खुसरो महमूद गज़नवी के प्रतिनिधि के रूप में शासन करता था। महमूद गज़नवी जम्मू को जीत नहीं सका था, अतः मलिक खुसरो भी जम्मू के राजा को अपना शत्रु मानता था। उसने जम्मू राज्य को अस्थिर करने के लिए भिम्बर के निकट मंगला क्षेत्र के खुक्खर कबीले के सरदारों को जम्मू के राजा के विरुद्ध बगावत करने के लिए भड़काया। उसके बहकावे में आकर खोखर कबीले ने बगावत कर दी। उन्होंने शेखा खुक्खर को अपना सरदार बनाया और जम्मू के राजा को वार्षिक कर देना बन्द कर दिया।

मलिक खुसरो ने पंजाब की सीमा के निकट जम्मू राज्य के गाँवों पर अधिकार करने की चेष्टा भी की किन्तु उसने भी भौगोलिक स्थिति को देखते हुए जम्मू पर हमला नहीं किया।

जम्मू के राजा ने मलिक खुसरो का दमन करने के लिए राजदर्शनी के अनुसार अपने भाई रामदेव को गज़नी में मुहम्मद गौरी के पास भेजा। रामदेव ने गौरी से कहा कि यदि वह मलिक खुसरो का पंजाब में दमन करें तो जम्मू की सेना उसकी सहायता करेगी। मुहम्मद गौरी ने जम्मू के राजा का प्रस्ताव मान लिया। मुहम्मद गौरी ने पहले पेशावर और मुलतान पर हमला किया और बाद में वह पंजाब आया। मालिक खुसरो तब लाहौर के किले में जा छुपा। मुहम्मद गौरी की सेना लाहौर का किला तो जीत न सकी अतः वह स्यालकोट की ओर बढ़ी और उसने स्यालकोट पर अधिकार कर लिया। मुहम्मद गौरी ने हासिन को स्यालकोट का हाकिम बनाया और वापस चला गया।

मुहम्मद गौरी के लौटने के बाद अमीर खुसरों लाहौर के किले से बाहर निकला। उसने स्यालकोट पर अधिकार करने के लिए सेना भेजी किन्तु जम्मू के राजा के अवरोध के कारण वह सफल न हो सका।

डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क ने चकदेव को जस्कर लिखा है और उसका शासन काल 1095 से 1165 माना है।

राजा विजयदेव– राजा विजयदेव 1165 में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसे सिंहासन पर बैठे अभी एक ही वर्ष हुआ था कि मुहम्मद गौरी ने भारत पर पुनः आक्रमण कर दिया। राजा विजय देव ने पुरु मन्हास को अपना दूत बना कर सुलतान के पास भेजा। सुलतान ने जब व्यास नदी को पार किया तो उसकी सहायता के लिए विजय देव ने अपने बेटे नृसिंह देव को डोगरा सेना देकर भेजा। सुलतान ने जम्मू के राजकुमार का भव्य स्वागत किया और उसे 'मियां जी' की उपाधि दी। उसके बाद जम्मू के राजवंश के लोग इस उपाधि को अपने नाम से पहले जोड़ने लगे और यह परम्परा आज भी बनी हुई है।

सुलतान गौरी ने 587 हिंजरी में दिल्ली के सम्राट पृथ्वीराज चौहान पर जब हमला किया तब जम्मू के राजा विजय सिंह की सेना ने सुलतान का साथ दिया। किन्तु सुलतान पराजित होकर गज़नी चला गया। पृथ्वीराज चौहान ने जम्मू के राजा से प्रतिशोध लेने के लिए जम्मू पर आक्रमण करने की योजना बनाई। किन्तु बाद में कन्नौज के राजा जयचन्द से उलझ पड़ने के कारण उसने यह योजना स्थगित कर दी।

सुलतान ने जब दोबारा दिल्ली पर हमला किया तो उसे भारत के कई राजाओं का सहयोग मिला। जम्मू के राजा ने भी उसकी सहायता के लिए राजकुमार नृसिंह देव को भेजा। इस लड़ाई में सुलतान सफल रहा और पृथ्वीराज पराजित हुआ।

राज नृसिंह देव– राजा विजय देव के देहावसान के बाद 1215 ई० (वि० सं 1272) नृसिंह देव जम्मू का राजा बना। उसे लड़ाईयों में भाग लेने का अवसर मिल चुका था, अतः उसने अपने कई पड़ोसी इलाकों को जीता। उसने अपने दरबार में कई

विद्वानों, पंड़ितों और दार्शनिकों को उच्च स्थान दिया। राजा नृसिंह देव ने तीस वर्ष राज्य किया।

राजा अर्जुनदेव– यह राजा सन् 1245 (तदानुसार वि० सं 1302) ई० में राजगद्दी पर बैठा। इसके शासन काल में कई उपद्रव हुए। बलबालता इलाके के बलबाल कबीले ने विद्रोह किया। अर्जुन देव ने उस कबीले के सरदार को छल कपट से मारा। इस घटना से क्रोधित होकर उसका बेटा दुल्ला उत्तेजित हो गया और उसने जम्मू राज्य को बहुत क्षति पहुँचाई। अन्ततः राजा ने उसे पकड़ कर फाँसी पर चढ़ा दिया।

राजा जोधदेव– राजा जोधदेव 1357 ई० (वि० सं 1300) में सिंहासनारूढ़ हुआ। इसके शासन काल में कश्मीर पर जुल्फिकार तुर्क ने आक्रमण किया और वहां का राजा सहदेव कश्मीर से भाग कर किश्तवाड़ आ गया। उसने राजा जोधदेव से सहायता माँगी। जोधदेव ने उसकी सहायता के लिए डोगरा सेना भेजी किन्तु उसके पहुंचने से पहले ही जुल्फिकार चला गया था।

राजा मालदेव

राजा मालदेव डुग्गर के महान राजाओं में परिगणित होता है। वह अति पराक्रमी, अदम्य साहसी और वीर योद्धा था। उसदा नाम डुग्गर के इतिहास में बड़े आदर और सम्मान के साथ लिया जाता है।

राजा मालदेव वि० सम्वत् 1404 (1347 ई०) में सिंहासनारूढ़ हुआ । वह शरीर से अति बलिष्ठ था। अतः वह अपने प्रतिद्वन्दियों को अपने सन्मुख टिकने ही नहीं देता था। उसके शत्रु भी उससे भयभीत रहते थे। उसके विषय में कहा जाता है कि वह जम्मू के निकट प्रवाहित तवी नदी से भारी पत्थर उठा कर लाता था। उसके द्वारा लाये पत्थर जम्मू की गलियों में आज भी प्रदर्शित किये जाते हैं।

राजा मालदेव के विषय में डुग्गर प्रदेश में कई दन्त कथाएँ प्रचलित हैं जिनमें एक कथा में यह कहा जाता है कि जब वह जसवां के राजा की राजकुमारी से विवाह करने जसवां में बारात लेकर गया तो वहाँ के लोगों ने अपने प्रदेश की परम्परा के अनुसार राजा के बल की परीक्षा लेने के लिए लकड़ी के कीले के स्थान पर एक वृक्ष के ठूंठ को ही उखाड़ने के लिए राजा मालदेव को कहा। राजा मालदेव को वास्तविकता का पता नहीं था। वह अपना घोड़ा दौड़ाता हुआ उस ठुंठ के पास आया और उसे जड़ों सहित उखाड़ फैंका किन्तु ऐसा प्रयत्न करते समय वृक्ष का ठूंठ घोड़े की कमर के ऊपर गिरा और घोड़ा मर गया। इस घटना के बाद जसवां के राजा ने बल परीक्षण की प्रथा को बन्द कर दिया।

राजा मालदेव ने जम्मू के निकटवर्ती कई इलाकों को जीता और उनका विलय अपने राज्य में कर लिया। राजा मालदेव के बारे में कुछेक इतिहासिक पुस्तकों में यह उल्लेख भी

मिलता है कि उसने पठानकोट दुर्ग पर आक्रमण करके उसे ध्वंस कर दिया था।

राजा मालदेव ने जम्मू में अपने रहने के लिए भव्य महल भी बनवाये जिन्हें 'राजा मालदेव की मंडी' कहा जाता रहा। ये महल अपने समय में वास्तुकला की दृष्टि से उत्कृष्ट और अति सुन्दर समझे जाते थे।

राजा मालदेव के समय में भिम्बर राज्य के निवासी शेख खोखर ने अपने क्षेत्र और पंजाब में बहुत उत्पात मचाया। उसका दमन करने के लिए दिल्ली के शहनशाह सुलतान मुहम्मद शाह ने शाहजादा हिमायुं खान को पंजाब में भेजा तो शेखा खोखर पंजाब से पलायन करके राजा मालदेव के राज्य की सीमा के भींतर छुप गया।

उन्हीं दिनों अमीर तैमूर ने भी भारत पर आक्रमण कर दिया। दिल्ली पर अधिकार करने के बाद वह हरिद्वार की ओर बढ़ा और वहां कुम्भ स्नान करने के लिए आये हुए हज़ारों श्रद्धालुओं का वध करने के बाद वह पहाड़ों के निचले भाग से होता हुआ जम्मू की सीमा के भीतर घुसा। उसने अपना पहला शिविर मानसर कस्बे में लगाया और वहां से वह प्रस्थान करके बेला गांव में पहुंचा। उस गांव के निवासियों ने तैमूर की सेना का सामना करने का प्रयास किया किन्तु शाही लशकर के आगे वे टिक़ न सके और जंगल की ओर भाग गए। तैमूर की सेना ने बेला गांव को लूटने के बाद उसे जला दिया। तैमूर की सेना ने मार्ग में तीन और बड़े-बड़े गांवों को लूटा और वहां के निवासियों को मौत के घाट उतार कर वह जम्मू की ओर बढ़ा।

जम्मू के राजा मालदेव को तैमूर के जम्मू आने की सूचना मिली तो राजा ने नगर की महिलाओं और बच्चों को सुरक्षा को दृष्टि से पहाड़ों की ओर भेज दिया और स्वयं डोगरा सामंतों और सैनिकों के साथ तैमूर का मुकाबला करने के लिए जम्मू की पहाड़ी के ऊपर मोर्चा लगा लिया। तैमूर की सेना जब उस पहाड़ी के नीचे से गुजरी तो जम्मू के राजा और उसके सैनिकों ने कोलाहल मचा कर तैमूर को अपनी उपस्थिति जताई। किन्तु तैमूर ने अपने सैनिकों को पहाड़ी के ऊपर चढ़कर जम्मू के राजा पर आक्रमण करने की आज्ञा नहीं दी। तैमूर ने उस समय एक नई ही रणनीति अपनाई। अपना लश्कर लेकर स्वयं तो वह आगे बढ़ गया किन्तु अपनी फौज की एक टुकड़ी को उसने जम्मू की पहाड़ी के नीचे छुपा दिया। जम्मू का राजा शाही लश्कर के चले जाने के बाद अपने आप को सुरक्षित समझकर जैसे ही पहाड़ी के नीचे आया, तैमूर के छुपे हुए सैनिकों ने राजा और उसके सामंतों को घेरे में लेने का प्रयास किया किन्तु राजा और उसके सामंतों ने आत्म-समर्पण करने की अपेक्षा तैमूर की सेना से लड़ना ही उचित समझा और वे उन पर

---

1. तैमूर ने दिल्ली पर 18 दिसम्बर 1398 को अधिकार किया।

2. तैमूर मानसर में जुमादा-इ-आखिर की 16 तारीख 802 हिज़री पहुँचा।

3. तारीख रियासत जम्मू व कश्मीर के अनुसार राजा माल देव जम्मू का पहला राजा था

टूट पड़े। तैमूर के सैनिक प्रशिक्षित थे। उन्होंने इस लड़ाई में राजा के अनेक सैनिकों को मार डाला और राजा और उसके कई सांमतों को घायल कर दिया। उन्होंने घायल राजा को जंजीरों में बांधा और तैमूर के सन्मुख पेश किया। राजा ने तैमूर से संधि कर ली। तैमूर ने उसे मुक्त करके जम्मू भेज दिया।

तैमूर ने चन्द्रभागा नदी को पार किया और शेखा खोखर और उसके बेटे दशरथ खोखर को भी कैद कर लिया। वह उन दोनों को बन्दी बना कर अपने साथ ले गया।

तैमूर के जम्मू क्षेत्र से चले जाने के बाद राजा मालदेव ने अपनी राज्य व्यवस्था को पुन: सुव्यवस्थित किया और प्रजा में व्यापक आतंक और भय को दूर किया।

राजा मालदेव ने जम्मू में 44 वर्ष राज्य किया और उसने वि० सम्वत् 1414 (1398 ई०) में अपना शरीर छोड़ा।

राजा भीम देव

राजा मालदेव के बाद जम्मू के सिंहासन पर उसका बेटा जमीरदेव विक्रमी सम्वत् 1414 (1358 ई०) को राजगद्दी पर बैठा। उसने अपने राज्य की सीमा को सुरक्षित रखने के लिए अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाया और अधीनस्थ सामंतों को अपने कड़े नियंत्रण में रखा।

उसके समय में दशरथ खोखर ने तैमूर की कैद से बच निकलने के बाद पंजाब के कई हिस्सों पर आक्रमण करके लाहौर से लेकर जालन्धर तक का क्षेत्र अपने अधिकार में कर लिया।

उन दिनों दिल्ली में सैय्यद वंश के संस्थापिक खिज्र खान का शासन था। उसने खोखरों के बढ़ते हुए कदमों को रोकने के लिए अपनी सेना को पंजाब में भेजने का मन बनाया ही था कि उसका देहान्त हो गया और उसके स्थान पर उसका बेटा सुलतान मुबारक शाह दिल्ली में राज़गद्दी पर बैठा। उसने दशरथ खोखर का दमन करने के लिए सेना का नेतृत्व स्वयं किया और दशरथ खोखर को लड़ाई के लिए ललकारा। दशरथ खोखर ने सुलतान की सेना के साथ चालीस दिन तक डट कर मुकाबला किया। जब

---

1. डॉ० सुखदेव सिंह के मतानुसार मालदेव 1360 ई० के लगभग जम्मू की राजगद्दी पर बैठा और उसने 1400 या 1401 में शरीर छोड़ा।

2. नृसिंहदास नरगिस लिखित तारीख डोगरा देश में मालदेव के सिंहासनारूढ़ होने का समय 1357 ई० वर्णित है।

3. तैमूर ने अपनी आत्मकथा में जम्मू के राजा द्वारा इस्लाम धर्म स्वीकार कर लेने की बात लिखी है।

4. बेला गांव से बबौर की पहचान की जा सकती है। सम्भव है कि बबौर नगर का ध्वंस तैमूर की सेना ने किया हो।

5. डाक्टर सुखदेव चाड़क का अनुमान है कि मालदेव ने बबौर से अपनी राजधानी जम्मू बदली।

उसने अपनी स्थिति कमजोर देखी वह वहां से भाग आया और अपने इलाका भिम्बर के पहाड़ों की ओर चला गया। सुलतान ने दशरथ खोखर का पीछा चिनाब नदी तक किया। किन्तु खोखर सुलतान के हाथ नहीं आया। सुलतान ने दशरथ खोखर का दमन करने के लिए जम्मू के राजा ज़मीरदेव से सहायता मांगी। ज़मीरदेव अपनी सेना को लेकर सुलतान के शिविर में उपस्थित हुआ। सुलतान ने उसे दिल्ली की सेना के साथ दशरथ खोखर का पीछा करने के लिए झक्खड़ किले की ओर प्रस्थान करने के लिए कहा। राजा सुलतान की सेना के साथ झक्खड़ किले को जीतने के लिए आगे बढ़ा। दिल्ली की सेना जब उस किले तक पहुँची तो खोखर उस किले को खाली करके पहाड़ों पर चढ़ गया।

दिल्ली का सुलतान मुबारक शाह दशरथ खोखर को पकड़ने में जब असफल रहा तो उसने यह काम जम्मू के राजा ज़मीर देव को सौंपा। सुलतान ने ज़मीर देव को प्रोत्साहन हेतु 'भीम देव' की उपाधि प्रदान की और उसे बाईस पहाड़ी रियासतों का सरदार बना दिया।

सुलतान मुबारक शाह इस अभियान के बाद पहले लाहौर आया और फिर वह वहां से दिल्ली चला गया। सुलतान के दिल्ली चले जाने के बाद दशरथ खोखर पहाड़ों से नीचे उतरा और उसने दोबारा लाहौर और उसके आस-पास के क्षेत्र में उपद्रव मचाना शुरू किये। उसने लाहौर दुर्ग पर अधिकार करने की चेष्टा भी की। किन्तु असफल रहा। लाहौर से खोखर कलानौर की ओर चला गया।

लाहौर के हाकिम ने जम्मू के राजा भीमदेव को आदेश भेजा कि वह अपनी सेना लेकर आये और दशरथ खोखर का पीछा करे। राजा भीम देव ने वैसा ही किया। वह अपनी सेना लेकर कलानोर की ओर बढ़ा। किन्तु दशरथ खोखर ने राजा को मार्ग में ही घेर लिया। परिणामस्वरूप दोनों के मध्य लड़ाई हुई और इस लड़ाई में तीर लगने से जम्मू का राजा भीम देव मारा गया।

राजा अजीब देव

जम्मू के राजा भीम देव के लड़ाई में मारे जाने के बाद उसका अल्प व्यस्क बेटा अजीब देव जम्मू की राज गद्दी पर वि० सम्वत् 1470 (1413 ई०) में बैठा। वह बहुत ही छोटी आयु का था। अत: उसका मामा मेहता मरदाना उसका संरक्षक बना। मेहता मरदाना रक्वाल कबीले का था, अत: जम्मू का प्रशासक बनते ही उसने कई जमबाल सरदारों का वध करवा दिया और कईयों को बन्दी बना दिया। उसने सरकारी पदों पर अपने कबीले के लोगों को नियुक्त किया और उन्हें पदोन्नतियां देकर प्रशासन पर पूर्ण नियंत्रण कर लिया। मेहता मरदाना ने काहना चक्क का इलाका अपने ही एक भाई मेहता वीर सिंह रक्वाल को प्रशासन चलाने के लिए सौंपा। मेहता वीर सिंह ने इस क्षेत्र का

प्रशासक बनने के बाद अपना प्रभाव इतना अधिक बढ़ा लिया कि जम्मू दरबार का वह एक महत्त्वपूर्ण सामंत समझा जाने लगा।

वि० सम्वत् 1481 (1425 ई०) में धार कोट गांव का एक ब्राह्मण जिसका नाम जित्तो था, उसके पास अम्ब गरोटा गांव में आया और उसने मेहतां से कृषि कर्म करने के लिए ज़मीन का एक टुकड़ा माँगा। मेहता वीर सिंह उस ब्राह्मण को अपने साथ जम्मू में ले गया और वहां उसने राजा अजीब देव से उसे एक लिखित पट्टा दिलवाया जिस में उसे जाड़ बदर में खाली पड़ी ज़मीन का एक हिस्सा कृषि के लिए इस शर्त पर देने का उल्लेख था कि वह उपज का चौथा भाग राजा को मालिया के रूप दिया करेगा।

जित्तो ब्राह्मण पट्टा लेकर जाड़ बदर में आ गया। उसे जो ज़मीन दी गई थी वह कृषि योग्य नहीं थी। वहां झाड़ियां थीं। जित्तो ने झाड़ियों को उखाड़ फैंका और ज़मीन को कृषि योग्य बना कर अक्तूबर मास में वहाँ गेहूं बो दी। उस का श्रम फल लाया और उसके खेतों में बहुत बढ़िया फसल हुई। उसने फसल काटी और गेहूं के ढेर लगा दिया।

मेहता वीर सिंह मालिया के रूप में उत्पादित गेहूं का हिस्सा लेने जब जाड़ बदर में आया तो वहाँ वह जित्तो के खेत में बढ़ियां गेहूं के ढेर लगे देख कर विस्मित रह गया। उसके मन में लालच आ गया और उसने जित्तो से कहा कि वह गेहूं का चौथा हिस्सा ले ले और शेष गेहूं सरकार को सौंप दे। जित्तो मेहता की बात सुन स्तम्भित रह गया। उसने मेहता को याद करवाया कि पट्टे में तो सरकार को चौथा हिस्सा देने का उल्लेख है, अत: सरकार का चौथा हिस्सा आप ले लो। किन्तु मेहता वीर सिंह ने बड़े अहंकार से कहा कि चौथा हिस्सा तुम लो। इस बात पर उन दोनों में विवाद छिड़ गया। मेहता वीर सिंह ने क्रोध में आकर गेहूं मापने का बर्तन जो लकड़ी का बना हुआ था अपने हाथ में लिया और गेहूं माप-माप कर बोरे भरने लगा। जित्तो से न रहा गया। उसने मेहता से बर्तन छीना और क्रोध में उसे ज़ोर से अपने सिर पर पटका। इससे उसका सिर फट गया और खून की धाराएं बहने लगी। वह गेहूं के ढेर के ऊपर बैठ गया और उसने अपनी जेब से कटार निकाल कर कहा कि तुम केवल में मेरी गेहूं ही क्यों खाते हो, लो साथ में मेरा मांस भी खाओ। इतना कहने के बाद उसने अपना कटारा अपने पेट में घुसेड़ दिया। कटार घुसने से उसका ज़िगर फट गया। और उसकी अन्तड़ियां बाहर निकल आईं। कुछ क्षणों के बाद वह वहीं ढेर हो गया। उसकी आठ वर्षीय बेटी बुआ कौड़ी को जब इस घटना का पता चला तो वह रोती चीखती चलाती हुई घटनास्थल पर आई। उसने लकड़ियाँ इकट्ठी करके चिता बनाई और अपने बाप के साथ सती हो गई।

---

1. इतिहास की पुस्तकों में राजा अजीब देव को कई नामों से अभिहित किया गया है। किसी पुस्तक में उसका नाम अजायव देव है तो किसी में अजयोदेव है।

इस घटना से कृषक वर्ग रुक्वाल कबीले के विरुद्ध हो गया। राजा अजीब देव ने भी रुक्वाल सरदारों को ऊँचे पदों से हटा दिया। उसने चाड़क कबीले में विवाह किया था, अत: चाड़क और जमबाल मिलकर उसका प्रशासन चलाने लगे।

राजा अजीब देव के शासन काल में दशरथ खोखर ने दिल्ली के सुलतान के विरुद्ध अपनी विद्रोहात्मक गतिविधियाँ और बढ़ा लीं। उसने पूरे चिभाल क्षेत्र पर अपना अधिकार जमा लिया। खोखर ने अपनी सेना को पुन: संगठित किया और पंजाब को जीतने के लिए लाहौर पर बार-बार आक्रमण किये। दिल्ली के सुलतान ने मलिक बहलोल लोदी को जब खोखर का दमन करने के लिए पंजाब में भेजा तो दशरथ खोखर ने बहलोल लोदी को दिल्ली का सुलतान बनाने का प्रलोभन देकर उससे मित्रता गांठ ली। दिल्ली में जब मुबारक शाह का कतल हुआ और महमूद शाह दिल्ली का नया सुलतान बना तो दशरथ खोखर ने अपना वचन पूरा किया और बहलोल लोधी को दिल्ली का सुलतान बना दिया।

बहलोल लोदी के सुलतान बनने के बाद दशरथ खोखर ने शिवालिक की पहाड़ी रियासतों में अपना प्रभाव और भी बढ़ा लिया। उसने मंगला को अपनी राजधानी बनाया और चिनाव नदी के तट पर भव्य महल बनवाये।

उन दिनों राजा अजीब देव के महल में मीना नाम की एक सुन्दरी दासी के रूप में रहती थी। उसके सौंदर्य की कीर्ति दूर-दूर तक फैली हुई थी। दशरथ खोखर ने भी जब उसे देखा तो वह उसका दीवाना हो गया। उसने राजा अजीब देव से उस सुन्दरी को मांग लिया। कुछ शर्तों के साथ राजा ने उसे दशरथ खोखर को सौंप दिया। दशरथ खोखर ने उस सुन्दरी मीना के नाम पर मीनावर कस्बा बसाया जो एक पहाड़ी पर एक नदी के निकट स्थित है।

राजा अजीब देव ने दशरथ खोखर के साथ अपने सम्बन्ध मित्रता पूर्ण रखे। उसने कश्मीर के राजा सुलतान जैन्-उलावद्दीन से भी घनिष्ठ सम्बन्ध बनाये। उसने अपने बेटे वीरम देव को कश्मीर के सुलतान की सेवा में कश्मीर भेजा और सुलतान ने उस पर प्रसन्न होकर कश्मीर में जागीर भी दी।

राजा अजीब देव ने इक्कतीस वर्ष सुखपूर्वक शासन करने के बाद वि० सम्वत 1501 (1444 ई०) में अपना शरीर छोड़ा।

राजा वीरम देव

राजा अजीब देव के देहावसान के बाद उसका बेटा वीरम देव वि० सम्वत् 1501 में जम्मू की राजगद्दी पर बैठा। वह दिल्ली के सुलतान बहलोल लोधी और कश्मीर के बादशाह जैल-उल्लावद्दीन का समकालीन था।

उसके शासन काल में दशरथ खोखर ने अपनी सैन्य शक्ति बढ़ा ली और वह भिम्बर के इलाके से बाहर निकल कर जम्मू राज्य के सीमावर्ती इलाके के लोगों को राजा वीरम देव के विरुद्ध विद्रोह करने की लिए भड़काने लगा। उसके बहकावे में आकर कुछ कबीलों के लोगों ने जम्मृ के राजा के विरोध में आन्दोलन छेड़ दिया किन्तु वीरम देव ने कश्मीर के बादशाह जैन उल्लावद्दीन से सैनिक सहायता ले कर आन्दोलन-कारियों का दमन किया इससे उसके राज्य में पुनः शांति स्थापित हो गई।

दशरथ खोखर ने जम्मू के राज्य से मुंह मोड़ कर बहलोल लोदी के इलाके में जब विद्रोह भड़काने की कोशिश की तो दिल्ली का सुलतान भी परेशान हो गया। सुलतान ने राजा वीरमदेव को गुप्त रूप से दशरथ खोखर का वध करवाने का काम सौंपा। जम्मू के राजा ने अपनी एक अति सुन्दर दासी से दशरथ खोखर की हत्या करने की योजना बनाई। उसने अपनी दासी को एक भाऊ कबीले के सरदार के साथ दशरथ खोखर के पास भेजा। दशरथ खोखर ने उस दासी को अपने महल में रख लिया। एक दिन दशरथ खोखर जब गहरी नींद सोया हुआ था तो उस दासी ने उसके पेट में खंजर घोंप कर उसकी हत्या कर दी।

दशरथ खोखर की मौत का समाचार सुन कर दिल्ली का सुलतान बहुत प्रसन्न हुआ। उसने अपनी सेना को भेज कर दशरथ खोखर के इलाके पर अधिकार कर लिया। सुलतान बहलोल लोधी ने दशरथ खोखर के प्रभाव को समूल नष्ट करने के लिए उसकी राजधानी मंगला को नष्ट कर दिया और उसके निकट उसने एक नया नगर बसाया जिसका नाम उसने बहलोलपुर रखा। वहाँ उसने एक किला भी बनवाया।

दिल्ली के सुलतान ने जम्मू के राजा वीरम देव को पुरस्कार के रूप में स्यालकोट और बहलोलपुर की निज़ामत (प्रशासन) सौंपी और उसके अधिकार भी बढ़ा दिये। जम्मू के राजा ने उन्नतीस वर्ष तक इस इलाके की निज़ामत सम्भाली।

किन्तु 894 हिज़री में जब बहलोल लोधी का देहान्त हो गया तो उसके बेटे सुलतान बहलोल ने जम्मू के राजा से स्याल कोट और बहलोलपुर की निज़ामत का अधिकार छीन लिया। किन्तु जम्मू जसरोटा, साम्बा, अखनूर, कलीठ और मनाबर में उसकी सरदारी कायम रखी।

राजा वीरम देव अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अपने बजीर साहिल देव के साथ

---

1. बहलोल लोधी 19 अप्रैल 1451 को दिल्ली का सुलतान बना।

2. डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क का मत है कि राजा अजीब देव का देहान्त वि० सम्वत् 1511 तदानुसार 1454 ई० को हुआ था।

3. [illegible] से आभार उद्धृत।

सुलतान के बुलावे पर दिल्ली गया तो सुलतान ने किसी बात पर नाराज होकर साहिल देव का वध करवा दिया। राजा वीरम देव अपने वजीर की मौत के बाद जम्मू की ओर भागा किन्तु सुलतान के सैनिकों ने राजा का पीछा किया और उसे वि० सम्वत् 1546 में मार डाला।

राजा घोघड़ देव

राजा वीरम देव के देहान्त के बाद उसका बेटा घोघड़ देव जम्मू की राजगद्दी पर वि० सम्वत् 1546 (1500 ई०) में बैठा।

घोघड़ देव के शासन काल में सब से बड़ी घटना यह घटी कि जम्मू में एक भयंकर भूचाल आया जिसके कारण जम्मू में कई मकान गिर गए जिसके कारण सैंकड़ों व्यक्ति मलबे के नीचे दब कर मर गये। उस दिन लोगों ने भूचाल के बीस झटके सहे। इस प्रकार का भूचाल जम्मू के इलाके में पहले कभी नहीं आया था। इस भूचाल के कारण जम्मू नगर को बहुत क्षति पहुंची। पुरानी इमारतें धराशायी हो गईं। कच्चे मकान टूट गये, पक्के मकानों की दीवारों में दरारें आ गईं। कहते हैं कि उसी दिन इस भूचाल के झटके काबुल और भारत के कई अन्य प्रदेशों में भी महसूस किये गए।

राजा घोघड़ देव के शासन काल में बाबर ने सिन्ध नदी को पार किया और वह 932 हिज़री तदानुसार 1525 ई० में भारत पहुंचा। वह बड़ी तेज़ी से आगे बढ़ा और जम्मू के राजा की सीमा के पास बहलोल पुर से होता हुआ स्याल कोट चला गया।

जम्मू के राजा घोघड़ देव ने बाबर की सेवा में कई उपहार भेजे। उसने बाबर के सैनिकों के लिए खाद्यान्न भी भेजा। बाबर ने जम्मू के राजा के उपहारों को स्वीकार किया और बदले में उन्हें अपने शिविर बुलाया।

राजा घोघड़ देव के शासन काल में ही बाबर ने दिल्ली पर अधिकार करके मुगल वंश के राज्य की स्थापना की।

राजा घोघड़ देव ने बत्तीस वर्ष राज्य करने के बाद 937 हिज़री में अपना शरीर छोड़ कर अज्ञात लोक में वास किया।

---

1. एक अन्य ऐतिहासिक पुस्तक में दशरथ खोखर की हत्या उसकी ही रानी के हाथों वर्णित है। वह रानी राय भीम की बेटी थी। दशरथ खोखर ने उसके बाप की लड़ाई में हत्या की थी और रानी ने दशरथ खोखर की हत्या करके अपने बाप की हत्या का बदला लिया।

2. डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार राजा वीरम देव ने 1454 ई० से लेकर 1499-50 ई० तक राज्य किया।

राजा कपूर देव

राजा घोघड़ देव के देहावसान के बाद उसका बेटा कपूर देव सम्वत 1578 वि० (1531 ई०) तदानुसार 937 हिज़री में जम्मू की राज गद्दी पर बैठा।

उन दिनों आगरा में सुलतान नसरुद्दीन मुहम्मद हिमांयु राज्य करता था। उसे शेरखान अफगान ने 947 हिज़री में लड़ाई में पराजित कर के ईरान की ओर भगा दिया। किन्तु शेर शाह सूरी भी केवल पांच वर्ष शासन चलाने के बाद मर गया और उसका बेटा जलाल खान, सलीम शाह के नाम से भारत का सुलतान बना। उसके राज्य काल में पंजाब में आज़म हिमायुं ने उसके विरुद्ध विद्रोह किया। सलीम शाह उसका दमन करने के लिए पंजाब में आया किन्तु आज़म हिमायुं और उसका सहयोगी अज़ीम खान जेहलम नदी पार करके भिम्बर राज्य में आ गए और वहां से वे कश्मीर चले गए। सलीम शाह उनका पीछा करता हुआ वान गांव तक आ गया। यह गांव जम्मू की पहाड़ियों के नीचे बसा हुआ था। सलीम शाह ने यहाँ पहुँच कर जम्मू पर हमला करके इस पर अधिकार करने की योजना बनाई किन्तु सौभाग्य से उसने अपना मन बदल लिया और इस प्रकार राजा कपूर देव का राज्य नष्ट होने से बच गया।

राजा कपूर देव के शासन काल में ही मिर्जा कामरान हिमांयु से पराजित होने के बाद जम्मू आया और उसने राजा से शरण मांगी। राजा कपूर देव बहुत ही दूरदर्शी राजा था। उसने मिर्जा को शरण तो दी किन्तु उसे मनकोट के राजा प्रताप देव के पास भेज दिया। मिर्जा ने मनकोट में अपने रहने के लिए महल बनवाने का काम भी शुरू किया किन्तु उसे राजा प्रताप देव पर किसी बात पर सन्देह हो गया और वह मनकोट से चला गया। जम्मू के राजा कपूर देव ने इस घटना को बहुत ही गुप्त रखा और जब हिमांयु भारत का दूसरी बार सुलतान बना तो उसने उस से भी अपने सम्बन्ध सुधारने का यत्न किया। राजा कपूर देव के शासन काल में ही हिमांयु का देहान्त और अकबर का राज्याभिषेक हुआ।

राजा कपूर देव ने अपने राज्य की सीमाओं को सुरक्षित रखने के लिए 'कपूर गढ़' नाम का एक दुर्ग डंगसाल क्षेत्र में बनवाया। राजा ने अपने राज्य का विस्तार करने के लिए यत्न तो बहुत किया किन्तु उसे विशेष सफलता न मिली।

राजा कपूर देव धार्मिक प्रवृत्ति का व्यक्ति था। उसने अपने जीवनकाल में कई तीर्थ-स्थानों की यात्रा की। वह सिक्खों के तीसरे गुरु अमर दास और गुरु अंगद के दर्शन

---

1. डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क ने राजा घोघड़ देव के शासन काल का समय 1500 ई० से 1530 ई० तक निश्चित किया है।

2. घोघड़ देव को राजदर्शनी में खोखर देव लिखा है।

3. जम्मू में भूचाल आने का समय राजदर्शनी में 912 हिज़री उल्लेखित है।

4. जिस दिन भूचाल आया उस दिन वैसाखा नक्षत्र था।

करने के लिए उनके आश्रमों में भी गया और उनका आशीर्वाद प्राप्त करके जम्मू लौटा।

राजा कपूर देव ने कई विवाह किये थे। उसकी दो रानियाँ राजघरों से भी थीं। उनमें से एक रानी का ज्येष्ठ पुत्र जगदेव और दूसरी रानी का बेटा सैंहल देव था। इसके अतिरिक्त राजा के बीस बेटे और भी थे। किन्तु जगदेव और सैहल देव जिसे समाहिल देव भी कहते थे राज गद्दी को प्राप्त करने के लिए प्रतिद्वन्द्वी बने हुए थे। राजा कपूर देव ने उनमें कलह समाप्त करने के लिए अपने राज्य का विभाजन 978 हिज़री में किया।

राजा ने अपने राज्य का एक भाग जगदेव को सौंपा और दूसरा भाग उसने सेह्लदेव या स्मैहलदेव को सौंप दिया। राजा ने तवी नदी को दोनों राज्यों के मध्य सीमा रेखा निश्चित किया। तवी के पूर्व में जगदेव ने बाहु को अपनी राजधानी बनाया और वह वहाँ अपना शासन चलाने लगा। तवी नदी के दूसरी ओर स्मैहल देव ने जम्मू को ही अपनी राजधानी बनाये रखा।

अपने दोनों बेटों में अपना राज्य बांट कर राजा कपूर देव इकतालीस वर्ष राज्य करने के बाद वि० सम्वत् 1626 में इस संसार से चल बसा।

राजा कपूर देव का समय भारत के इतिहास में उथल-पुथल ही युग रहा। अत: राजा कपूर देव अपने शासन काल में कोई उल्लेखनीय उपलब्धि प्राप्त न कर सका। उसका राज्य का विभाजन करना भी राजनैतिक दृष्टि से एक भूल ही मानी गई क्योंकि इससे राजा के मरने के बाद यह पर्वतीय राज्य दुर्बल हो गया।

राजा सामिल देव

राजा सामिलदेव को जम्मू का राज्य उसके पिता राजा कपूर देव ने अपने राज्य का बंटवारा करने के बाद प्रदान किया। राजा सामिल देव को कई ऐतिहासिक ग्रंथों में राजा स्मैहलदेव और कई पुस्तकों में सैहल देव भी उल्लेखित है। राजा सामिल देव सन् 1570 ई० (वि० 1626) के लगभग जम्मू की राजगद्दी पर बैठा। वह एक बहुत ही सीधा सादा और सरल हृदय का व्यक्ति था। उसे प्रशासन का कोई अनुभव नहीं था। वह राज्य कार्य सम्भालने में भी असमर्थ था, अत: उसका भाई मिया माना ही उसकी ओर से प्रशासन चलाता था।

राजा सामिल देव का एक और भाई लालदेव भी था। वह बहुत ही चतुर, नीतिज्ञ और महत्वाकांक्षी सामंत था। राजा कपूर देव भी उसे बहुत चाहता था और अपने राज्य का उत्तराधिकारी भी उसे ही बनाना चाहता था किन्तु कबीले की परम्पराओं को ध्यान में रख कर वह ऐसा न कर सका।

डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क के मतानुसार कपूर देव ने सन् 1530 से 1570 तक राज्य किया।

मियां लाल देव के मन में राजा बनने की लालसा बहुत अधिक थी। राजा सामिल देव के शासन काल में उसने स्यालकोट में मुगल बादशाह के द्वारा नियुक्त हाकिम सादिक खान से मेहता सुन्दर दास के माध्यम से गुप्त रूप से सम्पर्क स्थापित किया और उससे कहा कि यदि वह उसे बाहु का राजा बना दे तो वह उसे एक लाख रुपये देगा। हाकिम 997 हिज़री में जम्मू आया और उसने बाहु के राजा जगदेव को जम्मू बुलवा कर अपने सिपाहियों से हत्या करवा दी। लोगों को जब इस बात का पता चला कि जगदेव की हत्या लालदेव ने करवाई है तो वे लालदेव के विरोध में उठ खड़े हुए। लालदेव ने अपना कलंक धोने के लिए हाकिम पर ही हमला बोल दिया। हाकिम लालदेव के व्यवहार से आश्चर्यचकित रह गया। उसने लालदेव के साथ मुकाबला करने के लिए अपनी सेना को आगे धकेला किन्तु लालदेव ने हाकिम और उसकी सेना को लड़ाई के मैदान से भगा दिया।

मियां लाल देव ने अपने कबीले के लोगों को तुष्ट करने के लिए जगदेव के पुत्र परसराम को बाहु की गद्दी पर बैठाया।

मियां लाल देव जब बाहु की गद्दी प्राप्त न कर सका तो उसने अपने भाई से अपने हिस्से का इलाका मांगना शुरू किया। मियां माना ने अपने इस स्वार्थी भाई से छुटकारा पाने के लिए रामगढ़ का प्रशासन उसे सौंप दिया। इस प्रकार राजा सामिलदेव के राज्य का प्रशासन उसके दो भाई चलने लगे। मियां माना तवी से चन्द्रभागा नदी के इलाके का प्रशासक बना और मियां लाल देव चन्द्रभागा के दूसरी और स्थित राम गढ़ क्षेत्र का प्रशासक बना।

मियां लाल देव ने रामगढ़ क्षेत्र का प्रशासक बनने के बाद रामगढ़ का दुर्ग छोड़ दिया और उसने अपने रहने के लिए नये महल अम्बारायण के निकट चन्द्रभागा नदी के तट पर निर्मित किया और उसका नाम उसने सूरगढ़ रखा।

राजा सामिल देव अपने भाईयों का सत्ता के लिए संघर्ष देखते हुए 1003 हिज़री में इस संसार से चल बसा।

राजा संग्राम देव

राजा सामिल देव की मृत्यु के बाद मियां माना ने राजा के अल्प व्यस्क पुत्र संग्राम देव को जम्मू की राजगद्दी पर वि० सम्वत् 1643 में बैठाया। मिंया माना स्वयं इस राजा का संरक्षक बन कर सत्ता का सुख भोगने लगा।

राजा संग्राम देव को जम्मू का राजा बने हुए अभी कुछ ही वर्ष हुए थे कि मुगल सम्राट् अकबर कश्मीर का भ्रमण करके लाहौर आया और वहाँ उसने एक शाही दरबार आयोजित किया जिसमें कांगड़ा, गलेर, जसबां, मंडी, सुकेत, कुल्हेर, भद्रवाह, बलौर, जसरोटा लखन

पुर,मनकोट और बाहु के राजा सम्मिलित हुए किन्तु राजा संग्राम देव के प्रतिनिधि मिंया माना और लालदेव ने इस में भाग नहीं लिया। मियां माना ने मुगल सम्राट की सीमा के भीतर विप्लव पैदा कराने का यत्न किया। परिणामस्वरूप मुगल हाकिम ने हसन बेग अमरी को जम्मू के राजा को दंडित करने के लिए सेना देकर जम्मू की ओर भेजा।

मियां मना को जैसे ही मुगल सेना के आगमन की सूचना मिली उसने लखनपुर, जसरोटा, मनकोट दरमैडी (नूरपुर) के राजाओं को सहायता के लिए जम्मू बुला भेजा। पहाड़ी इलाके के कई राजा जम्मू में अपनी अपनी सेना लेकर आ गए और उन्होंने मि़यां माना के नेतृत्व में मुगल सेना से टक्कर ले ली। मुगल सेना को लड़ाई के आरम्भ में थोड़ी बहुत क्षति अवश्य पहुँची किन्तु बाद में मुगल सेना सम्भल गई और उसने जम्मू रामगढ, अखनूर, क्लीठ और जसरोटा पर अधिकार कर लिया। बाहु के राजा परस राम ने मुगल सेना की इस लड़ाई में सहायता की। मुगल अधिकारियों ने इस पर्वतीय इलाके को जीतने के बाद इसका प्रशासक स्यालकोट के जागीरदार राजा मानसिंह को नियुक्त किया। जहाँगीर ने बाद में ने सफदरखान को इस इलाके का हाकिम नियुक्त किया किन्तु जम्मू और बाहु का राजा परसराम को बना दिया।

मियां माना इस लड़ाई के बाद जम्मू से भाग गया और मियां लाल देव अपने परिवार सहित सूर गढ़ से एक किश्ती पर बैठ कर किसी अज्ञात स्थान की ओर चला गया। बाद में उसका कोई पता न चला।

राजा संग्राम देव लड़ाई में पराजित होने के बाद हताश अवस्था में पहाड़ों में घूमता-फिरता रहा। किन्तु बाद में उसने अपने सलाहकारों के अनुरोध पर मुगल सम्राट् जहाँगीर से अहमदाबाद में भेंट की और अपराध के लिए क्षमा याचना की। संग्राम देव की प्रार्थना को जहाँगीर ने स्वीकार कर लिया और जब वह दक्षिण से लौट कर कश्मीर आया तो उसने 1029 हिजरी को एक फरमान निकाल कर जम्मू का राज्य संग्राम देव को लौटा दिया। औरंगजेब ने संग्राम देव को यह आदेश भी दिया कि वह किश्तवाड़ के राजा गौड़ सिंह को बन्दी बनाने में मुगल सेना की सहायता भी करे। राजा संग्राम देव ने मुगल शहनशाह के आदेश का पालन किया और अपनी सेना को साथ ले जाकर किश्तवाड़ विजय में मुगल सेना की सहायता की। राजा संग्राम देव ने कांगड़ा दुर्ग विजय में अपनी सेना भेज कर मुगल हाकमों की मदद कर के उनसे पुरस्कार प्राप्त किया। राजा ने दक्षिण विजय में भी मुगल सेना का साथ दिया और वहीं लड़ते-लड़ते अपने प्राण उत्सर्ग किए।

राजा भूपत देव

राजा संग्राम देव का दक्षिण भारत में मुगल सेना की ओर से लड़ते हुए जब देहान्त हो गया तो जम्मू के सामंतों ने उसके पुत्र भूपत देव को जम्मू के सिंहासन पर तदानुसार

1627 ई० को बैठाया। उसी वर्ष दिल्ली के तख्त पर मुगल सम्राट् शाहजहां भी बैठा।

राजा भूपत देव ने परम्परागत ढंग से जम्मू राज्य का प्रशासन चलाने का प्रयास किया किन्तु मुगल सम्राट् की ओर से कांगड़ा में नियुक्त फौजदार शाह कुली खान ने इसे पसंद नहीं किया। फौजदार यह चाहता था कि भूपतदेव उसके निर्देशानुसार ही प्रशासन चलाये।

राजा भूपत देव ने फौजदार की बात जब न मानी तो उसने जम्मू के इस स्वाभिमानी राजा का वध करवा दिया।

राजा भूपतदेव ने जम्मू में इक्कतीस वर्ष के लगभग राज्य किया।

राजा हरदेव

राजा भूपतदेव की हत्या के बाद उसका बेटा हरदेव जम्मू के राजसिंहासन पर वि० सम्वत् 1707 (1650 ई०) में बैठा। उस समय दिल्ली में मुगल सम्राट् औरंगजेब को भारत का सम्राट बने हुए एक वर्ष हो चुका था। औरंगजेब ने जम्मू के इलाके की प्रबन्ध व्यवस्था के लिए खलिल-उल्ला खान को फौजदार नियुक्त कर के भेजा। खलिल-उल्ल खान मुगल सेना की एक टुकड़ी लेकर जम्मू आ गया और उसने पुरानी मंडी के नीचे जिस स्थान में अपना सैनिक शिविर लगाया उस स्थान का नाम उर्दू बाज़ार पड़ गया। मुगल शहनशाह ने बाद में खलिल-उल्ल खान को वापिस बुला लिया और उसके स्थान पर मीरखान को जम्मू और बाहु का फौजदार बना कर भेजा।

मीर खान ने जम्मू के राजा हर देव को तथा राजवंश के अन्य सरदारों को मुगल सेना की सहायता करने के लिए दक्षिण के अभियान में भाग लेने के लिए प्रेरित किया। मीर खान के अनुरोध पर जम्मू का राजा हरदेव राजरूप और बाहु सिंह मन्हास जैसे सांमतों को अपने साथ लेकर दक्षिण भारत चला गया। उसके साथ डोगरा सेना का एक दल भी गया।

राजा हरदेव ने दक्षिण में जाने से पहले अपने भाई शारंगधरदेव को जम्मू का शासन चलाने के लिए अपना प्रतिनिधि नियुक्त किया।

राजा हरदेव जब दक्षिण में चला गया तो मीर खान ने शारंगधर को इंस्लाम धर्म को संरक्षण देने के लिए उसे जम्मू में मस्जिद निर्मित करने और उसमें सरकारी खर्च पर काज़ी और खातिब की नियुक्तियां करने की सलाह दी। शांरगधरदेव ने मीर खान की सलाह पर ऐसा ही किया। शारंगधर देव ने इस्लाम धर्म के प्रचार और प्रसार के लिए

डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार राजा भूपत देव ने 1627 ई० से लेकर 1656 ई० तक राज्य किया। उसके हस्ताक्षर एक फारसी सनद में उपलब्ध है। यह सनद भूरीसिंह म्यूज़िम चम्बा में सुरक्षित है।

मुल्ला और काजियों को खुली छूट दी और स्वयं भी मीरखान के आदेशों का बड़ी नम्रता से पालन करने लगा।

मीर खान को जब वापिस बुला लिया गया तो मुगल सम्राट की ओर से शाहबज़ खान अफगान जम्मू और बाहु का नया हाकिम नियुक्त हुआ। नये हाकिम ने भी जम्मू में इस्लाम धर्म के अवलम्बियों को सुविधाएं देने का आदेश शारंगधर देव को दिया जिसे उसने स्वीकार कर लिया।

शारंगधर देव के समय में जम्मू और बाहु में कई नई मस्जिदें बनीं और इस्लाम धर्म बहुत फला और फूला।

उधर राजा हरदेव दक्षिण के अभियान में मुगल पक्ष की ओर से लड़ता हुआ वि० सम्वत् 1747 (1687 ई०) में वीरगति को प्राप्त हो गया।

राजा गजै सिंह

राजा हरदेव की मृत्यु का समाचार मिलने के बाद जम्मू के दरबारियों ने राजा हरदेव के बड़े बेटे गजे सिंह को वि० सम्वत् 1743 (1687 ई०) में जम्मू की राजगद्दी पर बैठाया।

उन दिनों जम्मू में शाहबाज़ खान अफगान मुगल सम्राट् की ओर से हाकिम नियुक्त था। उसने राजा गजै सिंह को राजा की पदवी धारण करने की अनुमति तो दे दी किन्तु शासन की बागडोर उसने अपने हाथ में रखी। शाहबाज़ खान ने राजा गजै सिंह को बहुत ही कम अधिकार सौंपे।

राजा गजै सिंह का छोटा भाई जसवंत सिंह एक वीर योद्धा था। वह दूरदर्शी और कुशल प्रशासक भी था। वह महत्त्वाकांक्षी भी था, अत: राजा गजै सिंह ने अखनूर, रियासी तथा गुलाबगढ़ का क्षेत्र उसे एक जागीर के रूप में दिया। मियां जसबन्तदेव ने अपनी जागीर का प्रशासन तो सम्भाल लिया किन्तु जम्मू का परित्याग नहीं किया।

राजा गजै सिंह और मियां जसबन्त देव जम्मू के हाकिम शाहबाज़ खान के हस्तक्षेप के कारण दुखी और असन्तुष्ट रहे। किन्तु वे उसके विरुद्ध विद्रोह भी न कर सके।

राजा गजै सिंह के शासन काल में राजदर्शनी के अनुसार मुख्य घटना यह घटित हुई कि सिक्खों के दसवें गुरु गोबिन्द सिंह पुरमंडल से होते हुए जम्मू की पहाड़ियों की

डाक्टर सुखदेव सिंह चाड़क का मत है कि राजा गजै सिंह 1692 ई० में राज गद्दी पर बैठा और उसने 1707 ई० तक राज्य किया। अत: गुरु गोबिन्द सिंह ने त्रिकुटा देवी की यात्रा 1692 के बाद ही की होगी।

सिक्ख इतिहास में गुरु गोबिन्द सिंह की त्रिकूटा यात्रा का उल्लेख नहीं है।

ओर त्रिकूटा देवी के पवित्र स्थान के दर्शन करने के उद्देश्य से आए। राजा गजै सिंह और मियां जसबन्त सिंह ने निहाल स्थान पर पहुंच कर गुरु जी का स्वागत किया। गुरु गोविन्द सिंह ने आशीर्वाद के रूप में राजा गजै सिंह को दस्तार और जसबन्त सिंह को नेजा दिया। गुरु गोबिन्द सिंह द्वारा प्रदत्त इन शस्त्रों की पूजा दोनों भाई करते रहे।

राजा गजै सिंह ने केवल पन्द्रह वर्ष ही राज्य किया और वि० सम्वत् 1760(1703 ई०) में उसने अपना शरीर त्याग दिया और वह पंचभूत में मिल गया।

राजा ध्रुव देव

राजा गजैसिंह के देहावसान के बाद उसका बेटा ध्रुव देव वि० सम्वत् 1760 में जम्मू की राजगद्दी पर बैठा। उसने प्रशासन की बागडोर अभी सम्भाली ही थी कि दिल्ली में मुगल सम्राट् औरंगजेब का देहान्त हो गया। औरंगजेब के देहान्त के बाद पूरे भारत में और विशेष रूप में पंजाब में अस्थिरता और अशांति का वातावरण परिव्याप्त हो गया। औरंगजेब का बड़ा बेटा बहादुर शाह दिल्ली पर अधिकार करने के लिए काबुल से एक बड़ी सेना के साथ चल पड़ा। उसने 1119 हिज़री में लाहौर के निकट शाहदौला पुल के निकट अपना राज्याभिषेक किया और लाहौर में शाही दरबार लगाया। उसके दरबार में भाग लेने के लिए जम्मू में मुगल बादशाह द्वारा नियुक्त फौजदार शाहबाज़ खां लाहौर चला गया। उसकी अनुपस्थिति में राजा ध्रुव देव को जम्मू में अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का अवसर मिल गया। उसने प्रशासन की बागडोर अपने हाथ में ले ली और लोगों से राजस्व इकट्ठा करके अपना कोष बढ़ाया।

राजा ध्रुव देव के शासन काल में पंजाब बहुत ही अशान्त रहा। गुरु गोबिन्द सिंह के स्वर्गारोहण के बाद उन्हीं के एक शिष्य बन्दा वैरागी ने मुगल साम्राज्य की सत्ता को हिलाकर रख दिया। बन्दा बैरागी ने सिक्खों को संगठित किया। उसने सोनीपत पर अधिकार करने के बाद समाना, धुड़ाम, ठसका, शाहवाज़, मुसतफाबाद, सढ़ोरा, मुखलसगढ़ आदि पर अपना ध्वज फहराया। बन्दा वैरागी ने 27 मई 1710 ई० को सिक्ख राज्य की स्थापना की और लोहगढ़ को इस राज्य की राजधानी बनाया। नवम्बर 1713 ई० में मुगल सेना ने बन्दा वैरागी को पकड़ने के लिए एक ज़ोरदार अभियान चलाया। परिणामस्वरूप बन्दा वैरागी को पहाड़ों की ओर भागना पड़ा। वह कीरतपुर, मण्डी, कुल्लू से होता हुआ जब जम्मू की ओर बढ़ा तो जम्मू के राजा ध्रुव देव ने गुप्त रूप से उसे संरक्षण दिया और उसे एक अति सुरक्षित स्थान भब्बर में भेज दिया जो चन्द्रभागा नदी के तट पर स्थित था। सन् 1713 से लेकर 1715 तक बन्दा वैरागी भब्बर के निकट डेरा में रहा और राजा ध्रुवदेव ने उसकी तथा उसके परिवार की रक्षा की तथा उसकी इस क्षेत्र में उपस्थिति को गुप्त रखा। बन्दा वैरागी के डेरा से चले जाने के बाद राजा ध्रुव देव ने उस ऐतिहासिक

स्थान के महत्त्व को भी बनाये रखा।

राजा ध्रुव देव ने मुगल हाकमों से भी अपने सम्बन्ध बनाये रखे और उन्हें समय-समय पर नज़राना भेजकर उनकी कृपा हासिल की। उसने नवाब कामरुद्दीन खान को अपने पक्ष में कर के जम्मू और बाहु के राज्य पर पूर्ण अधिकार कर लिया और बाहु राज्य के उत्तराधिकारियों से उनका राज्य छीन कर उन्हें राज्य से बाहर कर दिया।

राजा ध्रुव देव ने अपने रहने के लिए दरबार गढ़ में नये महल बनवाये। इससे पूर्व जम्मू के राजाओं के महल राजा मालदेव की मंडी में स्थित थे जिसे आजकल पुरानी मंडी भी कहते हैं।

राजा ध्रुव देव ने बाईस वर्ष राज्य करने के बाद वि० सम्वत् 1781 (1728 ई०) के कार्तिक मास में अपना नश्वर शरीर त्यागा।

राजा ध्रुव देव की गणना जम्मू राज्य के श्रेष्ठ राजाओं में की जाती है।

राजा रणजीत देव

राजा ध्रुव देव के देहावसान के बाद उसका बड़ा बेटा रणजीत देव वि० सम्वत् 1781 (1728 ई०) को सिंहासनारूढ़ हुआ। राजा रणजीत देव ने अपनी बुद्धि चातुर्य न्यायप्रियता और कुशल प्रशासनिक कार्यों से जो ख्याति अर्जित की वह डुग्गर प्रदेश का अन्य कोई भी राजा उससे पहले प्राप्त नहीं कर सका था। इस राजा की परिगणना डुग्गर के इतिहास में महान् राजाओं में की जाती है।

राजा रणजीत देव ने सिंहासन पर बैठते ही प्रारम्भिक बारह वर्ष बड़े कष्ट और यातना में बिताये। उसके बाप राजा ध्रुव देव ने लाहौर के दरबार में वार्षिक कर जमा नहीं करवाया था। इसी अपराध के कारण उसे लाहौर में नवाब जकारिया खान का बन्दी बन कर रहना पड़ा। दीवान लखपत राय के प्रयास से राजा रणजीत देव नवाब के बन्दी गृह से मुक्त होकर जम्मू आ गया।

राजा रणजीत देव की अनुपस्थिति में उसका भाई घनसार देव जम्मू राज्य का प्रशासनिक कार्य देखता था। सत्ता हाथ में आ जाने से वह महत्त्वाकांक्षी बन गया था, अतः राजा रणजीत देव के वापिस आने पर वह प्रसन्न नहीं हुआ और उदास मन से जम्मू छोड़ कर जसरोटा चला गया।

बाहु के राजा ने घनसारदेव के साथ सांठ-गांठ की थी। किन्तु रणजीत देव के पुनः राजगद्दी पर बैठ जाने पर बाहु के राजा ने भी दोनों राज्यों के बीच सीमावर्ती क्षेत्र के प्रश्न पर नया झगड़ा शुरू किया किन्तु राजा रणजीत देव ने बाहु के राजा का अपनी सैन्य शक्ति से इतना दमन किया कि पुनः उसने जम्मू के राजा से टकराने का साहस ही नहीं किया।

अन्ततः बाहु के राजा अगरदेव ने जम्मू के राजा की अधीनता स्वीकार कर ली और वह जम्मू के राजा का करदाता राजा बन गया।

राजा रणजीत देव ने डुग्गर प्रदेश में एक स्थायी और स्थिर राज्य स्थापित करने के लिए एक सुदृढ़ और शक्तिशाली सेना का गठन किया। उसने अपनी शक्ति को इतना अधिक बढ़ा लिया कि किश्तवाड़ के राजा सैय्यद अल्लाह सिंह (मियां सुजान सिंह) चनैनी के राजा शमशेर चन्द, क्रिमची के राजा बहादुर सिंह, भद्रवाह के राजा दया दयाल, भड्डू के राजा जयसिंह, बसोहली के राजा अमृतपाल, चम्बा के राजा रायसिंह, बन्दरालता के राजा दीवान इन्द्र देव, जसरोटा के राजा अजायब सिंह, मनकोट के राजा दलेल सिंह और छतरसिंह, मरमत और खसाल के राणा, बट्टल और डाग के राय, नूरपुर के राजा पृथ्वी सिंह, राजौरी के राजा कर्म उल्लाह खां, पुंछ के राजा असलत खां, भिम्बर के राजा दीवान गुलाम अली तथा हैदर अली खान खोरकर, मीरपुर के राजा हस्सु खान मलकानियां इत्यादि ने राजा रणजीत देव की सरदारी स्वीकार कर ली। इनमें से अनेक राजा और राणा जम्मू के राजा के करदाता राजा थे और वे जम्मू के राजा की सैन्य सहायता भी करते थे।

इसके अतिरिक्त राजा रणजीत देव ने मनावर, बहलोलपुर बजवाल, स्यालकोट तथा गुजरात परगना के अनेक गांव, वान और अरनिया के परगने, कठुआ, परोल का इलाका, हामन गढ़ तथा जफ्फर वाल का क्षेत्र अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया था। इस प्रकार रावी नदी उसके राज्य की पूर्वी सीमा थी।

राजा रणजीत देव ने अपने सगे भाइयों को तुष्ट रखने के लिए उन्हें जागीरें प्रदान कीं। उसने अपने से छोटे भाई घनसार देव को बलबालता की, बलवन्त देव को सरुईंसर की तथा सूरत देव को डंगसाल की जागीरें दीं। राजा ने अपनी ही बिरादरी के मियां रत्न देव को सेनापति और उसके छोटे भाई चन्दन देव को भी सेना में उच्च पद दिया । उसने अपने ही वंश के मियां अजमत देव, मियां ईशर देव, मियां तेग सिंह, मियां माना सिंह आदि को अपने दरबार में सम्मानित पद दिये। राजा रणजीत देव ने राजपूतों के अन्य कबीलों यथा राम गढ़िया, राय पुरिया, गंजूरिया, पंजौरिया, चक्क काह्ना बालिया, पंजग्राईं बालिया, झांडी बालिया, हन्ताल, चिम्भाल, जन्द्राहिया आदि को अपने निकट रखने के लिए उनके साथ दौत्य सम्बन्ध बढ़ाये और कईयों के साथ रिश्तेदारी भी स्थपित की। राजा ने सलाथिया, मन्हास, साम्बेयाल जसरोटिया तथा चाढ़क कबीले के राजपूत युवकों को अपनी सेना में भर्ती किया और उन्हें प्रोत्साहित करने के लिए पदोन्नतियां भी कीं। इस प्रकार राजा ने राजपूतों के सभी कबीलों को अपने दरबार में उचित स्थान और महत्त्व दिया। इसका परिणाम यह निकला कि राजा को सब का समर्थन और सहयोग मिला जिसके कारण उसे अपने राज्य में शान्ति और समृद्धि लाने में कठिनाई नहीं आई। उसके राज्यकाल में जम्मू को शान्त राज्य माना जाने लगा।

अहमद शाह दुरानी नें काबुल से जब पंजाब की ओर प्रस्थान किया तो पंजाब के सरदारों, धनाढ्य लोगों व्यापारियों के कई परिवार पंजाब से जम्मू आ गये और फिर वे यहीं बस गये। इससे जम्मू नगर का विकास बड़ी तीव्र गति से हुआ। कहते हैं कि राजा रणजीत देव के समय में धौंथली से लेकर गुम्मट तक दस हज़ार के लगभग दुकानें थीं जिन में लाखों रुपयों का व्यापार प्रतिदिन होता था। उन दिनों जम्मू को 'दार-उल-अमन' के नाम से अभिहित किया जाता था। जम्मू के राजा की प्रसिद्धि सुन कर और दिल्ली को अशान्त और उपद्रवग्रस्त समझ कर भारत के मुगल सम्राट् मुहम्मद शाह की बेगम मलिका यामिनी भी रहने के लिए जम्मू में आई और उसने यहां एक भव्य महल बनवाया और तवी नदी के निकट एक बाग भी लगवाया। पंजाब से भी कई प्रतिष्ठित व्यक्ति जम्मू आ गए, जिनमें लाला पिण्डीदास, ज्वाला नाथ, बाल हीरा नन्द, कुंजलाल तथा मिल्खी शाह के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इन लोगों ने जम्मू नगर को पहाड़ की सब से बड़ी मंडी बना दिया और जम्मू व्यापार का एक मुख्य केन्द्र बन गया।

महाराजा रणजीत देव ने कई पर्वतीय राजाओं के साथ लड़ाईयां भी लड़ीं और उन्हें परास्त कर के अपने अधीन किया। एक बार कांगड़ा के राजा घुमण्ड चन्द ने चम्बा के दुर्ग पठयार पर अनाधिकार कर लिया। चम्बा की रानी राजा रणजीत देव की बहन थी। उसने अपने भाई से सहायता की याचना की तो राजा ने अपने पुत्र वृजराजदेव के नेतृत्व में डोगरा सेना भेजी जिस में डुग्गर-प्रदेश के कई सामन्त सम्मिलित हुए। जम्मू की सेना जैसे ही रावी नदी के पार गई रावी के पार के कई राजाओं ने जम्मू के राजा को सहयोग दिया और उसकी अधीनता स्वीकार कर ली। राजा घुमण्ड चन्द ने भी जम्मू के राजा के साथ संधि कर ली और पठयार का दुर्ग चम्बा के राजा को लौटा दिया।

इस सैनिक अभियान का परिणाम यह निकला कि रावी के पूर्व में स्थित पहाड़ी रियासतों के राजाओं पर भी राजा रणजीत देव का आतंक छा गया और उस की स्थिति इतनी सुदृढ़ हो गई कि बाईस पर्वतीय रियासतों के राजाओं ने राजा रणजीत देव को निर्विवाद अपना सरदार मान लिया। इस प्रकार रणजीत देव इस पहाड़ी प्रदेश में राजा से महाराजा नाम से अभिहित किया जाने लगा।

महाराजा रणजीत देव ने एक सत्यनिष्ठ और ईमानदार राजा के रूप में भी ख्याति अर्जित की। उसकी ईमानदारी के विषय में कई कहानियां प्रचलित हैं जिनमें एक यह है कि जम्मू में एक धनाढ्य व्यक्ति का देहावसान हो गया और वह अपने पीछे पचास हज़ार रुपया छोड़ गया। उसका कोई उत्तराधिकारी जम्मू में नहीं था अतः राज कर्मचारियों ने उसके पच्चास हज़ार रुपये को सरकारी खज़ाने में जमा करने की अनुमति महाराजा से मांगी। किन्तु महाराजा ने उन्हें यह कह कर अनुमति नहीं दी कि उस धनाढ्य व्यक्ति के धन का वारिस उसका निकट सम्बन्धी ही हो सकता है, अतः उसकी खोज की जाए और

उसी को यह धन सौंपा जाए। राजा के कर्मचारियों ने अन्ततः मुलतान में जाकर उसके वारिस को ढूंढ निकाला और पच्चास हज़ार रुपये की धन राशि उसे सौंप दी। महाराजा की इस ईमानदारी की प्रशंसा दूर-दूर तक फैली और उपद्रव ग्रस्त पंजाब राज्य के सैंकड़ों लोग उसके राज्य में बसने के लिए आ गए।

महाराजा रणजीत सिंह एक न्याय प्रिय राजा भी था। उससे न्याय प्राप्त करने के लिए उसके राज्य के लोग दूर-दूर से आते थे और सन्तुष्ट होकर जाते थे। एक बार जम्मू नगर का एक धोबी अपनी पत्नी द्वारा लाया हुआ खाना खाते ही मर गया। लोगों ने धोबिन पर सन्देह व्यक्त किया तो राज कर्मचारी धोबिन को पकड़ कर राजा के दरबार में ले गए। राजा ने धोबिन की बात सुनी तो उसे विश्वास हो गया कि उसने अपने पति की हत्या नहीं की है। वह दरबारियों और धोबिन को साथ लेकर घटनास्थल पर गया तो उसने देखा कि जिस स्थान पर धोबी ने खाना खाया था उसके निकट ही एक पत्थर के नीचे एक सांप मरा हुआ पड़ा था और च्यूंटियां उस सांप का विषाक्त मांस लेकर उसी पत्थर पर चढ़ रही थीं यहाँ धोबिन ने धोबी के लिए कुछ देर के लिए खाना रखा था। महाराजा समझ गया कि धोबी विषाक्त खाना खाने से मरा है; अतः उसने धोबिन को निर्दोष घोषित करके मुक्त कर दिया।

रणजीत देव एक कृपालु राजा भी था। वह अपनी प्रजा का बहुत ध्यान रखता था और उसका सदैव यही प्रयास होता था कि उसकी प्रजा को किसी भी प्रकार का कष्ट न हो। उसने किसानों से कर उगहाने के लिए नियम भी बहुत सरल बनाये। उसने गांव के मुकद्दम, चौधरी और कानून गो के अधिकारों को सीमित करके कृषक वर्ग को उनके शोषण से मुक्त किया। राजा ने अपने कर्मचारियों को भी यह आदेश दिया कि वे जनता को अनुचित यातना न दें और उनसे मालिया वसूल करते समय अनावश्यक सख्ती न बरतें। राजा के कर्मचारी राजा के आदेश का पालन पूरी निष्ठा से करते थे। यदि कोई कर्मचारी किसी प्रकार की भी बेईमानी करता तो राजा उसे भी दण्ड देता था।

राजा को राजस्व किसानों से मालिया के रूप में प्राप्त होता था। मालिंया अन्न के रूप में भी लिया जाता था। राजस्व बढ़ाने के लिए राजा ने अपने राज्य के प्रत्येक घर पर दो रुपये वार्षिक कर लगाया हुआ था। इसके अतिरिक्त वस्तुओं के क्रय और विक्रय पर भी कई सरकारी कर थे जिनसे पर्याप्त राजस्व इकट्ठा हो जाता था।

राजा रणजीत देव के समय में प्रशासन चलाने के लिए कई ऐसे नियम प्रचलित थे जिनके अन्तर्गत निर्धन और असहाय वर्ग के लोगों को कई कष्ट झेलने पड़ते थे। यथा उस समय के समाज में सूद का प्रचलन अत्याधिक था। निर्धन किसान यदि किसी शाहुकार से ऋण लेता तो शाहुकार अपनी इच्छा से उस पर ब्याज लगाता। यदि किसी कारण निर्धन

व्यक्ति ब्याज सहित शाहुकार की पूरी रकम समय अवधि के भीतर वापिस न लौटाता तो शाहुकार हाकिम की अदालत में उस पर मुकद्दमा कर देता। हाकिम शाहुकार से कुल रकम का चौथा हिस्सा स्वयं लेकर निर्णय शाहुकार के पक्ष में सुनाता। शाहुकार अपनी असामी से धन न मिलने पर उस की बीवी या उसके बच्चों को अपने घर ले जाता और उन्हें अपना दास बना कर रखता। उस समय इस प्रकार के दासी और दास शाहुकारों के घरों में कई-कई होते थे। राजा रणजीत देव ने इस नियम में कई संशोधन किये। उसने यह आदेश पारित किया कि शाहुकार जिस असामी को ऋण देगा वह उससे डेढ़ गुणा अधिक धन लेने का ही अधिकारी होगा। इससे अधिक प्राप्त करने पर उसे दंडित किया जाएगा। राजा के इस आदेश का अनुकूल प्रभाव पड़ा और इससे शाहुकार निर्धन और बेबस लोगों का जो शोषण करते थे, वह बन्द हो गया। इस आदेश के बाद शाहुकारों ने बन्दी बनाये लोगों को भी मुक्त कर दिया। इसी प्रकार तत्कालीन समाज में 'निस्बत' प्रथा प्रचलित थी। इस प्रथा के अन्तर्गत कई लोग कुंवारी लड़कियों के मां-बाप से सम्बन्ध बढ़ाते थे और कभी-कभी उन्हें उपहार भी भेंट करते थे। कुछ समय के बाद वे हाकिम से यह शिकायत करते थे कि कन्या पक्ष के लोगों ने उन के लड़के के साथ रिश्ता तय किया था, किन्तु अब मुकर रहे हैं। हाकिम उन से नज़राना लेकर लड़की पक्ष के लोगों को आदेश देता था कि वे अपनी कन्या का रिश्ता उन्हीं से करे। इस प्रथा के अन्तर्गत कन्याओं के साथ भी अन्याय होता था। राजा ने इस प्रथा को बन्द कर दिया। उसने आदेश निकाला कि उसी रिश्ते को पक्का माना जाएगा जिसमें लड़की का भाई शगुन लेकर लड़के के घर जाएगा और उसके माथे पर तिलक लगाकर गांव के मुकद्दमों और चौधरियों के सम्मुख यह घोषित करेगा कि उसने अपनी बहन का रिश्ता अमुक लड़के से पक्का किया है। वर पक्ष के लोगों के लिए भी इस आदेश के अन्तर्गत यह आवश्यक था कि वे उस दिन ढोल, बाजा और वाद्य यंत्र बजा-बजा कर इस रिश्ते की सूचना गांव के लोगों को दें। इस आदेश से तत्क्षण लाभ यह पहुंचा कि लड़कियों के गरीब माता-पिता बलपूर्वक सम्पन्न किए जाने वाले विवाहों की यातनाओं से बच गए और वे अपनी लड़कियों के रिश्ते अपनी इच्छानुसार करने लगे। निस्बत प्रथा एक प्रकार से कन्या विक्रय प्रथा थी और इसके अन्तर्गत कन्या का मूल्य लेकर उसका विवाह पैसा देने वाले व्यक्ति से कर दिया जाता था। इस प्रथा का अन्त करने का श्रेय राजा रणजीत देव को ही जाता है।

इसी प्रकार डुग्गर के समाज में उन दिनों 'दुब' प्रथा भी प्रचलित थी। दुब एक प्रकार से सौगन्ध ही थी और यह चार प्रकार की थी। पहली सौगन्ध को 'कराह' कहते थे। इस सौगन्ध के अन्तर्गत सौगन्ध लेने वाले व्यक्ति को उबलते हुए तेल में अपना हाथ डालना होता था, यदि उसका हाथ ठीक रहता तो उसे सच्चा माना जाता था। और यदि वह जल जाता तो उसे झूठा माना जाता और उसे राजदंड दिया जाता। दूसरी कसम को

'गानी' कहते थे। इसके अन्तर्गत सौगन्ध खाने वाला व्यक्ति जलते हुए लोहे की छड़ी को अपने हाथ से पकड़ता था। यदि उस का हाथ ठीक रहता तो उसे सच्चा समझा जाता था और यदि जल जाता तो उसे झूठा मानकर दंड दिया जाता था। तीसरी कसम को 'तराजू' कहते थे। इस प्रथा के अन्तर्गत वादी और प्रतिवादी को तराजू पर बैठा दिया जाता था। जिसका पलड़ा भारी होता उसे सच्चा और जिसका हल्का होता उसे झूठा मानकर दंड दिया जाता था। चौथी कसम के अन्तर्गत वादी और प्रतिवादी को भेड़ें लाने के लिए कहा जाता था। दोनों एक-एक भेड़ ले आते थे। भेड़ों को एक विशेष प्रकार का विष खिलाया जाता था। जिस की भेड़ पहले मर जाती उसे झूठा और जिसकी बाद में मरती थी उसे सच्चा माना जाता था। राजा रणजीत देव ने अन्ध विश्वासों पर आधारित इन प्रथाओं को नकार दिया और केवल एक ही कसम जो ईश्वर के नाम होती थी, उसे मान्यता दी। इन कुप्रथाओं के बन्द हो जाने से कई निरापराधी राजदंड और लोकोपमान से बच गए।

उन दिनों डुग्गर में एक और कुप्रथा भी प्रचलित थी। इस प्रथा के अन्तर्गत यदि किसी का बच्चा मर जाता तो बच्चे के मां-बाप बच्चे की मौत को स्वाभाविक मौत न मानते। वे गांव की उस महिला को बच्चे की मौत का कारण बताते जिस पर उन्हें डायन होने का सन्देह होता। वे किसी दुआला को बुला लाते। दुआला के साथ उसका सहायक ढोल पीटता हुआ आ जाता और फिर वह अपने मंत्रबल से यह सिद्ध करने का प्रयास करता कि बच्चे की मृत्यु डायन के द्वारा कलेजा खाने के कारण हुई हैं। वह डायन का नाम भी बता देता। बस फिर सारा गांव उस डायन पर टूट पड़ता। उसे प्रताड़ित करता और मारता । उस औरत के सिर के बाल काट दिए जाते और फिर उसे एक गधे पर बैठा कर गांव-गांव में घुमाया जाता। सरकारी अधिकारी भी इस दृश्य में सम्मिलित होते और औरत को जुर्माना करके उससे पैसे ऐंठते। यदि कोई महिला डायन होने से इन्कार करती तो उसे पकड़ कर भिम्बर गांव में ले जाते और एक गहरी झील में उसे धक्का देकर उसमें डुबो देते। यदि वह झील के पानी के ऊपर तैरती हुई दिखाई देती तो उसे डायन समझा जाता था। यदि वह झील में डूब जाती तो उसे निर्दोष माना जाता। डुग्गर के लोग इस प्रथा को 'काफितार' कहते थे। राजा रणजीत देव ने इस अमानवीय प्रथा को तत्काल बन्द करवा दिया। इसका परिणाम यह निकला कि लोगों का दृष्टिकोण बदला और वे अन्ध विश्वासों से बाहर निकलने लगे।

उन दिनों व्यभिचार भी समाज में परिव्याप्त था। राज कर्मचारी वेश बदल कर मुहल्लों में और लोगों के घरों में घूमते रहते थे। जब भी वे किसी महिला को पर पुरुष के साथ संवाद करते देख लेते तो वे उसे पकड़ लेते और उस पर व्यभिचारिणी होने का आरोप लगा कर दंडित करते। राजा ने एक आदेश निकाला कि केवल महिला का पति ही महिला पर व्याभिचारिणी होने का आरोप लगा सकता है, ऐसा आरोप राज कर्मचारी

को लगाने का अधिकार नहीं होगा। इस आदेश से कई महिलाएं कलंकिनी कहलवाने से बच गईं। वे ससस्मान जीवन व्यतीत करने लगी। राजा ने राजपूतों में कन्या बध जैसी कुप्रथा को दूर करने के लिए अपनी कन्या को पुत्रवत पाला और उसका विवाह नूरपुर के राजा के साथ बड़े ठाठ-बाठ से किया। राजा रंजीत देव सती प्रथा का भी प्रबल विरोधी था। उसने अपने राज्य में इस प्रथा को मिटाने का भरसक प्रयास किया। राजा ने अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अपने परिवार के लोगों और निकटस्थ सम्बन्धियों को बुला कर अपनी अन्तिम इच्छा उन्हें बताते हुए कहा कि उसके मरने पर उसके साथ उसकी किसी भी रानी को उसके साथ सती न होने दिया जाए। राजा के एक सामंत ने राजा से जब यह कहा कि पति के साथ पत्नी का सती होना गौरव की बात है तथा पत्नी ही सती होकर पति का हाथ थाम कर उसे स्वर्ग में पहुँचाती है तो राजा ने आक्रोश में आकर कहा कि महिला के जरिये स्वर्ग जाने से मैं इन्कार करता हूं। राजा की मृत्यु के बाद उसकी वसीयत के अनुसार उसकी कोई भी रानी उसके साथ सती नहीं हुई। इस प्रकार शताब्दियों से प्रचलित इस प्रथा को डुग्गर प्रदेश के इस राजा ने बन्द करवाने का जो प्रयास किया था वह इस क्षेत्र में धीरे-धीरे बन्द ही हो गई।

राजा रणजीत देव ने पहाड़ी ब्राह्मणों में प्रचलित पाड़ा प्रथा को भी बन्द करवाने का यत्न किया। इस प्रथा के अन्तर्गत कोई एक ब्राह्मण या ब्राह्मणों का दल राजा के अनुचित कार्य का विरोध करने के लिए आत्मघात कर लेता था या धधकती आग में जल कर भस्म हो जाता था। यदि राजा ब्राह्मण की बात मान लेता तो ब्राह्मण राजा को आशीर्वाद देकर पाड़ा से उठ खड़ा होता और अपने घर चला जाता । राजा ने ब्राह्मणों को शान्त रखने के लिए धर्म शास्त्रों के अनुसार राज्य का कार्य चलाया।

राजा रणजीत देव ने लाहौर के सूबेदार से भी अपने सम्बन्ध सुधार लिये। उसने उसके आदेश पर अपनी सेना को कश्मीर में वहाँ के प्रशासक सुखजीवन को बन्दी बनाने के लिए भेजा। डोगरा सेना ने अदम्य साहस का परिचय देकर सुख जीवन को लड़ाई में परास्त कर के बन्दी बना लिया। लाहौर के सूबेदार ने राजा को इस सफलता पर कश्मीर में एक लाख रुपये की जागीर भी दी।

राजा ने काबुल के सुलतान अहमद शाह दुरानी को नज़राना और सैनिक सहायता भेज कर अपने पक्ष में करने का प्रयास किया। सुलतान ने भी राजा रणजीत देव पर प्रसन्न होकर उसे राजा-ए-राजगान की उपाधि से विभूषित किया।

राजा रणजीत देव ने सभी धर्मों के लोगों के साथ एक सा व्यवहार किया। मूलतः वह धर्म निरपेक्ष राजा था। उसने बड़ी संख्या में मुसलमानों को जम्मू में आबाद किया और उनके लिए एक अलग मुहल्ला बसाया। राजा ने मुसलमानों की इबादत के लिए मस्तगढ़ में एक मस्जिद भी बनवाई।

राजा रणजीत देव के शासन काल में मियां सूफी शाह और खैरी शाह जम्मू में आये और उन्होंने इस्लाम धर्म का प्रचार भी किया। इसी प्रकार हिन्दुओं के भी कई साधुसंत और संन्यासी जम्मू में आए और यहां वहां आश्रम स्थापित करके रहने लगे। उन संतों में उल्लेखनीय नाम बाबा खेमदास, मायाराम, बाबा गोदर, तुलसीदास बैरागी, बाबा काशीगिर, बुद्धगिर संन्यासी तथा बुद्धा ब्राह्मण उदासी थे जिन्होंने इस राज्य में घूम-फिर कर आध्यात्मिकता का प्रचार किया। गुरु नानक देव जी का वंशज बाबा राम दयाल वेदी भी जम्मू में आये और उनके प्रवचन लोगों ने सुने। राजा ने सभी धर्मों के सन्त-फकीरों को अपने राज्य में धर्म प्रचार की स्वतन्त्रता प्रदान की। उसके शासन काल में सभी धर्मों के लोग परस्पर बन्धु भाव से रहते थे और एक दूसरे का सम्मान करते थे।

उन दिनों जम्मू में भट कंजर कबीले के लोग भी रहते थे। उनकी सुन्दर लड़कियाँ अपने मधुर संगीत और नृत्य से जम्मू निवासियों का मनोरंजन करती थीं। इस कबीले के पुरुष फकीरों की वेश भूषा में रहते थे और रोगियों का उपचार करते थे। वे जम्मू से ही अन्य प्रान्तों में घूमने-फिरने जाते थे। और फिर यहाँ वापस आ जाते थे। राजा की ओर से इस कबीले पर कोई बंदिश नहीं थी।

राजा रणजीत देव ने अपने राज्य में एक रुपये का अपना सिक्का चलाया था। जिसे 'दामोदर शाही' के नाम से अभिहित किया जाता था।

राजा ने अपने दरबार में साहित्यकारों, कलाकारों, विद्वानों तथा मनीषियों को विशिष्ट स्थान दिया। कवि देवदत्त के विषय में कहा जाता है कि वह उसके दरबार में रहा था और उसने वीरविलास और वृजराज पंचासिका जैसे अमर ग्रंथों का सृजन किया। मन्नन सिंह इस युग का महान् चित्रकार था।

राजा रणजीत देव को अपने जीवन के अन्तिम चरण में पारिवारिक कलह के कारण मानसिक कलेश भी झेलना पड़े। उसने दो विवाह किए थे। बड़ी रानी से वृजराजदेव और छोटी रानी से दिलेल सिंह था। छोटी रानी अपने पुत्र दिलेल सिंह को राजा का उत्तराधिकारी बनवाना चाहती थी। उसने जम्मू दरबार के कई दरबारियों को अपने विश्वास में लेकर राजा पर इसके लिए दबाव भी डाला। बृजराज देव को इस षड्यंत्र का पता चला तो उसने अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह किया। वह पंजाब के सरदार महान सिंह से सैनिक सहायता हासिल कर के जम्मू की ओर बढ़ा किन्तु राजा रणजीत देव की सेना ने उसें साम्बा के निकट प्रवाहित बसन्तर नदी को पार ही नहीं करने दिया और उसे वहीं से भगा दिया। वृजराज देव कई वर्षों तक पंजाब में भटकता रहा। अन्ततः वह अपने चाचा बलवन्त देव के पास सन् 1779 में सरुईंसर आ गया और फिर वह वहां से अपनी जागीर मनावर में चला गया।

बृजराजदेव के विद्रोही हो जाने के बाद राजा की छोटी रानी ने दरबारियों द्वारा राजा पर यह दबाव डाला कि वह दिलेलदेव को अपना उत्तराधिकारी घोषित करे किन्तु जब राजा न माना तो रानी ने राजा के मित्र तेग सिंह को खाने में विष मिलाकर मार डालने की कोशिश की। रानी को सन्देह था कि राजा तेग सिंह ही दिलेल सिंह को उत्तराधिकारी बनने में व्यवधान डाल रहा है। राजा रणजीत देव को रानी के इस षड्यंत्र का जब पता चला तो उसने अपनी छोटी रानी बन्दराली और पुत्र दिलेल देव को जगानु की जागीर देकर उन्हें जम्मू के राजमहलों से निर्वासित करके जगानु भेज दिया। इस प्रकार पारिवारिक कलह के कारण राजा रणजीत देव अपने जीवन के अन्तिम दिनों में अति दुखी और क्षुब्ध रहा और इन्हीं मानसिक कष्टों के कारण बीमार पड़ गया। उसे इस बात पर अति दुख था कि सत्ता प्राप्त करने के लिए उसके दोनों बेटे एक दूसरे के शत्रु बन गये हैं। सत्ता और अधिकार के लिए उसके दामाद नूरपुर के राजा पृथ्वी सिंह ने भी सन् 1770 में रावी नदी के पार के राजाओं के उकसाने पर उसके विरुद्ध विद्रोह किया। राजा पृथ्वी सिंह के विद्रोह का तो जम्मू की सेना ने दमन भी किया था और राजा पृथ्वी सिंह को बन्दी बनाकर जम्मू लाया था। किन्तु रणजीत देव ने उसे क्षमा दान देकर उसका राज्य उसे लौटा दिया।

राजा रणजीत देव रोग शैय्या पर पड़ने के बाद अपने बेटों का अपराध भी क्षमा करने के विषय में सोचने लगा। उसने राजा ब्रज राज देव को मनावर से जम्मू बुला भेजा और उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित करने के बाद समझाया कि वह अपने छोटे भाई दिलेल सिंह के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध बना कर रखे। उससे वैर वैमनस्य न रखे।

राजा ने ब्रजराज देव को नसीयत की कि वह किसी को भी अपना शत्रु न बनाये क्योंकि एक हज़ार मित्र भी इतना लाभ नहीं पहुँचा सकते हैं जितना एक अकेला शत्रु हानि पहुंचा सकता है। उसने युवराज को शासन चलाने के लिए कई तरीके बताये और उसे समझाया कि वह प्रजा के हित का ध्यान रखे और उसका दमन या शोषण न स्वयं करे और न किसी को करने का अवसर दे। उसने वृजराज देव को ऋण, आग, रोग और दुश्मन से सावधान रहने के लिए कहा। राजा ने वृजराजदेव को जमवाल कबीले की परम्पराओं के विषय में भी बताया और कहा कि वह उन परम्पराओं का पालन पूरी निष्ठा से करे।

27 चेत 1838 वि० को राजा की स्थिति एकदम बिगड़ गई। उसके चिकित्सकों ने उसे बचाने के लिए भरसक प्रयास किया। किन्तु उन की औषधियों का राजा पर कोई प्रभाव न हुआ और राजा ने उसी दिन अपना शरीर त्याग दिया।

राजा रणजीत देव की परिगणना डुग्गर के महान राजाओं में की जाती है, और उसके शासन काल को डुग्गर का 'स्वर्ण युग' माना जाता है।

राजा बृज राजदेव

राजा बृज राज देव जम्मू नरेश रणजीत देव का बड़ा बेटा था। महाराजा रणजीत देव की मृत्यु के बाद जम्मू राज्य के दरबारियों ने जमवाल वंश परम्परा के अनुसार उसे 17 बैशाख 1781 वि० (22 अप्रैल 1782 ई०) को राज गद्दी पर बैठाया।

राजा बृजराज देव का एक सौतेला भाई भी था। उसका नाम दिलेल देव था। उसकी माता महाराजा रणजीत देव की बहुत चहेती थी। उसने महाराजा पर दलेल देव को उत्तराधिकारी बनाने के लिए कई बार दबाव डाला किन्तु महाराजा ने उसकी एक भी बात न सुनी। जब उस रानी ने अपने बेटे को उत्तराधिकारी बनवाने के लिए षड्यंत्र रचना शुरू किये तो उसका आभास महाराजा रणजीत देव को मिल गया और उन्होंने अपनी रानी और पुत्र दलेल देव को जम्मू के महलों से बाहर कर दिया और उन्हें रहने के लिए जगानु में भेज दिया।

राजा बृजराज देव जम्मू की राजगद्दी पर बैठ जाने के बाद भी दिलेल देव से आतंकित रहता था। उसे सन्देह था कि दिलेल देव अपनी माता रानी के विश्वस्त दरबारियों की सहायता से कोई षड्यंत्र रच कर जम्मू का राजा ही न बन जाए, अतः उसने उन दरबारियों को अपने दरबार से निकाल दिया जिन की विश्वसनीयता पर उसे सन्देह था। राजा बृजराज देव ने अखनूर के सामंत मियां आलमसिंह और मियां अतर सिंह दलपतिया को अपने दरबार में उच्च स्थान दिया और उन्हीं की सलाह पर वह प्रशासन चलाने लगा।

राजा बृजराज देव के सौतेले भाई दिलेल सिंह के दो पुत्र थे। बड़े बेटे का नाम भगवान सिंह और छोटे बेटे का नाम जीत सिंह था। वह अपने परिवार के साथ जगानु में रहता था।

राजा बृजराज देव अपने भाई से सशंकित रहता था। अतः उसने उसके वंश का समूल नाश करने के लिए मियां आलम देव के भाई मियां अर्जुन सिंह को नियुक्त किया।

एक बार मियां दलेल सिंह अपने दोनों बेटों को अपने साथ लेकर माता वैष्णों देवी के दर्शन करने के लिए दरबार में गया। जब वह दरबार से वापिस लौट रहा था तो चरण पादुका स्थान के निकट मियां अर्जुन सिंह और उसके आदमियों ने मियां दलेल सिंह और उसके बेटों को घेर लिया। मियां दलेल सिंह और उसके सोलह वर्षीय पुत्र भगवान सिंह ने अपने बचाव के लिए तलवारें खींच लीं, किन्तु वे मियां अर्जुन सिंह के कई साथियों के घेरे को तोड़ने में असमर्थ रहे और दोनों लड़ते लड़ते वहीं ढेर हो गए। मियां दलेल

---

1. महाराजा रणजीत देव के सम्बन्ध में उल्लेखित प्रथाएं राजदर्शनी से साभार उद्धृत।

2. तारीख रियासत जम्मू व कश्मीर के अनुसार रणजीत देव सन् 1724 में पैदा हुआ। वह 18 वर्ष की आयु में 1742 में गद्दी पर बैठा और 1781 तक उसने शासन किया।

सिंह का छोटा बेटा जीत सिंह किसी न किसी प्रकार वहां से बच कर जगानु पहुंच गया। जब उसने सारी घटना अपनी माता को सुनाई तो उस की माता समझ गई कि राजा बृजराजदेव उनके परिवार को नष्ट करके निरंकुश होकर राज्य करना चाहता है। उसने तत्क्षण जगानु छोड़ दिया। वह छद्म वेश में अपने बेटे को अपने साथ लेकर अपने मायके जसरोटा में आ गई।

राजा बृजराज देव अपने सौतेले भाई तथा उसके बेटे का वध करवाने के बाद अपना प्रभाव बढ़ाने और अपने राज्य का विस्तार करने की योजनाएं बनाने लगा। उसने बिना सोचे समझे अपने अयोग्य और अदूरदर्शी दरबारियों की सलाह पर इस्लाम गढ़ दुर्ग पर धावा बोल दिया। यह दुर्ग उस समय भंगी खालसा मिसल के सरदार गुज्जर सिंह के अधीन था जो उन दिनों गुजरात क्षेत्र का शासक था। सरदार गुज्जर सिंह जम्मू नरेश महाराजा रणजीत देव का मित्र भी था। सरदार गुज्जर सिंह की सेना ने बृजराजदेव की सेना को इस्लामगढ़ दुर्ग पर अधिकार करने का अवसर ही नहीं दिया और जम्मू की सेना को खाली हाथ वहां से लौटना पड़ा।

राजा बृजराजदेव को इस्लामगढ़ पर आक्रमण करने के लिए सेना को तैयार करने के लिए बहुत अधिक व्यय करना पड़ा था, जिससे उसका कोष खाली हो गया। अपना कोष भरने के लिए उसने अपनी प्रजा का शोषण शुरू किया। उसने कर इतने अधिक बढ़ा दिये कि लोगों में हाहाकार मच गया। लोग जम्मू छोड़ कर भागने को विवश हो गए। किन्तु दुर्भाग्य से उन्हीं दिनों जम्मू में दुर्भिक्ष भी पड़ गया। एक ओर बढ़े हुए कर दूसरी ओर भीषण दुर्भिक्ष से लोग आतंकित हो उठे। सैंकड़ों की संख्या में लोग भूख से विह्वल होकर तड़प-तड़प कर मरने लगे। राजा और उसके दरबारियों ने प्रजा को भूख से बचाने के लिए कोई ठोस पग नहीं उठाया। वि० सम्वत् 1840 में फूटे इस दुर्भिक्ष ने जम्मू राज्य के हज़ारों लोगों को अपना ग्रास बनाया।

इस दुर्भिक्ष का प्रभाव पंजाब पर भी पड़ा और वहां भी हज़ारों की संख्या में लोग भूख के कारण मर गए।

पंजाब की मिसलों के कुछ सरदारों ने दुर्भिक्ष के दिनों में जम्मू को लूटने की योजना बनाई। इन सरदारों ने परस्पर गुप्त मंत्रणा की और सरदार महान सिंह के नेतृत्व में जम्मू की ओर प्रस्थान करने का निश्चय किया। सरदार महान सिंह राजा बृजराजदेव का संरक्षक और मित्र भी था, अतः बृज राज देव को उस पर कोई ऐसा सन्देह भी नहीं था। किन्तु जब सरदार महान सिंह सिम्बल-सयाली गांव में अपना सैन्य शिविर लगा कर बैठ गया तो राजा बृजराजदेव की आँखें खुलीं। इससे पहले कि वह जम्मू नगर की सुरक्षा के लिए कोई उचित प्रबन्ध करता 27 कार्तिक 1841 वि० को सरदार महान सिंह ने जम्मू पर

आक्रमण कर दिया।

उस दिन राजा बृजराज देव बीमार और अचेत अवस्था में था। उसके दरबारियों ने राजा को पालकी में लिटाया और वे उसे लेकर पहाड़ों की ओर भागे। वे उसे रियासी की पहाड़ियों की ओर ले आए यहाँ छुप कर उसने अपने प्राण बचाये। राजा की अनुपस्थिति में सरदार महान सिंह के नेतृत्व में सेना ने जम्मू में प्रवेश करके राज कोष के अतिरिक्त जम्मू निवासियों को भी बहुत लूटा।

सैनिकों ने लोगों के घरों में घुस कर उनसे उनके बहुमूल्य आभूषण, वस्त्र आदि छीन लिये। उन्होंने दुकानों को भी लूटा और साहूकारों से उनका धन छीन कर उनको कंकाल बना दिया। इन सैनिकों ने जम्मू नगर को जी भर कर लूटने के बाद इस नगर के बाज़ार को आग लगा दी और लोगों के घरों को भी फूंक डाला। जम्मू के लोग चीखते-चिल्लाते और रोते हुए जम्मू छोड़ कर भागने लगे। सैनिकों ने दो मास तक बिना किसी व्यवधान के जम्मू नगर को लूटा और इस नगर का सारा बहुमूल्य सामान लेकर वे वापस चले गए। राजा बृजराज देव जम्मू निवासियों के इन आपद भरे दिनों में डनसाल की पहाड़ियों में मियां मोटा की सुरक्षा में छुपा रहा। उसके दरबारी और सलाहकार उसका साथ छोड़ कर अपनी-अपनी जागीरों में चले गए और पंजाब के सरदारों से अपने सम्बन्ध जोड़ने का यत्न करने लगे।

सरदार महान सिंह और उसके साथी जम्मू के ऐश्वर्य को लूटने के बाद जब इस बात पर सन्तुष्ट हो गए कि अब उनके लिए लूटने को कुछ नहीं बचा है तो उन्होंने जम्मू राज्य के विभिन्न क्षेत्रों को परस्पर बांट लिया। रामगढ़, गजनसू, बज़ुवात और मनावर का इलाका सरदार गुजर सिंह ने अपने हिस्से में रखा। अरनिया, सलैड और सैय्यद गढ़ पर सरदार बाग सिंह ने अधिकार कर लिया। बहादुर पुर का इलाका गुरबख्श सिंह और जोधा सिंह को मिला। रणजीत गढ़ और चपरैड़ का इलाका बाग सिंह बेर और गुलाब सिंह को मिला। बड़वाल के क्षेत्र पर सरदार दल सिंह ने अपना अधिकार जमाया। इस प्रकार जम्मू राज्य का बंटवारा करके सरदार महान सिंह जम्मू से प्रस्थान करके मंझा चला गया और वहां से वह अमृतसर आ गया।

बाहु राज्य के उत्तराधिकारियों यथा कुन्दन देव और शाहज़ादा देव ने जम्मू लूटने में पंजाब के सरदारों को पूर्ण सहयोग दिया और अपनी सेवाएं भी उन्हें अर्पित कीं।

पंजाब के कुछेक सरदार जम्मू राज्य को लूटकर और इस का विभाजन करके इसे बांट कर जब अपने-अपने इलाके में चले गए तो राजा बृजराज देव डनसाल की पहाड़ियों से नीचे उतरा। उसने मियां मोटा के परामर्श पर सरदार साहिब महान सिंह से एक दूत के द्वारा सम्पर्क स्थापित किया। वे उससे मिलने के लिए कलानौर में भी गए

और वे वहाँ उसकी सेवा में छह महीने रहे। सरदार महान सिंह जब उनके व्यवहार और स्वामी भक्ति से तुष्ट हुआ तो उसने राजा बृज राज देव को जम्मू और बाहु का राज्य लौटा दिया।

राजा बृजराज देव ने नष्ट हुए जम्मू नगर के पुनरुद्धार के लिए मियां मोटा को नियुक्त किया। मियां मोटा ने कुछ ही महीनों के भीतर जले हुए महलों की मुरम्मत करवाई। जम्मू नगर से भाग गए लोगों को जम्मू आने के लिए आमंत्रित किया और जम्मू को पुनः रौनक वाला नगर बना दिया। मियां मोटा ने बाहु पर आक्रमण करके उस पर भी अधिकार कर लिया। उसके प्रयत्नों से बाहु के धनाढ्य व्यक्ति भी जम्मू में आकर बस गए।

राजा बृजराज देव भी सम्वत् 1842 मे पंजाब से जम्मू आ गया और उसने एक भव्य समारोह के साथ अपने महलों में पुनः प्रवेश किया। वह जम्मू का पुनः शासक बन गया। शासक बनने के बाद उसने अपनी सैनिक शक्ति को बढ़ाया।

राजा बृजराज देव को जम्मू का राज्य तो पुनः प्राप्त हो गया किन्तु उसका प्रभाव बहुत ही क्षीण हो गया। उसे दुर्बल, अयोग्य, अशक्त और कायर समझ कर जम्मू राज्य के अधीन प्रायः सभी छोटे-छोटे राजा स्वतन्त्र हो गए और उन्होंने जम्मू की सरदारी अस्वीकार कर दी। जम्मू राज्य जम्मू के इर्द-गिर्द के कुछेक गांवों तक ही सिमट कर रह गया।

पंजाब में भी स्थिति ने करवट बदली। सरदार महान सिंह से भंगी मिसल के सरदार जिन में कर्म सिंह डुलू और गुलाब सिंह इत्यादि थे महान सिंह के बढ़ते हुए प्रभाव से ईर्ष्या करने लगे। उन्होंने परस्पर समझौता करके महान सिंह से टक्कर लेने के लिए सबसे पहले रणजीत गढ़ दुर्ग पर हमला करके इसे अपने घेरे में ले लिया। सरदार महान सिंह के सैनिकों ने दुर्ग की रक्षा के लिए डटकर मुकाबला किया। किन्तु जब उन्हें ऐसा लगने लगा कि विरोधियों का सामना वे अब अकेले नहीं कर पायेंगे तो उन्होंने सैनिक सहायता के लिए राजा बृज राज देव को सन्देश भेजा। सरदार महान सिंह ने राजा बृजराज देव की पुनः राजगद्दी प्राप्त करने में सहायता की थी, अतः वह उन के अनुरोध को अस्वीकार भी न कर सका। उसने अपनी सेना अपने साथ ली और रणजीतगढ़ की ओर चल पड़ा। वह अभी रुमल गांव के पास ही पहुंचा था कि भंगी मिसल के सैनिकों को उसके आगमन की सूचना मिल गई। उन्होंने राजा को आगे बढ़ते देखकर नई रणनीति निश्चित की और राजा को चारों ओर से घेर लिया। भंगी सरदारों ने राजा बृजराज देव को आत्म समर्पण करने के लिए कहा किन्तु राजा ने आत्मसमर्पण करने की अपेक्षा लड़ाई के मैदान में लड़ कर मरना उचित समझा। वह शत्रु के साथ लड़ने के लिए

मैदान में आकर खड़ा हो गया। शत्रु पक्ष के सैनिकों ने राजा पर गोलियों की बौछार की। राजा ने भी शत्रु पक्ष के कई सैनिकों का संहार किया। अन्ततः राजा के सिर में एक गोली लगी और वह घोड़े से गिर कर धरती पर धराशायी हो गया। सम्वत् 1844 को बैसाखी के दिन (13 अप्रैल 1787) को राजा बृजराज देव ने लड़ाई के मैदान में अन्तिम सांस ली और अपना शरीर त्याग दिया।

राजा बृजराज देव का स्मारक आज भी रुमल गाँव के निकट जीर्णावस्था में उस स्थान में स्थित है जहाँ राजा ने लड़ाई लड़ते हुए अपने प्राण विसर्जित किए थे।

राजा सम्पूर्ण देव

राजा सम्पूर्ण देव जम्मू के राजा बृजराज देव का इकलौता बेटा था। राजा बृज राज देव भंगी मिसल के सरदारों के हाथों जब मारा गया तब सम्पूर्ण देव की आयु एक वर्ष से भी कम थी। राजा बृजराज देव का उत्तराधिकारी केवल वही था। अतः जम्मू राज्य के दरबारियों ने गहन विचार-विमर्श के बाद सम्वत् 1844 वि॰ (1787 ई॰) को राजा सम्पूर्ण देव को जम्मू की राज गद्दी पर बैठा दिया। राजा अभी बहुत ही छोटी उमर का था, अतः कुछ वरिष्ठ दरबारियों ने मियां मोटा को राजा का संरक्षक इसलिए बनाया क्योंकि मियां मोटा राजा बृजराज देव का विश्वासपात्र तथा सलाहकार रह चुका था।

राजा सम्पूर्ण देव स्वयं तो राज्य का कार्य भार सम्भालने में असमर्थ था, अतः मियां मोटा ही जम्मू के राजा के नाम पर शासन करने लगा। उन दिनों जम्मू राज्य की राजनैतिक और आर्थिक दशा स्थिर नहीं थी अतः राजा सम्पूर्ण देव के राज्य काल में न तो जम्मू का विशेष विकास हुआ और न ही इस राज्य में राजनैतिक स्थिति में कोई उल्लेखनीय सुधार हुआ। मियां मोटा ने अपनी स्थिति सुदृढ़ करने का प्रयास अवश्य किया किन्तु राजा संपूर्ण देव के निकटस्थ सम्बन्धियों यथा मियां बदन सिंह आदि ने मियां मोटा को शक्तिहीन करने के लिए उसके विरुद्ध कई षड्यंत्र रचे किन्तु मियां मोटा ने अपनी बुद्धि चातुर्य से उन्हें असफल बना दिया।

---

1. राजा बृजराज देव का कवि देवीदत्त राजा का बहुत ही प्रशंसक था। उसने 'बृजराज पंचासिका' शीर्षक से एक खण्ड काव्य भी लिखा जिस में उसने बृजराज देव के कांगड़ा के राजा घमंड चन्द कटोच के विरुद्ध किये गए युद्ध-अभियान का वर्णन बड़ी सशक्त भाषा में किया है।

2. कई ऐतिहासिक ग्रंथों में यह उल्लेख मिलता है कि बृज राज देव ने अपने पिता जम्मू नरेश रणजीत देव के विरुद्ध विद्रोह भी किया था और सरदार चढ़तसिंह से सैनिक सहायता प्राप्त कर के जम्मू राज्य पर चढ़ाई करने की योजना सन् 1774 ई॰ में बनाई। वह सेना लेकर साम्बा तक आया किन्तु रणजीत देव की सेना ने उसे वहाँ से भगा दिया।

3. राजा बृजराज देव के साथ सलेहरी रानी तथा चमेआल रानी सती हो गई थी। किन्तु हन्ताल रानी को दरबारियों ने सती होने की आज्ञा इस लिए नहीं दी क्योंकि उसकी गोद में दस महीने का बच्चा था।

राजा सम्पूर्ण देव के समय में अहमद शाह अब्दाली के बेटे यामन शाह ने सम्वत् 1852 वि० में अटक नदी को पार किया जिसके कारण पंजाब के सरदारों में खलबली मच गई और उन्होंने अपने परिवार जम्मू में भेज दिए। इससे जम्मू नगर में चहल-पहल कुछ समय के लिए बढ़ी किन्तु जब यामनशाह वापिस लौट गया तो वे परिवार पंजाब को लौट गए।.

सम्वत् 1853 वि० में यामनशाह ने पुन: अटक नदी को पार किया और वह अपना सैनिक लश्कर लेकर लाहौर तक आ गया। वहां उसने अपना राज दरबार लगाया जिस में वे शासक और सामंत सम्मिलित हुए जिन्होंने शाह की अधीनता स्वीकार कर ली थी। इस अवसर पर जम्मू के राजा संपूर्ण देव की ओर से भी शाह को उपहार भेजे गए जिसे शाह ने स्वीकार कर लिया। शाह ने भी जंम्मू के राजा पर प्रसन्न होकर मनावर, बजवाल, चपरार, रणजीतगढ़ तथा जफ्फरबाल के इलाके जो पंजाब के सरदारों ने जम्मू के राजा बृजराज देव से छीने थे जम्मू के राजा को लौटा दिए जिस से जम्मू के राजा की आय बढ़ गई और जम्मू में भी समृद्धि आ गई।

राजा सम्पूर्ण देव को घोड़े की सवारी का बहुत चाव था। वह घोड़े पर सवार हो कर जब सैर करने निकलता तब उसके दरबारी भी उस के पीछे-पीछे चलते थे। उस समय वाद्ययंत्र भी बजाये जाते थे जिस से यह दृष्य बड़ा ही मोहक लगता था।

किन्तु ग्यारह वर्ष की आयु में राजा सम्पूर्ण देव को चेचक का भारी प्रकोप हुआ जिसके कारण वह बहुत ही बीमार हो गया। वैद्यों ने उसे चेचक से बचाने का भरसक प्रयास किया किन्तु राजा बचा नहीं और उसने वि० सम्वत 1854 (1797ई०) को चेत मास में शरीर छोड़ दिया। उस की मृत्यु के कारण जम्मू की राज गद्दी एक बार पुन: खाली हो गई।

राजा जीत सिंह

जम्मू का अल्पव्यस्क राजा सम्पूर्ण देव अविवाहित था इसलिए उस की कोई सन्तान नहीं थी। उस की मृत्यु के बाद जम्मू राज्य के दरबारियों ने महाराजा रणजीत देव के दूसरे बेटे दलेल देव के कनिष्ठ पुत्र जीत सिंह को वि० सम्वत 1855 के वैसाख मास में जगानु से बुलाकर जम्मू की राजगद्दी पर बैठा दिया।

राजा जीत सिंह को शासन चलाने का कोई अनुभव नहीं था। वह बाल्यावस्था से ही अपने पिता दलेल सिंह और बड़े भाई भगवान सिंह का चरण-पादुका स्थान के निकट वध होता देख कर भयभीत हो गया था और यह भय उसके मन और मस्तिष्क में युवा-अवस्था में भी छाया रहा। वह राज परिवार की महिलाओं के संरक्षण में रहा, अत: उसे राजनीति और राजदरबार की प्रथाओं का भी ज्ञान नहीं था। वह विशेष पढ़ा-लिखा

भी नहीं था और उस में व्यावहारिक बुद्धि का भी अभाव था। वह शिथिल प्रकृति का राजा था। किन्तु उस की रानी बन्दरालता राज्य के राजा भूप देव की बहन थी। वह बड़ी ही महत्वाकांक्षी महिला थी। वह राजा की मूढ़ता पर क्षुब्ध रहती थी। वह जम्मू के प्रशासन की बागडोर अपने हाथ में रखना चाहती थी किन्तु जम्मू के दरबारियों ने यह दायित्व उसे न सौंप कर मियां मोटा को सौंपा। इस बात पर रानी विक्षुब्ध हो गई और उसने जम्मू दरबार के कई दरबारियों को अपने पक्ष में करके उन्हें मियां मोटा के विरुद्ध भड़काया। बन्दराली रानी मियां मोटा से इस बात पर भी द्वेष करती थी कि उसने राजा बृजराज देव के उकसावे में आकर उसके ससुर दलेल सिंह और जेठ भगवान सिंह को मरवाने के षड्यंत्र में भाग लिया था।

किन्तु मियां मोटा को जम्मू के दरबारियों और सामंतों का समर्थन प्राप्त था, अत: उसने रानी के विरोध की तनिक चिन्ता न की। उसने राजा जीत सिंह को भी अपने वश में कर लिया और रानी बन्दराली और उसके समर्थकों को प्रशासनिक कार्यों में दखल देने की अनुमति नहीं दी।

जम्मू के राजा को असमर्थ और दुर्बल समझ कर पंजाब के सरदारों ने जम्मू राज्य के कई इलाकों को हड़पने के लिए सीमा क्षेत्र में उत्पात मचाना शुरू किया। राजा जीत सिंह ने उन से लड़ाई करने की अपेक्षा सुलह करना श्रेयस्कर समझा और सैय्यद गढ़ का इलाका भाई हुक्मा सिंह चिमनी को देकर उस से शांति का समझौता करना चाहा। किन्तु भाई हुक्मासिंह चिमनी सैय्यदगढ़ पर अधिकार करने के बाद भी सन्तुष्ट न हुआ और उसने जम्मू पर आक्रमण कर दिया। मियां मोटा ने जम्मू के राजपूत सरदारों को संगठित करके इस आक्रमण का सामना किया और चिमनी की सेना को लड़ाई में परास्त करके भगा दिया। किशोर गुलाबसिंह ने भी इस लड़ाई में भाग लेकर अपने शौर्य का प्रदर्शन करके विरोधियों से भी प्रशंसा प्राप्त की। यह लड़ाई वि० सम्वत् 1865 में गुम्मट के नीचे लड़ी गई। गुम्मट की लड़ाई में विजयी होने पर भी जम्मू के राजा जीत सिंह ने मियां मोटा की सलाह मान कर लाहौर दरबार से संधि कर ली। इस संधि के अन्तर्गत राजा जीत सिंह ने महाराजा रणजीत सिंह की अधीनता स्वीकार कर ली और 73 हज़ार रुपये वार्षिक कर देना मान लिया।

इस संधि का डुग्गर के कई राजपूत सरदारों ने विरोध किया। परिणाम यह निकला कि जम्मू दरबार में मियां मोटा का विरोध होने लगा। रानी बन्दराली ने भी इस अवसर का लाभ उठाया और उसके समर्थकों ने मियां मोटा के विरुद्ध दुष्प्रचार किया। अन्त में निराश और हताश होकर मियां मोटा जम्मू छोड़ कर पंजाब चला गया। उस की अनुपस्थिति में रानी बन्दराली ने दरबारियों में अपना प्रभाव बहुत बढ़ा लिया और राज्य के उच्चाधिकारी रानी के संकेत पर नाचने लगे। इसी बीच रानी की कोख से तीन बेटे हुए जिन

के नाम रघवीर देव, देवी सिंह और वीर सिंह रखे गए।

राजा जीत सिंह ने रानी को अपने नियंत्रण में रखने का भी प्रयास किया। किन्तु रानी ने राजा की कोई परवाह न की और वह अपनी मनमानी करती रही। रानी से राजा जीत सिंह जब बहुत तंग आ गया तो उसने रानी पर पाबन्दी लगाने का मन बनाया। किन्तु रानी को राजा की योजना का पता चल गया और वह अपने तीनों बेटों को अपने साथ लेकर जगानु चली आई और यहीं उसने बड़ी धूमधाम से उनके यज्ञोपवीत संस्कार सम्पन्न किये।

जम्मू के राजा जीत सिंह और उस की रानी के बीच सत्ता के लिए खींचा-तानी का समाचार मिलते ही भूति, सुमारता, चनैनी, भड़डू और बन्दरलता के राजाओं ने जम्मू के राजा को वार्षिक कर देना बन्द किया और अपनी स्वायत्तता की घोषणा कर दी।

मियां मोटा को जम्मू के राजा के क्षीण होते प्रभाव की सूचना मिली तो उसने पंजाब केसरी से सैनिक सहायता लेकर जम्मू के विद्रोही सामंतों का दमन कर दिया। वह पुनः जम्मू के राजा का वजीर बन गया और उसने बिगड़ चुकी स्थिति को सुधारने का प्रयास शुरू किया। उसने जम्मू के सामंतों को भी अपने पक्ष में कर लिया। मियां मोटा ने राजा और रानी में सुलह कराने का प्रयास भी किया किन्तु उस में उसे सफलता न मिली।

उन्हीं दिनों महाराजा रणजीत सिंह की बीबी साहिबा पुरमंडल में स्नान करने के लिए अपने बेटे खड्गसिंह के साथ आई। रानी बन्दराली ने रानी साहिबा को एक गुप्त पत्र लिखा जिस की जानकारी राजा जीत सिंह को मिल गई। वह समझ गया कि रानी मियां मोटा से प्रतिशोध लेने के लिए कुछ भी कर सकती है। अतः उसने स्वयं ही रानी साहिबा और कुंवर खड्गसिंह को जम्मू बुलवाकर जम्मू का राज्य स्वेच्छा से वि० सम्वत 1870 (1816 ई०) को खड्गसिंह को सौंप दिया। कुंवर खड्गसिंह ने जम्मू के राज्य महल पर अधिकार कर लिया और इस प्रकार शताब्दियों से चला आ रहा जम्मू में 'देव' उपाधिधारी राजाओं के शासन का अन्त हो गया।

महाराजा रणजीत सिंह ने जम्मू के राजा जीत सिंह को उसकी पैतृक जागीर जगानु गुजारे के लिए दे दी। राजा जम्मू से जगानु आ गया। राजा और रानी दोनों अपने परिवार के साथ जगानु में आकर रहने लगे। किन्तु राजा और रानी में दोबारा अनबन हुई और रानी जगानु से पुरमंडल आ गई। यहां उसने मियां मोटा का बध करवाने का एक षड्यंत्र रचा जिस में वह सफल हो गई। अपना उद्देश्य पूरा करने के बाद रानी अपने तीनों बेटों को अपने साथ लेकर जम्मू राज्य से बाहिर चली गई। वह कुछ वर्ष थानेश्वर (कुरुक्षेत्र) में रही और बाद में वह लाहौर में आ गई। महाराजा रणजीत सिंह ने उसे जीवन निर्वाह

के लिए रावी नदी के निकट बसे खरोटा गाँव की जागीर दी। वह वहीं बस गई।

राजा जीत सिंह का देहावसान अनुमानतः सन् 1826 में हुआ। उसके वंशज आज भी पठानकोट के निकट खरोटा गाँव में रहते हैं।

शाहज़ादा खड्गसिंह

पंजाब केसरी महाराजा रंजीत सिंह ने सन् 1816 ई० में जम्मू के राजा जीत देव को गद्दी से उतार कर जम्मू के इलाके का विलय अपने राज्य में किया। उसने जम्मू को केवल परगना (जिला) का दर्जा दिया। महाराजा ने जम्मू का इलाका अपने बेटे शाहज़ादा खड्गसिंह के अधिकार में रखा किन्तु जब खालसा राज्य के विरुद्ध जम्मू के लोगों ने मियां डीडो और मियां दीवानू के नेतृत्व में विद्रोह किया तो महाराजा ने इस विद्रोह का दमन करने के लिए पहले दीवान भगवानी दास को और बाद में भैया राम सिंह को भेजा। खालसा अधिकारियों ने इस क्षेत्र में प्रशासन स्थिर करने के लिए स्थान-स्थान पर थाने स्थापित किये और वहाँ अपने सैनिक नियुक्त किये किन्तु फिर भी विद्रोह दमित न हुआ। मियां दीवानू ने अखनूर क्षेत्र पर अधिकार कर के उसका प्रशासन स्वयं सम्भाल लिया। चिभाल क्षेत्र के चिब्ब कबीले के लोगों ने देबा-बटाला और भिम्बर में खालसा शासन के विरुद्ध बगावत की और जम्मू के इलाके में कई जम्बाल सरदारों ने स्थानीय लोगों को संगठित करके खालसा राज्य के विरुद्ध गोरिल्ला लड़ाई आरम्भ की जिसके कारण खालसा अधिकारी बहुत परेशान हुए। महाराजा ने विद्रोहियों का दमन करने के लिए पुनः फौज भेजी। इस बार फौज को आंशिक सफलता मिली। उसने अखनूर, भिम्बर और जम्मू शहर में विद्रोहियों का दमन करके यह इलाका पुनः खड्ग सिंह को सौंप दिया।

खालसा सरकार विद्रोह का दमन करने के बावजूद भी इस इलाके में अपने पांव न जमा सकी। नित नये उपद्रवों और जनता के असहयोग के कारण प्रशासन व्यवस्था सुस्थिर न हो सकी।

अन्ततः महाराजा रंजीत सिंह ने जब यह समझ लिया कि डुग्गर के लोग किसी भी प्रकार से खालसा सरकार को स्वीकार करने को तैयार नहीं हैं तो उसने जम्मू का प्रशासन अपनी सेना के एक सेनानायक गुलाब सिंह के पिता मियां किशोर सिंह को सन् 1817 ई० (वि० सम्वत् 1876) में 'राजगी' की पदवी देकर सौंप दिया।

मियां किशोर सिंह मियां जवाहर सिंह का बेटा और मियां सूरत सिंह का पोता था। सूरत सिंह जम्मू नरेश महाराजा रणजीत देव का सगा भाई था। अतः इस का सम्बन्ध भी

---

1. तारीख रियासत जम्मू व कश्मीर के अनुसार राजा जीत सिंह (1797-1809) को महाराजा रणजीत सिंह ने लाहौर बुलाया और उसका कुछ बजीफा निश्चित किया।

जम्मू के पुराने राजवंश से था।

मियां किशोर सिंह के तीन पुत्र गुलाब सिंह, ध्यान सिंह और सचेत सिंह थे। ये तीनों भाई पंजाब केसरी महाराजा रंजीत सिंह की सेवा में थे। महाराजा इन की स्वामी-भक्ति, निष्ठा, वीरता और दूरदर्शिता पर बहुत प्रसन्न थे।

उन्होंने मियां किशोर सिंह के बड़े बेटे मियां गुलाब सिंह को 17 जून 1822 को अपने हाथों से राजतिलक लगा कर उसे अपने अधीन जम्मू का राजा मान लिया। इस प्रकार जम्मू की सत्ता पुनः जम्मू राजवंश के मियां गुलाब सिंह के हाथ में आई।

महाराजा गुलाब सिंह

गुलाब सिंह डुग्गर का पहला ऐसा शासक था जिसने रावी नदी से लेकर जेहलम नदी के मध्य स्थित छोटे-छोटे अनेक राज्यों को जीत कर डुग्गर प्रदेश को न केवल एक सूत्र में बांधा अपितु कश्मीर और लद्दाख तक अपने राज्य का विस्तार किया। सम्भवतः यही एक कारण है कि इतिहासकारों ने उसकी परिगणना महान् योद्धाओं के अन्तर्गत की है।

डुग्गर के इस प्रतापी राजा का जन्म 21 अक्तूबर 1792 में मियां किशोर सिंह के घर हुआ। गुलाब सिंह की माता का नाम महादेवी था। वह बसोह्ली के अन्तर्गत माहड़ता के जागीरदार राणा कृष्णपाल भडवाल की कन्या थी। गुलाब सिंह के दादा का नाम मियां जोरावर सिंह था। पुरमंडल के निकट दयावन में उसकी जागीर थी। मियां जोरावर सिंह मियां सूरत सिंह का बेटा था जो जम्मू नरेश महाराजा रणजीत देव का छोटा भाई था। इस प्रकार गुलाब सिंह जम्मू राजवंश से ही सम्बन्धित था।

गुलाब सिंह का बचपन अपने दादा मियां जवाहर सिंह के संरक्षण में दयावन में बीता। दादा ने ही उसे सैनिक-शिक्षा का प्रशिक्षण दिया और घुड़सवारी, तलवार, तीर और नेजा चलाना सिखाया। किशोर-अवस्था में वह एक कुशल सैनिक बन गया।

गुलाब सिंह किशोरावस्था में अपने पिता मियां किशोर सिंह के पास रहने के लिए आया तो वहाँ उस की भेंट महात्मा प्रेमदास से हुई। महात्मा प्रेमदास ने गुलाब सिंह को न केवल राजनीति की ही शिक्षा दी अपितु उसे डुग्गर प्रदेश में एक सुदृढ़ और शक्तिशाली राज्य की स्थापना की प्रेरणा भी दी। महात्मा ने गुलाब सिंह को भारत के उन महान् योद्धाओं की गाथाएं भी सुनाईं जिन्होंने युग को बदल डाला था।

महात्मा प्रेमदास से विजयी होने का मंत्र सीख कर गुलाब सिंह जम्मू आ गया।

उन दिनों जम्मू में राजनीतिक स्थिति बड़ी डांवाडोल थी। जम्मू का राजा जीत सिंह बड़ा ही दुर्बल और भीरू था। मियां मोटा उस का मुख्य सलाहकार था और वही

जम्मू का प्रशासन चलाता था। जम्मू की जम्बाल बिरादरी में उस का अच्छा दबदबा था।

राजा जीत सिंह को निकम्मा समझ कर महाराजा रंजीत सिंह ने अपने छोटे भाई हाकम सिंह और सेनानायक दीवान चन्द को सन् 1808 में जम्मू पर आंक्रमण करने के लिए भेज दिया। खालसा सेना जम्मू के निकट आ गई और उसने जम्मू पर आक्रमण कर दिया। मियां मोटा के नेतृत्व में डोगरा वीरों ने भी खालसा सेना पर प्रत्याक्रमण किया। इस आक्रमण में गुलाब सिंह और मियां डीडो ने अपनी वीरता और शौर्य का जिस ढंग से प्रदर्शन किया उससे खालसा सेना भयभीत होकर लड़ाई के मैदान से भाग गई। बाद में जम्मू के राजा ने महाराजा रंजीत सिंह से संधि की और उसे वार्षिक नजराना देना मान लिया। मिंया डीडो को नई संधि की शर्तें पसंद नहीं आईं, अतः वह जम्मू के राजा से अलग हो गया।

महाराजा रंजीत सिंह के भाई हाकम सिंह ने तथा दीवान चन्द मिश्र ने जम्मू की लड़ाई के संस्मरण महाराजा को सुनाते हुए किशोर गुलाब सिंह की प्रशंसा की तो महाराजा ने गुलाब सिंह को अपनी सेना में भर्ती करने का इरादा बनाया। उसने जम्मू के प्रशासक मियां मोटा को उसे लाहौर में पेश करने को कहा। मियां मोटा ने गुलाब सिंह को लाहौर भेजा तो महाराजा ने सहर्ष उसे अपनी सेना में एक सैनिक के रूप में भर्ती किया। गुलाब सिंह खालसा सेना में नौकरी मिल जाने से बहुत प्रसन्न हुआ। उसने पहले सैनिक बनने के लिए काबुल जाने का निश्चय किया था। किन्तु सिन्ध नदी पार न कर सकने के कारण वापिस लौट आया था। फिर वह कोटली में कलंजर के किले में भी एक सैनिक के रूप में रहा था, किन्तु वहाँ वह संतुष्ट न रहा और वापिस लौट आया। महाराजा की सेना में भर्ती होने से उसे सन्तोष मिला।

खालसा सेना में प्रवेश लेने के बाद गुलाब सिंह ने अपनी वीरता का कई बार प्रदर्शन किया। इससे महाराजा रंजीत सिंह उस पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे 1809 ई० में अपनी एक रेज़ीमैंट का कमांडर बना दिया।

गुलाब सिंह ने खालसा सेना के उस अभियान में भी भाग लिया जिसके अन्तर्गत महाराजा रंजीत सिंह के नेतृत्व में सिक्ख सेना ने कश्मीर पर आक्रमण किया। चाहे यह अभियान असफल रहा और इस में सिक्ख सेना की पराजय हुई फिर भी गुलाब सिंह की युद्धनीति पर महाराजा बहुत प्रसन्न हुआ और उसने गुलाब सिंह को तीन गाँव जागीर के रूप में दिए। इस जागीर की आय से गुलाब सिंह ने एक सैनिक टुकड़ी का गठन किया जिसमें बहुत कम सिपाही थे।

महाराजा रणजीत सिंह एक बार जालन्धर में स्थित खेरुनाला दुर्ग को विजित करने के लिए बहुत चिन्तित हुए। उन्होंने इस दुर्ग पर अपना झंडा फहराने का कई बार प्रयास

किया। किन्तु यह दुग फिर भी खालसा सेना के लिए दुर्जेय बना रहा। किन्तु गुलाब सिंह खालसा सेना के साथ जब युद्ध-स्थल पर पहुंचा तो उसने अपनी नीति और कुशलता से उस दुर्ग को अपने अधिकार में ले लिया। महाराजा रंजीत सिंह गुलाब सिंह की इस उपलब्धि पर इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने उसे लाल चौबारा और रामगढ़ की जागीरें प्रदान कर दीं।

गुलाब के दोनों छोटे भाई मियां ध्यानसिंह और मियां सुचेत सिंह भी महाराजा की सेवा में आ गए। महाराजा ने उन दोनों को ऊंचे पदों पर नियुक्त किया। गुलाब सिंह के छोटे भाई ध्यान सिंह में विलक्षण प्रतिभा देखकर महाराजा ने उसे अपने दरबार में रख लिया। वह फिर धीरे-धीरे उन्नति करते हुए लाहौर दरबार में प्रधानमंत्री बन गया।

गुलाब सिंह ने महाराजा रणजीत सिंह द्वारा आयोजित विजय अभियानों में बढ़-चढ़ कर भाग लिया। उसने 1815 से लेकर 1820 तक खालसा सेना का कई -युद्ध मोर्चों में नेतृत्व किया। गुलाब सिंह ने मुल्तान का दुर्ग जीतने में जिस अदम्य साहस का परिचय दिया उससे न केवल खालसा सेना के उच्च-अधिकारी अपितु महाराजा रंजीत सिंह भी अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने मुलतान के दुर्ग की विजय का श्रेय गुलाब सिंह को दिया और उसे पुरस्कार के रूप में बीस हज़ार रुपये की भूमि और ध्यान सिंह को एक हवेली दी।

महाराजा रंजीत सिंह ने 1817 में रियासी की जागीर भी गुलाब सिंह को प्रदान कर दी। गुलाब सिंह ने इस जागीर के पूर्व स्वामी मियां दीवान सिंह और उसके बेटे मियां भूपसिंह के कड़े विरोध के बावजूद भी रियासी पर अधिकार कर लिया और विरोधियों का दमन बड़ी कठोरता से किया। सन् 1817 में ही गुलाब सिंह की भेंट जोरावर सिंह कल्हुरिया से हुई। उसने जोरावर सिंह को अपनी निजी सेना में भर्ती किया और रियासी के दुर्ग की रक्षा करने के लिए रियासी भेजा। जोराब़र सिंह ने रियासी पहुंच कर न केवल दुर्ग की ही रक्षा की अपितु प्रशासन में भी आवश्यक सुधार लाये।

सन् 1819 में महाराजा रंजीत सिंह ने कश्मीर पर पुनः आक्रमण करने की योजना बनाई तो गुलाब सिंह ने उस योजना को क्रियान्वित करने के लिए महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। वह कश्मीर विजय में खालसा सेना के साथ-साथ रहा और उसके प्रयास से सिक्ख सेना कश्मीर पर अधिकार करने में सफल हो गई।

महाराजा रंजीत सिंह ने रामगढ़ और रियासी का क्षेत्र जागीर के रूप में गुलाब सिंह को चाहे सौंप दिया था किन्तु जम्मू परगना उसने खालसा राज्य के अन्तर्गत ही रखा था। खालसा दरबार ने जम्मू परगना का प्रशासन चलाने के लिए जितने भी अधिकारी जम्मू में भेजे वे सभी जम्मू में शांति स्थापना में सफल न हो सकें। इसका मुख्य कारण

मियां डीडो था।

मियां डीडो- डीडो जम्बाल राजपूत था। वह भी राजवंश का ही एक सदस्य था। उसके पूर्वजों को जगटी गाँव जागीर के रूप में मिला था। अतः वह वहीं रहता था। इसके पिता का नाम मियां हजारी था। डीडो का जन्म 1780 के चैत मास में हुआ। जब वह बड़ा हुआ तो एक वीर योद्धा के रूप में उभरा। सन् 1808 में सिक्खों ने जब जम्मू पर हमला किया तो उसने जम्मू के राजा की ओर से लड़ाई में भाग लिया और खालसा सेना को युद्ध-भूमि से भागने को विवश किया। जम्मू के राजा ने लड़ाई में जीतने के बावजूद भी जब सिक्ख सरदारों के आगे सिर झुकाया तो मियां डीडो ने इसे डोगरा जाति के गौरव के विरुद्ध बताया। 1816 में महाराजा रंजीत सिंह ने जम्मू के राजा जीतसिंह को गद्दी से हटा कर जम्मू परगना अपने बेटे शाहज़ादा खड्ग सिंह को जागीर के रूप में दिया तो मियां डीडो ने इसे स्वायतत्ता का हनन माना और लाहौर दरबार के विरुद्ध विद्रोह की घोषणा कर दी।

लाहौर दरबार ने मियां डीडो का दमन करने के लिए जम्मू परगना में स्थान-स्थान पर सैनिक चौकियां स्थापित करके उसके विरुद्ध कई सैनिक अभियान चलाये। मियां डीडो को डुग्गर के लोगों का इतना अधिक समर्थन प्राप्त था कि वे उसके विषय में खालसा सैनिकों को कुछ भी नहीं बताते थे तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप में उसकी सहायता करते थे। मियां डीडो ने खालसा सेना से गुरिल्ला ढंग की लड़ाई लड़ने के लिए अपने सहयोगियों का एक दल बनाया जिसमें मियां दीवानु, मियां धर्मसिंह, मियां जुलफू मियां जवाहर सिंह, मियां ध्यान सिंह, मियां पिथुदेव तथा जुरां लंगेह आदि योद्धा सम्मिलित थे। ये लोग खालसा-सैनिकों की चौकियों पर अचानक आक्रमण करके उन्हें भारी क्षति पहुंचाते थे। उसने खालसा सैनिकों को बार-बार ललकारा और कहा डुग्गर डोगरों का है, अतः आप इसे खाली कर दो और अपने प्रदेश पंजाब को सम्भालो। डीडो के कहने पर न तो खालसा सेना ने जम्मू को खाली किया और न ही डीडो ने उनके पाँव जम्मू में जमने दिये। डीडो के आह्वान पर डुग्गर के गाँव-गाँव में खालसा सरकार के विरुद्ध विद्रोह भड़क उठा। लोगों ने खालसा अधिकारियों के आदेश मानना और उन्हें मालिया देना बन्द कर दिया।

सन् 1819 में पंडित बीरवल ने कश्मीर से महाराजा रंजीत सिंह को कश्मीरी फलों की टोकरियां उपहार के रूप में भेजी। मियां डीडो ने उन टोकरियों को लूट लिया और उन में घास फूस भर महाराजा को भेज दी। महाराजा को डीडो की इस गुस्ताखी पर बहुत क्रोध आया और उसने दीवान भवानी सिंह और भैय्या राम सिंह को डीडो को पकड़ने के लिए लाहौर से जम्मू भेजा। वे जम्मू तो आये किन्तु डीडो को पकड़ने में सफल न हुए। उनसे पहले भी महाराजा ने फतेह सिंह माना, दीवान कृपाराम चौपड़ा

और सरदार अतर सिंह को जम्मू भेजा था। वे केवल डीडो के पिता हजारा का वध कर के चले गए थे।

महाराजा को डीडो पर इस बात पर भी क्रोध था कि उसने शाही फरमान की अवहेलना करते हुए दो-दो तीतर पाल रखे थे। महाराजा ने जब यह अनुभव किया कि बाहर के किसी भी अधिकारी का मियां डीडो को पकड़ना सम्भव नहीं है तो उसने जम्मू के मियां गुलाब सिंह को यह काम सौंपा। गुलाब सिंह अतर सिंह कलाल और जगत सिंह अटारी वाले के साथ जम्मू आया। उसने डीडो के कुछ साथियों को जो जेल में बन्द पड़े थे, मुक्त करवाया। उसने डीडो के साथियों को डीडो के पास यह सन्देश लेकर भेजा कि हम एक ही बरादरी के हैं, अत: हमें एक दूसरे के विरुद्ध नहीं लड़ना चाहिए। हम भी तुम्हारी तरह जम्मू के लिए आज़ादी चाहते हैं। किन्तु हमारा मार्ग अलग है। तुम भी हमारे मार्ग पर आ जाओ और महाराजा की अधीनता स्वीकार कर लो। किन्तु मियां डीडो ने गुलाब सिंह का प्रस्ताव नहीं माना। अन्त में गुलाब सिंह ने मियां डीडो के विरुद्ध सैनिक अभियान आरम्भ कर दिया। उसने अपने गुप्तचर पूरे जम्मू परगना में फैला दिये जिन से उसे डीडो के बारे में जानकारी मिलने लगी।

गुलाब सिंह ने मियां डीडो के साथियों को एक-एक करके जब अपने पक्ष में कर लिया तो उसने मियां डीडो को भरथल गांव से ऊपर सांझी छत्त के निकट घेर लिया। मियां डीडो ने अपना परिवार माता वैष्णो देवी के पुजारी को सौंपा और स्वयं गुलाब सिंह का मुकाबला करने के लिए एक बड़ी सी चट्टान पर चढ़कर उसका नाम ले लेकर उसे द्वन्द्व-युद्ध के लिए ललकारने लगा।

भरथल गांव में मियां डीडो का ननिहाल था। गुलाब सिंह ने मियां डीडो के मामा को अपने पक्ष में किया हुआ था। गुलाब सिंह ने उसी को आगे धकेला और पीछे से मियां डीडो पर गोली चलवाई। गोली मियां डीडो की छाती में लगी और वह चट्टान से गिर कर पहाड़ी ढलान पर गिर पड़ा। मियां डीडो के वध के बाद जम्मू परगना में कई वर्षों से चल रहा विद्रोह शान्त हो गया। मियां डीडो के मरने की सूचना जब महाराजा रंजीत सिंह को मिली तो वह गुलाब सिंह पर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने गुलाब सिंह को पुरस्कृत करने का मन बनाया।

उन्हीं दिनों काबुल के एक शाही परिवार का सदस्य शाह शुजा अपने भाई से झगड़ कर पंजाब में महाराजा रंजीत सिंह की शरण में आया। महाराजा ने उसे शरण दी। उसके पास कोहनूर हीरा था। उसे सन्देह हुआ कि महाराजा उससे कोहनूर हीरा छीनना चाहता है तो वह लाहौर से भाग गया और घूमता-फिरता, किश्तवाढ़ के राजा मुहम्मद तेग सिंह के पास पहुंच गया। महाराजा को जब यह पता चला कि शाहशुजा किश्तवाड़

में है तो उसने किश्तवाड़ के राजा को आदेश भेजा कि वह शाहशुजा को उसे सौंपे। किन्तु किश्तवाड़ के राजा ने महाराजा का आदेश ठुकरा दिया। महाराजा को किश्तवाड़ के राजा पर बहुत क्रोध आया और उसने गुलाब सिंह को आदेश दिया कि वह किश्तवाड़ पर आक्रमण करके किश्तवाड़ के राजा को पकड़ कर उसके दरबार में पेश करे।

गुलाब सिंह ने एक कूटनीतिज्ञ की भांति पहले किश्तवाड़ के राजा मुहम्मद तेगसिंह और उसके वजीर लखपत में एक दूसरे के प्रति सन्देह पैदा किया और बाद में वजीर लखपत को अपनी सेवा में लेकर किश्तवाड़ पर अधिकार करने की योजना बनाई। गुलाब सिंह ने वजीर लखपत के कहने पर 1821 में राजा मुहम्मद तेग सिंह को डोडा में बुलवाकर उसे कैद करके लाहौर भेज दिया और उसकी अनुपस्थिति में रक्त की एक बूंद बहाये बिना किश्तवाड़ पर अधिकार कर लिया।

महाराजा रंजीत सिंह गुलाब सिंह की इन उपलब्धियों पर अति प्रसन्न हुआ और उसने 16 जून 1822 में अखनूर में चन्द्रभागा नदी के तट पर 'जयापोता' वृक्ष के नीचे अखनूर के सरदारों की उपस्थिति में गुलाब सिंह का राजतिलक कर के उसे जम्मू का राजा बनाया।

महाराजा ने इसी दिन गुलाब सिंह के छोटे भाई सुचेत सिंह को भी बन्द-रालता का क्षेत्र सौंप कर उसे भी राजा का पद प्रदान किया। बाद में 1827 को महाराजा ने पुंछ भिम्बर की जागीर गुलाब सिह के बड़े भाई राजा ध्यान सिंह को प्रदान की। फिर कुछ समय बाद महाराजा ने जसरोटा की जागीर राजा ध्यान सिंह के बड़े बेटे हीरा सिंह को सौंप कर उसे भी राजा की पदवी दी। इस प्रकार जम्मू क्षेत्र का जो भाग महाराजा रंजीत सिंह के अधीन था, वह उसने गुलाब सिंह और उसके भाईयों में बांट दिया। इससे गुलाबसिंह की निष्ठा महाराजा रंजीत सिंह के प्रति और भी बढ़ गई और वह खालसा राज्य के विस्तार के लिए लाहौर दरबार को पूरा-पूरा सहयोग देने लगा। वह सरहदी सरदार अज़ीम खान का दमन करने के लिए सेनापति हरि सिंह नलवा के साथ कवायली क्षेत्र में गया। उसने वहां जाकर न केवल विद्रोह का ही दमन किया अपितु विद्रोही सरदार को बन्दी बनकर लाहौर भेज दिया। इसी प्रकार सन् 1823 में पंजाब के महाराजा ने कटक पर आक्रमण किया तो कटक दुर्ग पर अधिकार करने में गुलाब सिंह ने अपनी असाधारण रणनीति का परिचय दिया।

गुलाब सिंह ने महाराजा के आदेश पर भिम्वर और मनावर के राजा सुलतान खान को कैद करके उसकी रियासत का विलय खालसा राज्य के साथ किया। बाद में भिम्बर का इलाका महाराजा ने गुलाब सिंह को जागीर के रूप में दिया।

गुलाब सिंह जम्मू का राजा बनने के बाद डुग्गर प्रदेश की छोटी-छोटी रियासतों

और जागीरों का विलय जम्मू राज्य के साथ करके एक सुदृढ़ राज्य की स्थापना करना चाहता था। उसने इन राज्यों को जम्मू में मिलाने के लिए एक अभियान चलाया। जिसके अन्तर्गत उसने सबसे पहले रियासी, साम्बा और दलपत को अपने राज्य का अंग बनाया। मनकोट और किश्तवाड़ को उसने 1823 में अपने अधीन किया और अखनूर 1812 में ही जम्मू का अंग बन चुका था। इसके बाद उसकी दृष्टि चनैनी पर थी। इस रियासत के जागीरदार को उसने 1825 में अपने अधीन किया । 1834 में जसरोटा का भी पतन हुआ और वह भी डोगरा भाईयों के अधिकार में आ गया। 1836 में बसोहली और भूतिका और 1841 में भड्डू का पतन हुआ। ये सभी राज्य बाद में या पहले गुलाब सिंह के अधीन आ गये। पुंछ पर डोगरा राजा ध्यान सिंह ने 1827 में ही अधिकार कर लिया था।

गुलाब सिंह ने रावी से लेकर चन्द्रभागा और चन्द्रभागा से लेकर जेहलम तक जितने भी छोटे-राज्य थे, उन पर अपने परिवार जनों को अधिकार दिलवा कर लद्दाख विजय का सपना लिया। इस सपने को साकार करने का दायित्व उसने अपने एक विश्वस्त सेनापति जोरावर सिंह को सौंपा।

जोरावर सिंह – जोरावर सिंह गुलाब सिंह का विश्वासपात्र था। वह अद्वितीय योद्धा, अदम्य उत्साही, साहसी और बहुत ही महत्त्वाकांक्षी था। उसका जन्म 1786 में हमीरपुर जनपद के अन्तर्गत अनसर गांव में कल्हुरिया परिवार में हुआ था। उसके पिता का नाम ठाकुर हरजीत सिंह था। युवावस्था में ही वह अपने घर से निकल कर अपने दो साथियों भीखम और धर्मसिंह के साथ लाहौर आया और महाराजा रंजीत सिंह की सेना में भर्ती हो गया। वहां वह कुछ ही समय रहा। बाद में उसने खालसा सेना की नौकरी छोड़ दी और जम्मू आया । जम्मू में उसकी भेंट गुलाब सिंह से हुई। गुलाब सिंह ने उसे अपनी सेना में भर्ती करके रियासी भेजा। वहां उसने बहुत ही अच्छा काम किया। उसने भीमगढ़ दुर्ग को विद्रोहियों से बचाया। सेना में राशन की अनियमितताओं को दूर करके पैसों की बचत की। गुलाब सिंह ने उस पर प्रसन्न होकर 1820 में उसे भार बरदारी विभाग का निरीक्षक नियुक्त किया। 1821 में गुलाब सिंह ने किश्तवाड़ पर अधिकार करने के बाद 1823 में जोरावर सिंह को इस क्षेत्र का प्रशासक नियुक्त किया।

किश्तवाड़ की सीमा लद्दाख राज्य को स्पर्श करती थी। अत: किश्तवाड़ में रहते हुए जोरावर सिंह को सूचना मिली कि लद्दाख के दरबार के कुछ लोग वहां के राजा शेषपाल नामग्याल से नाराज़ है। राज परिवार भी धड़ों में विभाजित है जिसके कारण लद्दाख में अशांति है। जोरावर सिंह ने लद्दाख की स्थिति के बारे में गुलाब सिंह को सूचित किया और लद्दाख पर आक्रमण करने की अनुमति मांगी। गुलाब सिंह ने 1834 में जोरावर सिंह को लद्दाख पर आक्रमण करने की अनुमति दे दी।

जुलाई 1834 को जोरावर सिंह ने अपने साथ पांच हजार डोगरा सैनिकों का एक दल लिया और लद्दाख पर आक्रमण करने के लिए प्रस्थान किया। जोरावर सिंह ने जिन सैनिक अधिकारियों को इस अभियान में सम्मिलित किया उनमें सरदार समदखान, मेहता बस्ती राम किश्तवाड़िया, राणा जालिम सिंह, मिर्जा रसूल बेग, मियां तोता, सरदार उत्तमसिंह, मियां राय सिंह तथा हमाम मलिक थे। डोगरा सेना सुरु घाटी को पार करके लद्दाख की सीमा में जैसे ही प्रविष्ट हुई दोरजी नामग्याल के नेतृत्व में इसका सामना करने के लिए लद्दाखी फौज भी पहुंच गई और दोनों सेनाओं के मध्य 16 अगस्त 1834 को बोतो स्थान पर भयंकर लड़ाई हुई जिसमें लद्दाखी सेना परास्त होकर भाग गई।

उसके बाद जोरावर सिंह ने पुरिंग प्रान्त के साकू कार्त्से, सुरूं , और शागकार के दुर्गों पर अधिकार किया। उसके बाद वह आगे बढ़ा और उसने सोड और पशकुन नगरों पर अधिकार कर लिया। यहाँ से बजीर ने लद्दाख के राजा को सन्देश भेजा की यदि वह डोगरा राजा की अधीनता स्वीकार कर ले तो डोगरा सेना वापिस चली जायेगी। लद्दाख के राजा के दरबारियों ने वजीर के दूत को पकड़ कर सिन्ध नदी में फैंक दिया जिस के कारण वह क्रोध में आ गया और उसने लद्दाख पर ज़ोरदार हमला किया। इस हमले का सामना लद्दाखी सेना नहीं कर सकी और लद्दाख के राजा ने पराजय स्वीकार कर ली। इस लड़ाई के बाद वजीर और लद्दाख के राजा के मध्य एक संधि हुई। संधि के अर्न्तगत लद्दाख के राजा ने जम्मू के राजा की अधीनता स्वीकार की। उसने पचास हजार रुपये लड़ाई का हरजाना और 20 हज़ार रुपये वार्षिक नज़राना देना मान लिया। इस संधि के बाद डोगरा सेना वापस लौट आई।

डोगरा सेना के लौटने के तुरन्त बाद लद्दाख के लोगों ने जम्मू की अधीनता स्वीकार करने से इन्कार किया और विद्रोह का झंडा बुलन्द कर दिया। वजीर को जैसे ही विद्रोह का पता चला वह पाडर के मार्ग से लेह पहुंचा और उसने विद्रोहियों को दंडित किया । लद्दाख के राजा ने क्षमा मांगी। किन्तु वजीर ने उसे इस बार क्षमा नहीं किया। उसने उसे गद्दी से हटा दिया और लद्दाख के राजकवि स्टाड जिन को गद्दी पर बैठा दिया। वजीर ने लेह में एक दुर्ग बनवाया और उसकी रक्षा के लिए तीन सौ डोगरा सैनिक नियुक्त किये।

स्डाड जिन एक अच्छा प्रशासक सिद्ध न हुआ। उसके समय में जंस्कार में विद्रोह हुआ। डोगरा सेना ने इस विद्रोह का दमन तो किया किन्तु वजीर ने स्टाड जिन को गद्दी से हटा कर पुन: शेषपाल ग्योलपो को लद्दाख की गद्दी पर बैठाया। 1840-41 में वहां फिर विद्रोह भड़का जिसका दमन वजीर ने स्वयं किया।

लद्दाख विजय के बाद वजीर ने बलतिस्तान की ओर ध्यान दिया। बलतिस्तान में

उन दिनों अहमद शाह राज्य करता था। उसने अपने बड़े पुत्र मुहम्मद शाह को पदच्युत किया तो वह वजीर से सहायता माँगने के लिए उसके पास आ गया। वजीर ने मुहम्मद शाह को सहायता का वचन दिया। उसने डोगरा और लद्दाखी सेना को अपने साथ लिया और नवम्बर 1939 में लेह से प्रस्थान किया। उस समय उसके पास सात हजार सेना थी। उसने अपनी सेना को दो दलों में विभाजित किया। प्रथम भाग में लद्दाखी सेना थी। उसका नेतृत्व मोहिउद्दीन ने किया। दूसरा दल वह अपने साथ लेकर आगे बढ़ा। डोगरा सेना जब सिन्धु नदी के निकट पहुंची तो बलतिस्तान की सेना ने पुल ही तोड़ दिया। डोगरा सेना जब नये मार्ग की खोज में आगे बढ़ी तो बल्ती सेना ने उस पर घातक हमला किया जिस में चार सौ के लगभग डोगरा सैनिक हताहत हुए। अन्त में मेहता बस्तीराम ने दरद कबीले के लोगों की सहायता से नया रस्सों का पुल बनवाया। इस पुल से डोगरा सेना सिन्धु नदी के पार पहुंच गई। बल्ती सेना को जब यह पता चला कि डोगरा सेना नदी पार कर चुकी है तो उसने रात के अन्धेरे में डोगरा सेना पर एक प्रबल हमला किया। इसमें दोनों पक्षों की सेनाओं को बहुत क्षति पहुंची। अन्ततः डोगरा सेना ने लड़ाई में बल्ती सेना को पराजित किया जिस के कारण बल्ती सेना भाग गई।

जोरावर सिंह यह लड़ाई जीतने के बाद अस्कर्दू पहुंचा। अस्कर्दू के राजा ने बजीर के आने का समाचार सुना तो वह अपने किले में बन्द हो गया। यह किला उन दिनों दुर्जेय समझा जाता था। इस किले को सिन्धु नदी ने तीन और से घेरा हुआ था। डोगरा सेना ने दुर्ग के भीतर पानी की सप्लाई तोड़ दी जिसके कारण मार्च 1840 को इस दुर्ग पर डोगरा सेना ने अधिकार कर लिया। वजीर ने बलतिस्तान के राजा अहमद शाह को गद्दी से उतार कर उसके बेटे मुहम्मद शाह को गद्दी पर बैठाया। मुहम्मद शाह ने डोगरा राजा गुलाब सिंह की अधीनता स्वीकार की और सात हजार रुपये वार्षिक नज़राना देना माना।

बलतिस्तान को जीतने के बाद वजीर ने शिंगर, रोंदू और अस्तोर के सरदारों को डोगरा राजा की अधीनता स्वीकार करने को कहा। थोड़े से संघर्ष के बाद इन क्षेत्रों के सरदारों ने अधीनता स्वीकार की और नज़राना भी पेश किया। वजीर अस्कर्दू में नौ महीने व्यतीत करने के बाद लेह वापिस लौट आया।

लेह पहुंचने के बाद बजीर ने पश्चिमी तिब्बत पर आक्रमण करने की योजना बनाई। जोरावर सिंह ने अपने साथ तीन हज़ार डोगरा और तीन हज़ार लद्दाखी सैनिक लिए और मई 1841 को पश्चिमी तिब्बत की ओर प्रस्थान किया। जोरावर सिंह ने 5 जून 1841 को चांगला दर्रा पार किया और वहां स्थित तिब्बती सेना पर हमला किया। तिब्बती सेना वहां संख्या में कम थी। अतः हार गई। उसके बाद वजीर रुडाक की ओर

बढ़ा। उसे अधिकार में लेने के बाद वह डोगरा सेना लेकर गरटोक आया। यहां उसने तेरह दिन विश्राम किया। गरटोक जीतने के बाद डोगरा सेना 'गार' की ओर बढ़ी। यहां से आगे 'सोक पोटल सोम' तीर्थ था। डोगरा सेना ने इस स्थान की यात्रा करने के बाद झील मानसरोवर में अपना शिविर लगाया। मानसरोवर के दर्शन करने के बाद बजीर अपनी सेना के साथ तफलाखर की ओर बढ़ा। 6 दिसम्बर 1841 को डोगरा सेना ने इस महत्वपूर्ण स्थान को भी अपने अधिकार में ले लिया। तफलाखर का महत्व भौगोलिक दृष्टि से भी था क्योंकि इस स्थान पर अधिकार कर लेने के बाद जम्मू राज्य की सीमाएं नेपाल तथा कुमायूं की उत्तरी सीमाओं से जा मिली।

तफलाखर जीतने के बाद डोगरा सेना तीर्थ पौरी पहुंची। यहां डोगरा वजीर ने तिब्बत और नेपाल की सीमा पर एक बड़ी चट्टान के ऊपर नागरी और लद्दाखी में सीमा लेख लिखवाया।

उन दिनों वहां सर्दी बहुत बढ़ गई थी, अत: जोरावर सिंह ने पीछे हटने का कार्यक्रम बनाया। तिब्बत की सेना को जब यह पता चला कि डोगरा सेना वापिस जा रही है तो उसने सेनापति पालसी के नेतृत्व में डोगरा सेना को घेर लिया। 7 नवम्बर 1841 से लेकर 26 नवम्बर 1841 तक डोगरा सैनिकों और तिब्बत के सैनिकों में कई झड़पें हुई। जिस में डोगरा सेना को बहुत क्षति पहुंची। तिब्बती सेना की सहायता के लिए जब 1250 घोड़े और तोपे पहुंच गई तो उसने डोगरा सेना को दोयु के मैदान में घेर लिया। इस स्थान पर दोनों सेनाओं में 10 दिसम्बर के दिन जम कर लड़ाई हुई। 11 दिसम्बर को भी लड़ाई जारी रही। 12 दिसम्बर को प्रात: काल के समय ही जोराबर सिंह घोड़े पर चढ़ कर जैसे ही लड़ाई के मैदान में कूदा तिब्बती सेना ने उस पर गोलियों की बौछार की। एक गोली वजीर की दायीं बाजू में घुसी। वजीर घायल होकर धरती पर गिर पड़ा। घायल जोरावर सिंह को तिब्बती सेना ने चारों ओर से घेर लिया। एक तिब्बती घुड़सवार ने पीछे से आकर उनकी पीठ पर नेजा घोंपा जिससे वजीर शहीद हो गया।

जोरावर सिंह एक महान सेना नायक था। वह पहला भारतीय सेनापति था जिसने भारत की सीमा को मान सरोवर तक बढ़ाया। उसने हिमालय पहाड़ में स्थित पहाड़ी राज्यों को भौगोलिक दृष्टि से जोड़ा और देश के भूगोल को ही बदल कर रख दिया। कई इतिहासकार उसकी तुलना नेपोलियन से करते हैं। किन्तु वह एक बेजोड़ सेनापति था।

जोरावर सिंह के शहीद होने का समाचार जब गुलाब सिंह को मिला तो वह भी बहुत दु:खी हुआ।

लाहौर दरबार

27 जून 1839 को पंजाब केसरी महाराजा रंजीत सिंह की का देहावसान हुआ।

उसके बाद उसका बड़ा बेटा खड़्ग सिंह राजगद्दी पर बैठा किन्तु 1840 में उसका भी देहान्त हो गया। उसकी जिस दिन अन्तेष्ठी थी उसी दिन उसके उत्ताराधिकारी कुंवर नौनिहाल सिंह की भी एक दुर्घटना में मृत्यु हो गई। उसी के साथ गुलाब सिंह का बड़ा लड़का ऊधमसिंह भी हताहत हुआ। इन घटनाओं का गुलाब सिंह के मन पर गहरा प्रभाव पड़ा।

कुंवर नौ निहाल सिंह के देहान्त के बाद लाहौर के दर बारियों में उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर युद्ध छिड़ गया। राजा ध्यानसिंह ने लाहौर दरबार के कई वरिष्ठ अधिकारियों की सलाह की उपेक्षा करके महाराजा रंजीत सिंह के दासीपुत्र शेरसिंह को गद्दी पर बैठा दिया। इससे लाहौर दरबार के कई दरबारी राजा ध्यान सिंह के विरोधी हो गए और उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगे। सिक्ख सरदार अजीत सिंह और सरदार लहनासिंह ने एक षड्यंत्र रच कर 16 दिसम्बर 1845 के दिन पहले पंजाब के महाराजा शेर सिंह की गोली मार कर हत्या की और बाद में उसी दिन उन्होंने राजा ध्यान सिंह की भी हत्या कर दी। इस प्रकार लाहौर दरबार में सत्ता हथियाने के लिए षड्यंत्रों का जाल बिछने लगा।

खालसा सरदारों ने अन्तत: महाराजा रंजीत सिंह के सबसे छोटे अल्प व्यस्क पुत्र दिलीप सिंह को पंजाब की गद्दी पर बैठाया और उसका प्रधान मंत्री राजा ध्यान सिंह के बड़े बेटे हीरा सिंह को बनाया।

खालसा सरदारों में से ही एक ने गुलाब सिंह के भाई सुचेत सिंह को पत्र लिखा कि हीरा सिंह अभी अपरिपक्व है और तुम लाहौर आकर महाराजा के प्रधान मंत्री बनो। खालसा सेना और दरबारी तुम्हारे पक्ष में हैं। राजा सुचेत सिंह खालसा दरबारियों की चाल को समझ नहीं सका और गुलाब सिंह से विचार-विमर्श किये बिना लाहौर जा पहुंचा। वहाँ उसका न तो किसी ने स्वागत किया और न ही उसे कोई महत्त्व दिया। किन्तु सुचेत सिंह के लाहौर जाने से उसका टकराव अपने ही सगे भतीजे और लाहौर के प्रधान मंत्री हीरा सिंह से हुआ जिसका परिणाम यह निकला कि हीरा सिंह के समर्थकों ने राजा सुचेत सिंह का लाहौर में 1844 में वध कर दिया।

राजा हीरा सिंह भी खालसा दरबारियों के षड्यंत्र का शिकार बना। सिक्ख सरदार उसके गुरु जल्ला पंत के व्यवहार से नाराज़ थे। उस पर आरोप था कि उसने महारानी जिन्दा कौर का अपमान किया । रानी जिन्दा कौर महाराजा दिलीप सिंह की सरंक्षिका थी।

सिक्ख सरदारों ने हीरा सिंह को जल्लापंत को उनके हवाले करने को कहा। हीरा सिंह ने पंत को सरदारों के हवाले नहीं किया। वह रात के अन्धेरे में जल्ला पंत को अपने साथ लेकर जम्मू की ओर भागा। गुलाब सिंह का मंझला बेटा सोहन सिंह भी हीरा सिंह के साथ था। सिक्ख सरदारों को हीरा सिंह के भागने का पता चला तो उन्होंने उसका

पीछा किया। 21 दिसम्बर 1844 को सरदारों ने हीरा सिंह को और उसके साथियों को अपने घेरे में लिया। दोनों पक्ष के लोगों में लड़ाई हुई जिसमे हीरा सिंह, सोहन सिंह और जल्ला पंत और अनेक सिपाही मारे गए। गुलाब सिंह को जब इस घटना का पता चला तो वह स्तब्ध रह गया। खालसा दरबारियों के षड्यंत्र में उसके दो भाई, भतीजा और दो बेटे मारे गए। वह बहुत ही दु:खी हुआ किन्तु दु:ख भरी घड़ियों में भी लाहौर दरबार का कोई भी अधिकारी उसे सान्त्वना देने नहीं आया। गुलाब सिंह को तो आश्चर्य तब हुआ जब खालसा सेना ने जनवरी 1845 मे जम्मू और जसरोटा पर हमला किया। जसरोटा में सिक्ख सेना के अधिकारी हीरा सिंह की पत्नियों का धन उस समय लूट कर ले गए जब वे सती होने जा रही थी। सिक्ख सेना ने साम्बा, राम नगर, अखनूर, भिम्बर पर भी जोरदार हमले किये और वहां से जितना भी राजकोष और अमूल्य सामान मिला, वे अपने साथ ले गए। उन्होंने स्थानीय लोगों को भी नहीं बख्शा, जिससे जो मिला, वही लूट कर ले गए।

सिक्ख सेना ने लाल सिंह और शामसिंह अटारी वाला के नेतृत्व में जम्मू पर भी 1845 के आरम्भ में चढ़ाई की। सिक्ख सेना गुम्मट के नीचे सतवारी और तालाब तिलो के खुले मैदानों में शिविर लगा कर बैठ गई। गुलाब सिंह ने उस विकट स्थिति में धैर्य नहीं छोड़ा। उसने सिक्ख सरदारों और सैनिकों को विपुल धन देकर सन्तुष्ट किया। सिक्ख सरदारों ने गुलाब सिंह से लम्बी बातचीत की और अन्त में वे उसे अपने साथ खालसा सरकार का प्रधानमंत्री बनाने के लिए लाहौर ले गए।

मार्च 1846 में ईस्ट इंडिया कम्पनी और खालसा सेना में लड़ाई छिड़ गई। खालसा सेना के पास नेतृत्व करने के लिए कोई परिपक्व और योग्य सेनापति नहीं था। अत: इस लड़ाई में खालसा सेना को पराजय का मुंह देखना पड़ा। खालसा सरकार के अनुरोध पर गुलाब सिंह ने सिक्खों और अंग्रेजों के मध्य मध्यस्थता की भूमिका निभाई। अन्तत: 9 मार्च 1846 को खालसा सरकार और अंग्रेजों के मध्य एक संधि हुई जिसके अन्तर्गत खालसा सरकार ने सतलुज और व्यास के मध्य का मैदान तथा रावी नदी से लेकर सिन्धु नदी के मध्य का पहाड़ी इलाका ईस्ट इंडिया कम्पनी को सौंपा। उसी दिन एक अन्य संधि के अन्तर्गत ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग ने रावी और सिन्ध नदियों के मध्य में स्थित पहाड़ी इलाके का गुलाब सिंह को महाराजा स्वीकार किया और बदले में 75 लाख रुपये और वार्षिक नज़राना लिया। 16 मार्च 1846 में ब्रिटिश गर्वनर जनरल और महाराजा के मध्य जो संधि हुई इसे अमृतसर संधि के नाम से अभिहित किया गया। इस संधि के अन्तर्गत गुलाब सिंह को जम्मू और लद्दाख के अतिरिक्त हज़ारा, कश्मीर और चम्बा राज्य का एक हिस्सा मिला। एक महीने के बाद अप्रैल 1846 को गुलाब सिंह ने ब्रिटिश अधिकारियों के साथ मार्च 1846 की संधि में संशोधन करके एक नई संधि

की जिस के अन्तर्गत गुलाब सिंह ने हजारा का इलाका लाहौर को दिया और उसके बदले में सुचेत गढ़, रणवीर सिंह पुरा का मैदानी भाग और भिम्वर का इलाका प्राप्त किया। इसी प्रकार उसने रावी नदी के पश्चिम में स्थित चम्बा का भाग अंग्रेजों को दिया और उसके बदले में लखनपुर और पंजग्राई का इलाका अंग्रेजों से लिया।

महाराजा गुलाब सिंह– अमृतसर संधि के बाद गुलाब सिंह राजा से महाराजा बन गया। उसके राज्य का विस्तार हुआ। उसने जिस नये राज्य की स्थापना की उसके अन्तर्गत पूरा जम्मू प्रान्त कश्मीर प्रान्त, लद्दाख और बलतिस्तान और पश्चिमी तिब्बत का कुछ भाग आता था। इतने विशाल राज्य की स्थापना गुलाब सिंह से पहले किसी भी अन्य डुग्गर के राजा ने नहीं की थी। यह नया राज्य गुलाब सिंह की बहुत बड़ी उपलब्धि था।

जम्मू, लद्दाख और बलतिस्तान महाराजा गुलाब सिंह के अधिकार में पहले से ही था। उसने कश्मीर का अधिकार प्राप्त करने के लिए डोगरा सेना को कश्मीर भेजा तो वहां के गवर्नर शेख अमामद्दीन ने कश्मीर का अधिकार गुलाब सिंह को सौंपने से इन्कार कर दिया। अन्ततः महाराजा गुलाब सिंह ने अंग्रेज अधिकारी हेनरी लारेंस से सहयोग प्राप्त करके 9 नवम्बर 1846 को कश्मीर पर भी अधिकार कर लिया। तत्पश्चात् कश्मीर घाटी के छह जागीरदारों ने जिन में मुज्जफर वाद का सुलतान हसन खान भी सम्मिलित था गुलाब सिंह की अधीनता स्वीकार की।

गुलाब सिंह के अनुरोध पर अमृतसर संधि की पुनर्व्याख्या की गई और गिलगित का इलाका भी नये राज्य का भाग बन गया। गिलगित में स्थानीय सरदारों ने इसका विरोध किया किन्तु गुलाबसिंह ने नत्थूशाह के नेतृत्व में डोगरा सेना को गिलगित में भेजा। नत्थूशाह ने विद्रोहियों का दमन किया और अस्तूबर और गिलगित पर अधिकार कर लिया। उसने वहां शांति स्थापित की। इसके बाद डोगरा सेना ने 1851 में चिलास पर भी अधिकार किया।

गुलाब सिंह ने तिब्बत के साथ जो सीमा विवाद थे, उनको भी सुलझाया। उसने 1856 में नेपाल के ल्हासा में नियुक्त राजदूत जोध विक्रम सिंह थापा के द्वारा तिब्बत सरकार से सम्पर्क स्थापित करके तिब्बत में डोगरा बन्दी सैनिकों को मुक्त करने को कहा। थापा के प्रयास से केवल 56 बंदी सैनिक ही नेपाल के मार्ग से जम्मू आये, शेष तिब्बत में ही अपना परिवार बसा कर बस गए।

गुलाब सिंह का अधिकांश समय लड़ाईयाँ लड़ने में ही बीता। वह प्रशासन की ओर विशेष ध्यान नहीं दे सका। फिर भी उसने अपने राज्य का प्रशासन चलाने के लिए पंजाब से कुछ पढ़े लिखे लोगों को उच्च पदों पर नियुक्त किया। उसने वजीराबाद के ज्वाला सहाय को अपना मुख्य दीवान (प्रधान मंत्री) बनाया। महाराजा ने रियासत की

बतीस सौ जागीरों में से अधिकांश का विलय जम्मू कश्मीर राज्य के साथ किया। उसने भूमि-सुधारों की ओर भी ध्यान दिया किन्तु इस दिशा में वह विशेष प्रगति नहीं कर सका। उसने कश्मीर में दुर्भिक्ष का सामना करने के लिए शाली स्टोर बनवाये। महाराजा ने रियासत में अपना सिक्का चलाया।

महाराजा गुलाब सिंह एक दूरदर्शी और कूटनीतिज्ञ शासन था। वह बहुत ही चालाक और होशियार था। उसने 1856 में अपने ही हाथों अपने बेटे रणवीर सिंह को राजतिलक लगाया और अपनी गद्दी उसे सौंप कर स्वयं कश्मीर चला गया जहां 4 अगस्त 1857 को श्रीनगर में उसका का देहान्त हुआ।

महाराजा रणवीर सिंह

डुग्गर के इतिहास में महाराजा रणवीर सिंह का नाम स्वर्ण अक्षरों में अंकित हैं। इतिहासकार इनकी परिगणना भारत के सर्वश्रेष्ठ नरेशों में करते हैं। महाराजा रणवीर सिंह ने अपने राज्य काल में अपनी रियासत का सर्वांग विकास जिस तीव्रगति से किया उसकी सराहना विदेशी इतिहासकारों ने भी की है। ऐतिहासिक ग्रंथों में महाराजा एक न्यायप्रिय और प्रजा हितैषी शासक के रूप में वर्णित हैं। वास्तव में महाराजा रणवीर सिंह डुग्गर के इतिहास के गौरव है।

डुग्गर के इस महान सपूत का जन्म जम्मू कश्मीर रियासत के संस्थापक महाराजा गुलाब सिंह की पहली पत्नी रानी रक्वाल की कोख से रामगढ़ दुर्ग में विक्रमी सम्वत् 1887 के श्रावण मास तदानुसार अगस्त 1830 ई० में हुआ। रणवीर सिंह का बचपन का नाम मियां फीनासिंह था। वे महाराजा गुलाब सिंह के सबसे छोटे पुत्र थे। इनके बड़े भाई का नाम उधम सिंह और मंझले भाई का नाम सोहन सिंह था। उधम सिंह इन से तेरह वर्ष बड़े थे।

गुलाब सिंह के छोटे भाई राजा सुचेत सिंह ने सात विवाह किये किन्तु उनके घर कोई सन्तान न हुई। उन्होंने मियां रणवीर सिंह को अपना दत्तक पुत्र बनाया और वे इन्हें अपने साथ रामनगर ले गए। अतः इन का लालन-पालन बड़े ऐश्वर्य के साथ राजा सुचेत सिंह के महलों में हुआ। राजा सुचेत सिंह की सातों रानियाँ इनसे बहुत स्नेह करती थी। राजा सुचेत सिंह का अधिकांश समय लाहौर दरबार में ही व्यतीत होता था। वे खालसा सेना का नेतृत्व भी कई बार करते थे, अतः वे मियां रणवीर सिंह की शिक्षा-दीक्षा की ओर विशेष ध्यान न दे सके। फिर भी इन्होंने डोगरी लिपि में लिखना और पढ़ना सीख लिया। एक सैनिक की शिक्षा इन्हें रामनगर के अतिरिक्त जम्मू में भी मिली और इन्होंने युद्ध विद्या का प्रशिक्षण किशोरावस्था में ही प्रास कर लिया।

मियां रणवीर सिंह अभी दस ही वर्ष के थे कि इनके बड़े भाई मियां उधमपुर की मृत्यु 5 नवम्बर 1840 को लहौर में एक दुर्घटना में कुंवर नौनिहाल सिंह के साथ हो गई। इससे इन के परिवार के लोगों को गहरा आघात पहुंचा। इस आघात का घाव अभी भरा ही नहीं था कि इन के परिवार पर एक और बज्राघात हुआ। इनके चाचा और संरक्षक राजा सुचेत सिंह अपने भतीजे राजा हीरा सिंह के साथ लाहौर दरबार के प्रधानमंत्री का पद प्राप्त करने के लिए उलझ पड़े। परिणाम यह निकला कि चाचा और भतीजा में टकराव हुआ जिसमें राजा सुचेत सिंह मारे गए। इस दुघर्टना के बाद भी इन के परिवार पर दुर्भाग्य के बादल मंडराते ही रहे। दिसम्बर 1844 में इनका मंझला भाई मियां सोहन सिंह भी राजा हीरा सिंह के साथ जम्मू की ओर पलायन करता हुआ खालसा सैनिक दल से लड़ता हुआ मारा गया। इस प्रकार गुलाब सिंह के तीन पुत्रों में से मियां रणवीर सिंह ही सुरक्षित रहे। राजा सुचेत सिंह की जागीर के मियां रणवीर सिंह उत्तराधिकारी थे, अत: वे कुछ समय वहाँ की व्यवस्था भी देखते रहे। मियां उधम सिंह और मियां सोहन सिंह की मृत्यु से राजा गुलाब सिंह भी बहुत दु:खी थे। अब वे अपने छोटे और तीसरे पुत्र रणवीर सिंह को अपने ही पास रखना चाहते थे, अत: वे इन्हें जम्मू ले आये।

मियां रणवीर सिंह अभी चौदह ही वर्ष के थे कि राजा गुलाब सिंह ने इनका विवाह सीबा के राजा विजय सिंह की पुत्री से करवा दिया। विवाह के बाद मियां जी जम्मू के महलों में ही रहने लगे।

सन् 1845 में लाहौर में खालसा शासक प्रशासन को ठीक ढंग से व्यवस्थित न कर सके और अपनी असफलता का कारण जम्मू के डोगरा बन्धुओं को समझने लगे। डोगरा बन्धुओं में राजा सुचेत सिंह और राजा ध्यान सिंह की पहले ही हत्या की जा चुकी थी, अत: खालसा सेना ने 1845 में डुग्गर क्षेत्र को पूर्णरूपेण अपने राज्य में आत्मसात करने के उद्देश्य से जम्मू पर आक्रमण कर दिया। इस विकट स्थिति में राजा गुलाब सिंह ने राम नगर और उत्तरवाहनी की सुरक्षा का दायित्व मियां रणवीर सिंह को सौंपा। मियां रणवीर सिंह उत्ताराधिकार में मिली जागीर की रक्षा करने के लिए बजीर रत्नू और कर्नल विजय सिंह के साथ अपनी जागीर में आ गए और प्रत्याक्रमण के लिए इन्होंने मोर्चा बन्दी कर ली। किन्तु राजा गुलाब सिंह का इन्हें शीघ्र ही एक आदेश मिला जिसमें इनें जम्मू वापिस लौटने को कहा गया था। अत: मियां जी जम्मू लौट गए। राजा गुलाब सिंह ने खालसा सेना से संधि कर ली और जैसे-तैसे उन्हें लाहौर लौटने के लिए मना लिया।

राजा गुलाब सिंह ने मियां रणवीर सिंह को जम्मू में अपने ही पास रख कर उन्हें युद्ध-कौशल; राजनीति, कूटनीति तथा प्रशासन चलाने की शिक्षा दी। मियां रणवीर सिंह की ग्रहण शक्ति बहुत तीव्र थी, अत: उन्होंने वह सब कुछ बहुत शीघ्र ही सीख लिया जो

इनके पिता राजा गुलाब सिंह इन्हें सिखाना चाहते थे। मियां जी अल्पकाल में ही एक व्यावसायिक सैनिक की भांति युद्ध-विद्या में निष्णात हो गए और एक सेनानायक की भांति सेना का नेतृत्व करने में भी सक्षम हो गए।

सन1846 में पंजाब की राजनीति में एक बड़ा परिवर्तन आया। खालसा सेना और ईस्ट इंडिया कम्पनी के मध्य घमासान लड़ाई हुई जिस में खालसा सेना पराजित हुई। इस लड़ाई का परिणाम यह निकला कि अंग्रेजों और राजा गुलाब सिंह के मध्य भी एक संधि हुई जिसे अमृतसर सन्धि के नाम से अभिहित किया जाता है। इस संधि के अन्तर्गत अंग्रेजों ने गुलाब सिंह को जम्मू व कश्मीर का महाराजा मान लिया और गुलाब सिंह ने इस के बदले कम्पनी को 75 लाख रुपये दिये। 9 नवम्बर 1846 को गुलाब सिंह ने कश्मीर पर अधिकार करके एक नये राज्य की संस्थापना की। जम्मू व कश्मीर रियासत का महाराजा बनते ही गुलाब सिंह ने मियां रणवीर सिंह को जब जम्मू क्षेत्र का प्रमुख प्रशासन नियुक्त किया तो उस समय मियां जी की आयु केवल सतरह वर्ष की ही थी। मियां जी ने जम्मू क्षेत्र का प्रशासक बनते ही इस क्षेत्र की सुरक्षा व्यवस्था पर विशेष ध्यान दिया और क्षेत्र के भीतर लड़ी गई लड़ाईयों के कारण प्रजा में व्याप्त अशांति को दूर करके लोगों का विश्वास जीता।

महाराजा गुलाब सिंह ने कूटनीति में दीक्षित करने के लिए इन्हें ईस्ट इंडिया कम्पनी के वरिष्ठ अधिकारियों से सम्पर्क बढ़ाने के लिए प्रोत्साहित किया। महाराज़ा के आदेश पर ही मियां जी ने पहली अक्तूबर 1847 को शिमला में ब्रिटिश गवर्नर जनरल लार्ड हार्डिंग से भेंट करके उन्हें नये उदित जम्मू कश्मीर राज्य की ओर से उपहार भेंट किये। सन् 1850 में सर हेनरी लॉरेन्स जब कश्मीर आये तो महाराजा ने मियां जी को ही उनका स्वागत करने अनन्त नाग भेजा।

मियां रणवीर सिंह ने अपने पिता महाराजा गुलाब सिंह से किशोरावस्था में ही राजनीति, कूटनीति, युद्धनीति, समाज नीति की जो शिक्षा प्राप्त की उसे उन्होंने एक प्रशासक के रूप में क्रियान्वित भी किया। इनकी बुद्धि बहुत ही कुशाग्र थी अत: जटिल से जटिल विषय को समझने में इन्हें कठिनाई नहीं आती थी और समस्याओं का समाधान वे सहज में ही कर लेते थे।

महाराजा गुलाब सिंह को भी इनकी योग्यता पर पूरा विश्वास था। वे इनके कन्धों पर जो भी दायित्व डालते मियां जी उसे पूरा करते। महाराजा गुलाब सिंह जब इस बात पर संतुष्ट हो गये कि मियां रणवीर सिंह अब इस योग्य हैं कि वे रियासत जम्मू व कश्मीर का प्रशासन सम्भाल सकते हैं तो उन्होंने अपने जीवन काल में भी उन्हें राजगद्दी पर बैठाने का निश्चय किया। इस सम्बन्ध में उन्होंने ईस्ट कम्पनी इंड़िया के गर्वनर जनरल

को लिखित सूचना भेज दी। महाराजा गुलाबसिंह ने स्वयं अपने हाथों से फाल्गुन मास की आठ तिथि सम्वत् 1912 तदानुसार 20 फरवरी 1856 को रणवीर सिंह को पहले ठाकुर द्वारा में राजतिलक लगाया। तत्पश्चात् वे रणवीर सिंह को लेकर पुरानी मंडी चले गए और वहां उन्होंने परम्परानुसार मियां जी को राजासिंहासन पर बैठा कर उनका राज्याभिषेक किया। महाराजा गुलाब सिंह के अनुरोध पर ऐगलज़ तथा दूसरे ब्रिटिश सैनिक अधिकारियों ने भी नये महाराजा के माथे पर केसर का तिलक लगाया। उनका अनुसरण जम्बाल कबीले के प्रमुख एवं वरिष्ठ लोगों ने भी किया। गुलाब सिंह ने नये महाराजा को इस अवसर पर कुछ महत्त्वपूर्ण नीति वाक्य भी कहे जिनमें उन्होंने महाराजा को ब्रिटिश सरकार का वफादार बने रहने, प्रजा को न्याय देने, सीमाओं के प्रति सतर्क रहने तथा जनहित का ध्यान रखने का उपदेश दिया।

महाराजा रणवीर सिंह को सिंहासन पर बैठे अभी एक वर्ष ही हुआ था कि देश में ईस्ट इंडिया कम्पनी के विरोध में देशव्यापी विद्रोह भड़का। पंजाब में लाहौर तथा सियालकोट में भी जब विद्रोह की चिंगारी फूटी तो पंजाब के मुख्या- युक्त ने एक पत्र गुलाब सिंह को लिखा जिसमें उनसे सैनिक सहायता का अनुरोध था। गुलाब सिंह ने महाराजा रणवीर सिंह को अंग्रेजों की सहायता के लिए कहा। महाराजा रणवीर सिंह ने अपने पिता गुलाब सिंह का आदेश मिलते ही अपनी सेना की चार बटालनें दीवान हरिचन्द के नेतृत्व में अंग्रेजों की सहायतार्थ भेज दीं। इनमें लगभग तीन हज़ार डोगरा सैनिक सम्मिलित थे। महाराजा रणवीर सिंह ने स्वयं भी दिल्ली की ओर प्रस्थान किया किन्तु गुलाब सिंह की शारीरिक स्थिति बिगड़ जाने के कारण वे वापिस आ गए।

डोगरा सैनिकों ने जम्मू से प्रस्थान करने के बाद जैसे ही सतलुज़ नदी को पार किया प्रदूषित जल का सेवन करने से सैनिक शिविर में हैजा फैल गया। इस महामारी ने दीवान हरिचन्द और कई अन्य डोगरा सैनिक अधिकारियों को अपना ग्रास बनाया। फिर भी डोगरा सेना अंग्रेज अधिकारी आर. सी लारेन्स के नेतृत्व में दिल्ली पहुंच गई। अंग्रेजों ने डोगरा सेना का उपयोग दिल्ली में विद्रोह का दमन करने के लिए किया और इसमें उन्हें सफलता भी मिली। विद्रोह का दमन करने के बाद डोगरा सेना जम्मू लौट आई। ब्रिटिश सरकार ने महाराजा रणवीर सिंह द्वारा दी गई सैनिक सहायता की न केवल प्रशंसा ही की अपितु महाराजा को सी. ओ.एस. आई. उपाधि से सम्मानित भी किया।

महाराजा रणवीर सिंह को सिंहासन पर बैठे अभी कुछ महीने ही हुए थे, उन की हत्या का एक षड्यंत्र मियां जवाहर सिंह ने मियां हट्टू का सहयोग प्रास करके रचा। मियां जवाहर सिंह महाराजा गुलाब सिंह के बड़े भाई राजा ध्यान सिंह का बड़ा बेटा था। वह अपनी पैतृक जागीर पुंछ के अतिरिक्त अपने चाचा की जागीर रामनगर और भाई की जागीर जसरोटा के अतिरिक्त जम्मू राज्य में भी अपना हिस्सा चाहता था। महाराजा गुलाब

सिंह ने अपने बड़े भाई ध्यान सिंह के बेटों मियां जवाहर सिंह और मियां मोती सिंह को पुंछ जागीर के अतिरिक्त कुछ और इलाका भी देने की इच्छा व्यक्त की किन्तु मियां जवाहर सिंह इससे सन्तुष्ट न हुआ और उसने महाराजा गुलाब सिंह से अपना हिस्सा प्राप्त करने के लिए लाहौर में स्थित ब्रिटिश रेज़िडेट मिस्टर कुरे की अदालत में 1847 में प्रार्थना-पत्र प्रस्तुत किया किन्तु रेज़िडेट ने उसके प्रार्थना-पत्र को अस्वीकार किया। इससे मियां जोरावर सिंह महाराजा गुलाबसिंह और उसके पुत्र मियां रणवीर सिंह पर कुपित हुआ और द्वेष वश रणवीर सिंह को हानि पहुंचाने के लिए गुप्त रूप से योजनाएं बनाने लगा। महाराजा गुलाब सिंह की दासी से भी एक पुत्र था जिसका नाम मियां हट्टू था। वह भी बहुत महत्वाकांक्षी था। वह रणवीर सिंह की हत्या करवाकर जम्मू कश्मीर की राजगद्दी पर अधिकार करना चाहता था। अतः मियां जवाहर सिंह और मियां हट्टू ने परस्पर विचार-विमर्श करके महाराजा की हत्या की योजना बनाई। महाराजा रणवीर सिंह को आखेट का बहुत शौक था। 2 अगस्त 1857 को उन्होंने आखेट पर जाने का कार्यक्रम तैयार किया। मियां हट्टू और मियां जवाहर सिंह को इस कार्यक्रम की सूचना मिल गई। उन्होंने उस जंगल में अपने विश्वसनीय सैनिक झाड़ियों में छुपा दिये और उन्हें आदेश दिया कि वे महाराजा को देखते ही उस पर गोली चला दें। महाराजा रणवीर सिंह उस दिन आखेट खेलने के लिए जैसे ही मंच पर चढ़े, मियां हट्टू के एक आदमी गुलाबु लंगेह ने उस पर गोली चला दी। किन्तु सौभाग्य से महाराजा बच गए। उसी दिन गुमट द्वार के निकट महाराजा पर एक अन्य विद्रोही ने गोली चलाई किन्तु वह गोली महाराजा को न लगी और वे बाल-बाल बच गए। अपने उद्देश्य में सफल न होने के बावजूद षड्यंत्रकारी निराश न हुए और महाराजा की हत्या का एक बार पुनः प्रयास करने के लिए उन्होंने जम्मू में एक गुप्त रूप से मंत्रणा की। महाराजा के कोषाधिकारी गणेश भलवाल को इस गुप्त मंत्रणा की जैसे ही सूचना मिली उसने बजीर लाभजू को इसकी जानकारी दी। दोंनों महाराजा के पास गए और उन्हें नये षड्यंत्र के बारे में सूचित किया। महाराजा ने सिपाही भेज कर उन्हें पकड़कर बन्दी बना लिया। किन्तु मियां जवाहर सिंह फिर भी बच निकला और वह रावी नदी पार करके पंजाब में चला गया। षड्यंत्रकारियों पर राजद्रोह का मुकद्दमा चला और 10 फरवरी 1860 को 45 लोगों को दंडित किया गया। शादी खान चिब और गुलाबु लंगेह को फाँसी दी गई। मियां हट्टू को आजीवन कारावास का दंड मिला और उसे गजपत के दुर्ग में बन्दी बना कर भेज दिया। शेष लोगों को विभिन्न प्रकार के दण्ड दिये गए और उनमें कुछ को पोगल दुर्ग में कुछ को सलाल दुर्ग में और कुछ को गजपत दुर्ग में बन्दी के रूप में रखा गया।

इस षड्यंत्र के बाद मियां जवाहर सिंह का पुंछ जागीर पर स्वामित्व समाप्त कर दिया गया और महाराजा ने जवाहर सिंह के छोटे भाई मियां मोती सिंह को इस जागीर के

पूर्ण अधिकार सौंप दिये। मियां जवाहर सिंह ने अन्ततः ब्रिटिश सरकार से एक लाख रुपये की पेन्शन इस शर्त पर प्राप्त की कि भविष्य में वह रियासत जम्मू कश्मीर में कभी प्रवेश नहीं करेगा। मियां जवाहर सिंह अम्बाला की और चला गया और फिर वहीं बस गया।

पारिवारिक षड्ंयत्रों से बाहर निकलने के बाद महाराजा रणवीर सिंह ने रियासत जम्मू व कश्मीर में प्रशासनिक सुधारों की ओर ध्यान दिया। उन्होंने इस रियासत की आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए भी कई सराहनीय पग उठाये। महाराजा ने सामाजिक और न्यायिक क्षेत्र में भी कई महत्त्वपूर्ण पग उठाये। महाराजा ने प्रशासन में सुधार लाने के लिए जो महत्त्वपूर्ण कदम उठाये उनका विवरण इस प्रकार है-

महाराजा ने प्रशासन को सुचारू रुप से चलाने के लिए तीन मुख्य विभाग बनाये जिनके नाम थे-दफ्तर-ए निज़ामत अर्थात् नागरिक प्रशासन विभाग, दफ्तर-ए-दीवानी अर्थात् राजस्व विभाग, तथा दफ्तर-ए जंगी अर्थात् युद्ध-विभाग। इन तीनों विभागों पर नियंत्रण रखने के लिए महाराजा ने प्रधानमंत्री को नियुक्त किया। आरम्भ में महाराजा के दरबार में ज्वाला सहाय ही प्रधान मंत्री रहा किन्तु जब उसे पक्षाघात हुआ तो महाराजा ने उसके पुत्र कृपाराम को अपना दीवान बनाया। महाराजा ने प्रशासन में कुशलता लाने के लिए केन्द्रीय सत्ता का विकेन्द्रीयकरण किया तथा एक मंत्री मंडल का गठन भी किया। इस मंत्री मंडल में दीवान अनन्त राम को प्रधान मंत्री नियुक्त किया। मंत्री मंडल में जिन अन्य मंत्रियों को नियुक्त किया उनके नाम थें बावू नीलाम्बर मुकर्जी, बजीर पुन्नु तथा शेख वाहव-द्दीन। प्रधानमंत्री को ब्रिटिश सरकार के साथ राजनैतिक तथा कूटनीतिक सम्बन्ध बनाये रखने तथा सीमा सम्बन्धी कार्य सौंपे गये। बावू नीलाम्बर मुकर्जी को राजस्व तथा वितविभाग तथा शेख वाहव-द्दीन को पुलिस, जेल, खनिज, वाणिज्य, संचार तथा सड़क और भवन निर्माण के विभाग सौंपे गये। मियां प्रताप सिंह को भी इस मंत्रिमंडल के ऊपर इस उद्देश्य से रखा गया कि उन्हें भी प्रशासन का समुचित अनुभव हो। महाराजा रणवीर सिंह के समय में प्रधान मंत्री का पद पैतृक ही रहा क्योंकि ज्वाला सहाय के बाद उसका पुत्र कृपाराम प्रधान मंत्री बना और कृपाराम की मृत्यु 23 सितम्बर 1876 को हुई तो उसका पुत्र अनन्तराम प्रधान मंत्री नियुक्त किया गया।

महाराजा ने अपने राज्य को भी मुख्य रूप से दो प्रान्तों कश्मीर और जम्मू में विभाजित किया। दोनों प्रान्तों का प्रशासन चलाने का काम उसने हाकम-ए- आला अर्थात् राज्यपालों को सौंपा। कश्मीर प्रान्त का मुख्यालय श्रीनगर में रखा और जम्मू प्रान्त का मुख्यालय जम्मू में बनाया गया। लद्दाख और बलतिस्तान का क्षेत्र महाराजा ने जम्मू के हाकम-ए-आला के अधीन रखा। महाराजा ने कश्मीर और जम्मू के हाकम-ए-आला को सलाह देने के लिए जम्मू और कश्मीर में अलग-अलग परामर्श समितियों का गठन

भी किया। हाकम-ए-आला के लिए यह आदेश था कि वह परामर्श समितियों से विचार-विनिमय करने के बाद ही महत्त्वपूर्ण निर्णय लें। कश्मीर में महाराजा ने जो परामर्श समिति नियुक्त की थी उसके सदस्यों के नाम सूरजवाल, हीरानन्द, अकबर बेग, मिर्जा मोहिउद्दीन, और ख्वाजा सना-उल्ला खान थे।

महाराजा ने प्रान्तों का प्रशासन चलाने के लिए बजारतों अर्थात् जिलों का गठन किया। जिलों को पुनः तहसीलों में और तहसीलों को परगनों में बांटा। इस प्रकार महाराजा के समय में कश्मीर प्रान्त के छह जिले थे जिन के नाम शहर ए-खास अर्थात् श्रीनगर, अनन्त नाग, शोपेहआं, पट्टना कामराज और मुज्जफराबाद थे। महाराजा के शासनकाल में जम्मू प्रान्त के सात जिले बनाये गये जिनके नाम थे-जम्मू,-जसरोटा, रामनगर, उधमपुर, रियासी, नौशहरा और मनावर। इसी प्रकार लद्दाख, बलतिस्तान और गिलगित जिलों को भी परगनों में बांटा गया। उधमपुर जिला का क्षेत्रफल अत्यांधिक था और एक अधिकारी के लिए पूरी बजारत का काम चलाना कठिन था, अतः सन् 1877 में महाराजा ने जिला उधमपुर के इलाके को दो जिलों में विभाजित किया जिला उधमपुर और जिला किश्तवाड़। पुंछ और चनैनी की जागीरों की प्रशासन वहां के जागीरदारों को ही सौंपा गया। महाराजा ने उनके प्रशासन कार्य में हस्तक्षेप करना उचित नहीं समझा।

महाराजा रणवीर सिंह रियासत जम्मू कश्मीर में ऐश्वर्य और समृद्धि का दौर लाना चाहते थे। यह तभी सम्भव था यदि रियासत में स्थायी शान्ति रहे। शांति स्थापना के लिए पुलिस-विभाग अति अनिवार्य है। अतः महाराजा ने प्रशासन में सुधार लाने के बाद पुलिसविभाग का भी पुनर्गठन किया। महाराजा ने पुलिस-विभाग को उसी ढंग से व्यवस्थित करने का प्रयास किया जिस पद्धति से ब्रिटिश सरकार ने पंजाब में किया था।

महाराजा ने जम्मू कश्मीर राज्य के लिए पुलिस विभाग के प्रमुख के लिए अधीक्षक का पद रखा जिसे 'आफिसर जनरल पुलीस' कहा जाता था। प्रत्येक जिला में पुलिस इन्स्पेक्टर तथा डिप्टी इन्स्पैक्टर नियुक्त किये जो अपने-अपने जिले के अन्तर्गत कार्यरत थानों का निरीक्षण भी करते थे। थानों के अन्तर्गत चौकियां होती थीं और एक चौकी में चार सिपाही और एक अधिकारी होता था। महाराजा रणवीर सिंह के समय पुलीस विभाग में 1656 व्यक्ति कार्य करते थे जिन में एक अधीक्षक दो उपअधीक्षक, 6 सहायक अधीक्षक, 14 इस्पैक्टर, 186 सरजैंट और 1226 सिपाही थे। महाराजा द्वारा पुलिस विभाग में किये गए सुधारों का परिणाम बहुत ही सुखद रहा तथा आम जनता को असामाजिक तत्वों से राहत मिली।

महाराजा ने अपने शासनकाल में जेल व्यवस्था में भी कई सुधार किये। उनके समय में एक जेल श्रीनगर में और दूसरी जेल जम्मू में थी। इन जेलों में वर्ष 1880-81

में 1,962 कैदी बन्द थे। महाराजा ने जेल के कैदियों के सुधार के लिए उन्हें शिल्प कला का प्रशिक्षण देने की व्यवस्था की। इसका परिणाम यह निकला कि जेल से मुक्त होने के बाद अधिकांश अपराधी शिल्पकार बन गए और वे सीखी हुई कला का उपयोग करके स्वावलम्बी बन गए।

महाराजा रणवीर सिंह ने अपनी प्रजा के स्वास्थ्य का ध्यान रखने के लिए स्वास्थ्य विभाग की भी स्थापना की। इस विभाग के अन्तर्गत 27 हस्पताल काम करते थे। महाराजा ने आयुर्वैदिक यूनानी चिकित्सा को भी समुचित प्रोत्साहन दिया। उनके आदेश पर आयुर्वेद की कई पुस्तकों का अनुवाद डोगरी में भी करवाया गया।

महाराजा ने आय-व्यय का हिसाब रखने के लिए रियासत में वित्त-विभाग की भी स्थापना की और पंडित रामकृष्ण को इसका कन्ट्रोलर नियुक्त किया। बाद में महाराजा ने रामकृष्ण को पदमुक्त करके सैय्यद बजीर अली को इस पद पर नियुक्त किया। महाराजा ने वित्तविभाग को परम्परागत वित्त सम्बन्धी अनियमितताओं में सुधार लाने का भी भरसक प्रयास किया। महाराजा ने यह यत्न भी किया कि राज्य के कर्मचारियों को प्रतिमास राजकोष से वेतन नियमित रूप से मिले। इससे पूर्व कर्मचारियों को कई-कई मास तक वेतन पाने के लिए प्रतीक्षा करनी पड़ती थी। महाराजा के आदेश पर रियासत में वित्त से सम्बन्धित जो सुधार हुए उसका प्रभाव प्रजा पर भी साकारात्मक पड़ा।

महाराजा ने राजकीय कर्मचारियों को भी कई अन्य सुविधाएं भी दीं। उन्हें छुट्टियों सम्बन्धी कई रियायतें दी गईं। सरकार ने ईद-उल फितर, ईद उल जूहा, शहब-इ कदर शब-इ बरात, बैसाखी, निर्जल-एकादशी, लोहड़ी, दीपावली, रक्षा बन्धन, रामनवमी, बसंत पंचमी, जन्म-अष्टमी, माघी, शिवरात्रि, अनन्त चतुर्दशी और होली पर्वों पर सरकारी अवकाश घोषित किया।

वित्त विभाग में सुधार लाने के साथ-साथ महाराजा ने विधि विभाग में भी असाधारण परिवर्तन लाये। महाराजा के सिंहासन पर बैठने से पूर्व रियासत जम्मू व कश्मीर में कोई निश्चित न्याय व्यवस्था नहीं थी। अधिकारी छोटा सा अपराध करने वाले व्यक्ति के हाथ या बाजू कटवा देते थे। न्याय करने वाले अधिकारी भी प्राय: निरक्षर होते थे और उनके मन में जो आता वे वैसा ही फैसला सुना देते। गांवो के लोगों को अपील करने का मौका ही नहीं मिलता था। महाराजा रणवीर सिंह ने इस परम्पारित विधि व्यवस्था के स्थान पर विधि संहिता के अनुसार न्याय व्यवस्था का प्रचलन किया। उन्होंने 'रणवीर दंडविधि' ज़ाबता-ए दीवानी, तथा जंगी रणवीर दंडविधि जैसी कानून की पुस्तकें तैयार करवाई ओर इन्हें न्यायालयों में लागू करवाया। न्याय सम्बन्धी पुस्तकें प्रकाशित करने का किसी भी डोगरा राजा का यह पहला प्रयास था।

महाराजा रणवीर सिंह ने अपनी प्रजा को न्याय दिलवाने के लिए न्याय व्यवस्था में जो सुधार लाये उनमें सब से बड़ी उपलब्धि अदालत उल-आला (उच्च-न्याय) थी। इस न्यायालय की स्थापना महाराजा के आदेश पर 1877 ई० में हुई। तत्पश्चात् महाराजा ने सन् 1880 ई० में जूरी प्रणाली का प्रचलन भी आरम्भ करवाया। इस प्रणाली के अन्तर्गत जम्मू के न्यायालय में एक न्यायाधीश के अतिरिक्त दो जूरिस्ट नियुक्त किये गए जिन में एक हिन्दू और दूसरा मुसलमान था। इसी प्रकार श्रीनगर में भी न्यायाधीश के इलावा चार जूरिस्ट नियुक्त हुए जिन में तीन मुसलमान और एक कश्मीरी पंडित था। सन् 1885 में दो सदर अदालतें बनाई गईं जिन में एक श्रीनगर में और दूसरी जम्मू में स्थापित की गई। सदर-अदालतों के न्यायाधीश प्रान्तीय गर्वनरों के अधीन रखे गए। किन्तु राजस्व के मामले हाकम-ए आलिया (गर्वनर) को सौंपे गए।

महाराजा के शासनकाल में प्रान्त के गर्वनर को हाकम-ए आलिया कहते थे और अपने प्रान्त में स्थापित सदर अदालत के काम को वह भी देखता था। और उसके आदेश का पालन उसके अधीन अदालतें करती थीं। जिला के प्रशासक को बजीर-ए-बंजारत कहते थे। उसके अधीन जिला की अदालतें होती थी। जम्मू प्रान्त में ऐसी अदालतें जम्मू, जसरोटा, रामनगर, उधमपुर, रियासी, नौशहरा और मनावर में स्थापित थीं। जिला के अधीन तहसील अदालतें होती थी। जम्मू जिला में चार तहसील अदालतें थी, जसरोटा में दो, राम नगर में चार, उधमपुर मे छह, रियासी में दो नौशहरा में तीन और मनावर में भी तीन तहसील अदालतें थीं।

रियासत में कानून व्यवस्था पर दृष्टि रखने और नये कानून बनाने, बने हुए कानून में संशोधन करने के लिए महाराजा ने विधि-सचिव की भी नियुक्ति की। उस समय रियासत में एक मिश्रित न्यायालय भी था जिस के न्यायाधीश अंग्रेज और भारतीय थे। यह न्यायालय मध्य-एशिया तथा ब्रिटिश राज्य के नागरिकों के मध्य पैदा हुए व्यापार सम्बन्धी विवाद निपटाता था। इन सबसे ऊपर महाराजा का अपना दरबार था। यदि कोई प्रार्थी किसी भी न्यायालय से सन्तुष्ट न होता तो वह महाराजा के दरबार में पेश होकर अपनी बात कह सकता था और महाराजा उसकी बात ध्यान से सुनता भी था। महाराजा यह पूरा प्रयास करते थे कि उनकी प्रजा का कोई भी व्यक्ति न्याय से वंचित न रहे।

महाराजा रणवीर सिंह यातायात व्यवस्था के प्रति भी जागरुक थे। जब वे सिंहासन पर बैठे उस समय आने-जाने के लिए ऊबड़-खाबड़ घोड़ों और खच्चरों के लिए ही कच्ची सड़कें थी। रियासत में कोई भी मोटर-रोड़ नहीं था। श्रीनगर पहुंचने के लिए पांच मार्ग थे। किन्तु उनकी स्थिति अच्छी नहीं थी। अंग्रेजी सरकार ने रावलपिण्डी तक जब रेल सेवा आरम्भ की तो रावलपिण्डी से श्रीनगर का मार्ग बहुत प्रचलित हो गया।

महाराजा को भी यह मार्ग पसंद था। महाराजा ने पंजाब सरकार से बातचीत करके सबसे पहले जेहलम नदी पर कोहाला स्थान पर पुल बनवाया। इस पुल पर जो व्यय हुआ महाराजा ने उस का आधा भाग अपने कोष से दिया। तदुपरान्त महाराजा ने एक अंग्रेज इन्जीनियर को कोहाला से बारामूला तक मोटर रोड बनाने का काम सन् 1881 में सौंपा। किन्तु यह सड़क दस वर्ष के बाद पूर्ण हुई।

महाराजा ने जम्मू से श्रीनगर तक सड़क निर्माण का काम भी आरम्भ करवाया। इस काम में सब से बड़ी बाधा रामबन में चन्द्रभागा नदी पर पुल बांधने की थी। किन्तु स्थानीय इन्जीनियरों ने जिला रियासी से लोहा निकाल कर इस पुल का निर्माण भी कर दिया। किन्तु यह सड़क महाराजा की निजी सड़क मानी जाती थी और उनकी आज्ञा प्राप्त किये बिना कोई भी व्यक्ति इसका उपयोग नहीं कर सकता था। महाराजा ने प्रिंस आफ बेल्स के जम्मू आगमन के अवसर पर सुचेतगढ़ से जम्मू तक पक्की सड़क का निर्माण करवाया। इसी प्रकार महाराजा ने श्रीनगर से गिलगित जाने वाली सड़क की भी मुरम्मत करवाई तथा भिम्बर से श्रीनगर जाने वाली सड़क को भी चौड़ा करवाया। महाराजा के शासनकाल में कई नये पुल भी बने जिससे यातायात में पर्याप्त वृद्धि हुई। महाराजा के प्रयास से सैकड़ों की संख्या में विदेशी पर्यटक रियासत में आये। इससे नाविकों को काम मिल गया और दुकानदारों और व्यापारियों का व्यवसाय भी चमका।

महाराजा गुलाब सिंह के समय में डाक प्रणाली का प्रचलन तो हो गया था किन्तु इसमें समय का अपव्यय बहुत होता था। महाराजा ने जम्मू से श्रीनगर डाक पहुंचाने के लिए 75 धावक नियुक्त किये थे फिर भी डाक पहुंचने में तीन से चार दिन लग ही जाते थे। किन्तु महाराजा रणवीर सिंह ने ऐसी व्यवस्था की कि जम्मू की डाक कश्मीर में 36 घंटों में पहुँचने लगी। महाराजा ने पंजाब के ले. जनरल से डाक प्रणाली में सुधार लाने के लिए सहयोग माँगा। ले० जनरल ने जो सुझाव भेजे उन को महाराजा ने क्रियान्वित किया और 1866 के बाद जम्मू श्रीनगर, मुज्जफराबाद गिलगित और अस्कर्दू में नये डाक घर खुल गए यहां नियमित रूप से काम होने लगा। सन् 1867 में श्रीनगर में ब्रिटिश पर्यटकों के लिए ग्रीष्मकालीन एक अलग इम्पीरियल पोस्ट आफिस खुला और इसी प्रकार जून 1875 में लेह में भी डाक घर खुल गया। मार्च 1866 में महाराजा ने अपनी अलग टिकटें छपवाई जिन की कीमत दो पैसे एक आना और चार आना थी। मनी आर्डर भेजने की प्रणाली रियासत में 1882 से आरम्भ की गई और इसी प्रकार पार्सल और समाचार पत्र डाक द्वारा भेजने की भी व्यवस्था की गई।

सन् 1878 में रियासत में तार भेजने की व्यवस्था भी हो गई। सबसे पहले तार संचालन का कार्य श्रीनगर से गिलगित के लिए सैन्य दृष्टि से किया गया। बाद में अस्कर्दू को भी तार से जोड़ लिया गया। बहुत शीघ्र ही उधमपुर बनिहाल और बैरी नाग में भी

तार घर खुल गए और इस प्रकार अति द्रुत गति से महत्त्वपूर्ण सन्देश एक स्थान से दूसरे स्थान तक प्रेषित किये जाने लगे।

महाराजा रणवीर सिंह ने अपनी रियासत में भूमि सुधार की दिशा में भी उल्लेखनीय कार्य किया। वे जब सिंहासनारूढ़ हुए उस समय कृषकों से राजस्व उगहाने के कोई निश्चित नियम नहीं थे। सरकारी अधिकारी किसानों से मालिया एकत्रित करते समय उन्हें बहुत तंग करते थे। वे जितना धन अथवा अनाज गांवों से एकत्रित करते उतना खातों में जमा नहीं करते और किसानों के नाम बाकी निकाल कर रखते। इससे किसानों की आर्थिक दशा बड़ी ही शोचनीय थी। उन दिनों राजस्व इकट्ठा करने के नियम जम्मू में अलग कश्मीर में अलग और लद्दाख में अलग थे। किसान की ज़मीन भी कदमों से नापी जाती थी। जरीब से नापने की प्रथा उन दिनों रियासत में नहीं थी।

महाराजा ने राजस्व उगहाने में व्याप्त त्रुट्टियों का गहन अध्ययन किया और अन्ततः वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि बिना भूमि सुधार किये इन त्रुटियों को दूर नहीं किया जा सकता। अतः उन्होंने बन्दोवस्त अराज़ी विभाग की स्थापना की जिसका काम रियासत की भूमि को ज़रीब से नापना और भूमि की कोटि निश्चित करना था। रियासत के राजस्व विभाग के पास इस कार्य को सम्पन्न करने के लिए प्रशिक्षित शज़रा-कश नहीं थे। अतः महाराजा ने पंजाब से ऐसे बीस शज़राकशों की सेवायें अधिक वेतन देकर प्राप्त कीं ताकि वे रियासत के पटवारियों को इस काम में प्रशिक्षण दें सकें। महाराजा ने सन् 1883 ई० में बन्दोवस्त अराज़ी विभाग का पुनः गठन किया और सैय्यद कासिम अली को बन्दोवस्त अधिकारी नियुक्त किया। बन्दोवस्त अराज़ी विभाग ने रियासत की भूमि की पैमाइश पहली बार की। इससे भूमि सम्बन्धी कई झगड़े निपटे जिन से किसानों को राहत मिली। महाराजा रणवीर ने भूमि सुधारों के साथ-साथ अधिक अन्न उत्पादन के लिए सिंचाई व्यवस्था की ओर भी ध्यान दिया। उन्होंने गिलगित में नाला बन्जी से निकाली गई छोटी नहर की मुरम्मत करवाई और उसका पानी सिंचाई के लिये प्रयोग किया। इसी प्रकार नाला चामू से निकाली गई नहर को उन्होंने और चौड़ा करवाया जिससे पानी की मात्रा अधिक प्राप्त होने से खेतों की सिंचाई सुगम हो गई। महाराजा ने जम्मू प्रान्त में भी सिंचाई के लिए एक बहुत बड़ी परियोजना का प्रारूप अंग्रेज इन्जीनियरों से तैयार करवाया। अंग्रेज इन्जीनियर डब्लयू एच जान्सन और जान डायर के निरीक्षण में रावी और उज्झ नदियों से नहरें निकाली गईं जिससे कठुआ जिला का बहुत बड़ा क्षेत्र सिंचाई के अन्तर्गत आ गया। महाराजा के आदेश से अंग्रेज इन्जीनियरों ने उधमपुर के लिए तवी नदी से एक नहर निकालने का काम आरम्भ किया और इसी प्रकार एक बहुत बड़ी नहर चिनाब नदी से अखनूर के स्थान से भी निकाली गई जिसे रणवीर नहर के नाम से अभिहित किया गया। इसके अतिरिक्त पर्वतीय क्षेत्र में भी कई छोटी-छोटी कूहलें भी

निकाली गईं जिससे उस क्षेत्र में सिंचाई सम्भव हो सकी। महाराजा के इन प्रयासों से रियासत में खाद्यान्न की समस्या कुछ सीमा तक हल हो गई।

महाराजा ने रियासत में हस्तशिल्प और उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन देने के लिए भी कई गतिशील पग उठाये। उन्होंने घरेलू उद्योग को विकसित करने के लिए रेशम के कीड़ों का आयात चीन और जापान से भी किया। इसी प्रकार सन् 1873 में चीन से और 1875 में जापान से शहतूत के पौधे भी मंगवा कर किसानों में इस आशय से बांटे कि बढ़िया पत्तों से बढ़िया रेशम के रेशे प्राप्त किये जा सकें। महाराजा ने इस शिल्प में दीक्षित करने के लिए रियासत के 964 व्यक्तियों को प्रशिक्षण भी दिलवाया। रियासत में जब रेशम के कीड़े पालने में बढ़ोत्तरी हुई और रेशम के रेशों का उत्पादन बढ़ने लगा तो महाराजा ने श्रीनगर में एक रेशम की कारखाना स्थापित किया। रेशम का एक केन्द्र जम्मू में भी बावू गोविन्दराम की देख-रेख में भी खोला गया। महाराजा ने शाल उद्योग की ओर भी विशेष ध्यान दिया। वैसे भी कश्मीर का शाल-उद्योग सैकड़ों वर्षों से कश्मीर घाटी का मुख्य उद्योग बन चुका था और कश्मीर के शाल विश्व मंडियों में आकर्षण का विशेष केन्द्र थे। किन्तु महाराजा रणवीर सिंह के समय में भी शाल-बुनकरों की आर्थिक स्थिति बहुत ही दयनीय थी। व्यापारी और सरकारी अधिकारी उन का शोषण करते थे। बुनकरों पर इतने अधिक कर लगाये जाते थे कि उन की कमाई उन करों में ही चली जाती थी। महाराजा ने उनके दु:ख को समझा और उन पर लगाये गये सरकारी टैक्स घटा दिये। महाराजा के प्रयास से लंदन में कश्मीर के शालों की बिक्री के लिए एक केन्द्र खुल गया। लंदन की मंडियों में कश्मीरी शालों का फ्रांस बहुत बड़ा ग्राहक बना। वह अस्सी प्रतिशत कश्मीरी शाल वहां से खरीदने लगा। अमेरिका, इटली, रूस आदि देशों में भी कश्मीरी शालों की बिक्री होने लगी। इस प्रकार यह उद्योग रियासत में बहुत तीव्रगति से पनपने लगा। किन्तु 1870 में फ्रांस और जर्मनी के मध्य जब युद्ध छिड़ गया तो उससे शाल-उद्योग पर बड़ा ही दुष्प्रभाव पड़ा। इससे हज़ारों शाल बुनकर बेकार हो गए। महाराजा ने शाल उद्योग को पुनर्जीवित करने के लिए इस उद्योग पर लगाये गये कर बहुत घटा दिये किन्तु फिर भी यह उद्योग पुनः जीवित न हो सका। महाराजा ने विदेशों में भेजने के लिए 'रणवीरी' और 'महाराजी' नाम से शालों के दो नये नमूने निर्यात के लिए तैयार करवाये, इससे यह उद्योग पुनः चलने लगा। महाराजा ने फ्रांस के विशेषज्ञों को रियासत में दरियाँ बुनने का उद्योग चलाने के लिए नियुक्त किया। इसी प्रकार हाथ से बने कागज़ के उद्योग को भी महाराजा ने समुचित प्रोत्साहन दिया। महाराजा ने नमदे गब्बे, पेपर माशी जैसे घरेलू उद्योगों के विकास के लिये विशेष अधिकारी नियुक्त किये। महाराजा ने जम्मू में बीस नवम्बर से हस्तकला प्रदर्शनी का आयोजन भी प्रति-वर्ष करवाया इससे इन उद्योगों में काम करने वाले कारीगरों को नया उत्साह मिला।

महाराजा ने सन् 1862 में इंगलैंड के प्रसिद्ध भूगर्भ शास्त्री फेडरिक डयूक को रियासत में खनिज धातुओं की तलाश का काम सौंपा । डयूक ने 1872 तक 21 स्थानों का पता लगाया यहां खनिज धातुओं के मिलने की सम्भावना थी। रियासी तहसीलं के कोटला स्थान से लोहा और कोयला मिला। कश्मीर घाटी में सोज कोठार में लोहे की धातु के भंडार मिले। इसी प्रकार रामनगर, नौशहरा, उधमपुर और लद्दाख में लोहे के भंडारों का पता चला। इसी प्रकार कोयला, ताम्बा, सूरमा आदि धातुओं के भी पर्याप्त भंडार उपलब्ध हुए जिन का प्रदर्शन 1864 में लाहौर में आयोजित एक प्रदर्शनी में किया गया। पाडर से नीलम भी मिला।

महाराजा रणवीर सिंह ने यातायात के लिए जब रावलपिंडी से श्रीनगर, जम्मू से श्रीनगर, स्यालकोट से श्रीनगर, भिम्बर से श्रीनगर, श्रीनगर से लेह तथा श्रीनगर से गिलगित की टट्टू सड़कों का निर्माण करवाया तो उसका परिणाम यह निकला कि रियासत में व्यापार और वाणिज्य में बढ़ोत्तरी हुई। महाराजा ने रियासत का व्यापार मध्य एशिया और ब्रिटिश भारत के प्रान्तों के साथ बढ़ाने के लिए आयात और निर्यात के करों में बहुत कमी कर दी। पहले जम्मू से कश्मीर को जो वस्तुएं भेजी जाती थीं उन पर भी कर लिया जाता था। किन्तु बाद में महाराजा के आदेश पर यह टैक्स बन्द कर दिया और केवल सीमा शुल्क ही लगाया । महाराजा के समय में रियासत का अधिकांश व्यापार रावलपिंडी स्यालकोट और गुजरात के साथ ही होता था। रियासत का माल मध्य एशिया तक भी जाता था और मध्य एशिया का माल बिकने के लिए रियासत में भी आता था, यारकन्द, खुतान और तिब्बत के साथ रियासत के अच्छे व्यापारिक सम्बन्ध थे। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने महाराजा के साथ एक वाणिज्य संधि करके मध्य-एशिया का व्यापार अपने हाथ में ले लिया । इससे रियासत के व्यापार को गहरा धक्का लगा।

महाराजा ने रियासत में विकास कार्यों पर बहुत अधिक धन खर्च किया। अत: उन्होंने राज्य का राजस्व बढ़ाने का भी यत्न किया। इसके लिए उन्होंने कई प्रकार के कर लगाये और करों को व्यवस्थित करने के लिए उन्होंने कर उगहाने के नियम भी तैयार करवा कर उन्हें प्रकाशित भी करवाया। राज्य की आय का सब से बड़ा साधन कृषि उत्पादन से प्राप्त होने वाला कर था। शाल बुनकरों पर भी भारी टैक्स थे जिन्हें महाराजा ने बाद में घटा दिया। वस्तुओं के आयात और निर्यात पर भी कस्टम ड्यूटी ली जाती थी। जिससे राज्य को पर्याप्त राजस्व प्राप्त होता था। लोगों से राहगिरी टैक्स, नमक टैक्स, मंडी धरत, आदि कर वसूल किया जाता था। प्रत्येक कृषक, शिल्पकार, मजदूर तथा व्यापारी को टैक्स किसी न किसी रूप में देना ही पड़ता था। दूध, शहद आदि की बिक्री पर भी टैक्स था। किसानों को पशुचारन के लिए 'घासचराई' टैक्स भी देना पड़ता था। भेड़ और

बकरियां पालने पर भी टैक्स था। इसी प्रकार राज्य को जंगली फलों की बिक्री से, चिनार के पत्तों की बिक्री से भी आय उपलब्ध होती थी। कुछ धन अदालतों में टिकटों की बिक्री से और कुछ धन दोषियों को अदालत द्वारा किये गए जुर्माना से भी प्राप्त होता था।

सन् 1868 में सरकार की आय 54,94,718 और 1871-72 में 66,86,644 थी। इस प्रकार भारी करों से सरकार की आय में पर्याप्त बढ़ोत्तरी होती गई। महाराजा ने राजस्व बढ़ाने के लिए कई और उपाय भी प्रयोग मे लाये। उन्होंने कटड़ा, पौनी, रियासी, कोटली, आदि स्थानों में चाय के बाग लगवाये। कश्मीर में अंगूर का उत्पादन करने के लिए फ्रांस के विशेषज्ञ नियुक्त किये। अंगूर की जब पर्याप्त मात्रा में उत्पादन शुरू हो गया तो महाराजा ने अंगूर की शराब का कारखाना खोला । इस शराब का प्रदर्शन सन् 1880 में कलकत्ता की एक प्रदर्शनी में किया गया तो वहां इसे सब से बढ़िया शराब माना गया और स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। महाराजा ने इन के अतिरिक्त राजस्व बढ़ाने के लिए और भी कई साधन जुटाये।

राजस्व से महाराजा को जो धन प्राप्त होता था उसका अधिकांश भाग सेना पर खर्च होता। शेष धन महाराजा लोकोपयोगी और निजी कार्यों पर व्यय करता। महाराजा के समय में रियासत की अपनी अलग करेन्सी थी। उस समय चाँदी की धातु से जो रुपया गढ़ा जाता था उसे चिक्की रुपया कहते थे। उसका बज़न आधा तोला होता था। उस पर J.H.S का चिह्न अंकित होता था। रुपये गढ़ने के लिए एक टकसाल श्रीनगर में और एक जम्मू में थी। उस समय राज्य में हीरा सिंह रूपया, नानक शाही रूपया, जाऊ रूपया, तथा ब्रिटिश रुपया का प्रचलन भी लोगों में था। किन्तु महाराजा ने अपने राज्य में केवल चिक्की रुपया और ब्रिटिश रुपया का प्रचलन होने दिया। चाँदी का काम करने वाले कुछ दुकानदारों ने नकली चिक्की रुपये भी बनाये। किन्तु सरकार ने ऐसे लोगों को ढूंढ़ निकाला और उन्हें दंड़ित किया। महाराजा ने पैसा का सिक्का भी चलाया। उनके समय में एक सौ के नोट भी छपे। एक चिक्की रुपये का ब्रिटिश भारत में मूल्य साठ-सत्तर पैसे के बराबर था। आम जनता ब्रिटिश रुपये को ही पसंद करती थी और इस का मूल्य अधिक होने से इसे डबल रुपया कहती थी।। महाराजा अपने कर्मचारियों के वेतन का भुगतान केवल चिक्की रुपयों से ही करता था।

महाराजा रणवीर सिंह रियासत जम्मू व कश्मीर के चाहे शासक थे फिर भी वे उच्चकोटि के समाज सुधारक भी थे। सामाजिक कुरीतियों का उन्हें परिज्ञान था और सिंहासन पर बैठते ही उन्होंने सब से पहले 14 अप्रैल 1859 को सती प्रथा को रोकने के लिए एक आज्ञा-पत्र निकाला। उन्होंने विधवा महिलाओं के भरण-पषण के लिए एक विशेष कोष स्थापित किया जिसमें उन्होंने अपनी ओर से एक लाख रुपये का दान

दिया। उन्होंने सरकारी कर्मचारियों और व्यापारियों से भी अपील की कि वे भी इस कोष के लिए यथा शक्ति दान दें। महाराजा ने निर्धन परिवार की कन्याओं के विवाह के लिए भी सरकारी तथा निजी सहायता प्रदान की। उन्होंने कन्या वध निषेध घोषित किया और राजपूत कबीलों के लोगों को समझाया कि वे नवजात कन्याओं को समाधि देने की प्रथा को बन्द करें। महाराजा ने अपनी दोनों कन्याओं का पालन-पोषण करके राजपूतों के लिए एक उदाहरण प्रस्तुत किया। उन्होंने गिलगित और दरदिस्तान में प्रचलित दास प्रथा का भी राजाज्ञा निकाल कर अन्त किया।

महाराजा ने पेय जल की समस्या की ओर भी ध्यान दिया। उनके शासन काल में जम्मू नगर में पानी के छह तालाब थे किन्तु गर्मियों में पानी की कमी महसूस होती थी। महाराजा ने तवी से जम्मू के लिए पानी का प्रबन्ध किया और स्थान-स्थान पर नलके लगवाये। महाराजा ने यात्रियों और पर्यटकों के लिए कोहाला श्रीनगर सड़क पर और भिम्बर श्रीनगर सड़क पर कई डाक बंगले बनवाये। उन्होंने जम्मू में प्रिंस आफ वेल्स के ठहरने के लिए भी एक भव्य-भवन निर्मित करवाया जिसे बाद में अजायब घर और आज असैम्बली भवन कहा जाता है।

महाराजा रणवीर सिंह ने यह महसूस कर लिया था कि जब तक उसकी रियासत के लोग शिक्षित नहीं हो जाते तब तक जम्मू व कश्मीर का सर्वांग विकास नहीं हो सकता। अतः महाराजा ने शिक्षा के प्रचार और प्रसार के लिए बहुत यत्न किया। उन्होंने अपने शासनकाल में 216 स्कूल और पाठशालाएँ खोलीं। ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली का पहला स्कूल श्रीनगर में 1868 में खुला। इसी प्रकार नगरों कस्बों और गाँवों में महाराजा ने महदरसे, पाठशालाएँ और स्कूल खोल कर रियासत में शिक्षा का प्रकाश फैलाया। महाराजा ने कला, शिल्प तथा चिकित्सा सम्बन्धी विषयों की पढ़ाई का भी अपनी रियासत में प्रबन्ध किया।

महाराजा रणवीर सिंह ने भारतीय शिक्षा प्रणाली के आधार पर रघुनाथ मंदिर जम्मू और गजाधर मन्दिर उत्तरवाहिनी में आवासीय पाठशालाएं खोलीं जिन में उन्होंने विद्यार्थियों के भोजन, वस्त्र आदि का निःशुल्क प्रबन्ध किया। इन पाठशालाओं के संचालन के लिए उन्होंने देश के प्रतिष्ठित विद्वानों और अध्यापकों को नियुक्त किया।

पाठशालाओं में विद्यार्थियों की बढ़ती भीड़ को दृष्टि में रख कर महाराजा ने रणवीरेश्वर मन्दिर जम्मू गजाधर मन्दिर जम्मू में भी पाठशालाएं खोल दीं। इन पाठशालाओं में 2100 छात्रों ने प्रवेश लिया। पाठशालाओं में विद्यार्थियों को वेद, व्याकरण, शास्त्र, गणित, आयुर्वेद, ज्योतिष, दर्शन आदि विषय पढ़ाये जाते थे। विद्यार्थियों की मासिक, अर्ध वार्षिक और वार्षिक परीक्षाएं होती थीं और जो विद्यार्थी परीक्षा उत्तीर्ण कर लेते

उन्हें प्रमाण-पत्र दिये जाते थे।

महाराजा ने उच्च-शिक्षा की ओर भी विशेष ध्यान दिया। 1882 मे पंजाब विश्वविद्यालय ने काम करना शुरू किया तो महाराजा ने इस विश्वविद्यालय के साथ अपने राज्य के दो महाविद्यालयों को जोड़ा जिन में एक जम्मू में था जिस में विद्यार्थियों की संख्या 400 थी और दूसरा श्रीनगर में था जिसमें विद्यार्थियों की संख्या 450 थी। महाराजा के समय में सभी विद्यार्थियों को निःशुल्क शिक्षा दी जाती थी और योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृत्तियां देने का प्रावधान भी था। महाराजा ने विद्यार्थियों की पुस्तकों को प्रकाशित करवाने के लिए विद्याविलास नामक एक प्रैस भी खोली। महाराजा ने अनुपलब्ध पांडुलिपियों का संग्रह करवाया और उन्हें प्रकाशित भी करवाया। उनके आदेश पर संस्कृत अरबी, फारसी, अंग्रेजी, कश्मीरी, लद्दाखी, डोगरी की अनेक पुस्तकों का प्रकाशन हुआ। उन्होंने रघुनाथ मन्दिर जम्मू में ही रणवीर सिंह पुस्कालय की स्थापना की जिसमें हज़ारों की संख्या में विभिन्न भाषाओं और विषयों की पुस्तकों का संकलन करवाया। बाद में यह पुस्तकालय शोध कार्य करने वाले विद्वानों के लिए आकर्षण का एक केन्द्र बना।

महाराजा के शासनकाल में विद्वानों की एक मंडली तैयार हो गई जिन में गणेश कौल शास्त्री, बावू नीलाम्बर मुकर्जी, पंडित हिम्मत राम राज़दान, डा. बख्शी राम, सैय्यद गुलाम जिलानी, मौलवी नासिर-उ-द्दीन, मौलवी गुलाम हुसैन तालिब, मिर्जा अकबर बेग तथा पंडित विश्वेश्वर के नाम उल्लेखनीय हैं। इन विद्वानों ने महाराजा के दरबार को ही न केवल आलोकित किया अपितु जम्मू कश्मीर में साहित्यिक सांस्कृतिक चेतना पैदा की। महाराजा की सेवा में पंडित ईशरकोल तथा पंडित जगधर जैसे विद्वान भी थे जिन्होंने क्रमशः फारसी पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद किया और वेदों का संकलन किया। महाराजा ने कश्मीरी पंडितों से अनुपलब्ध ग्रंथों को संकलित करने का काम पंडित राजा काका को सौंपा। यह राजा काका का ही प्रयास था कि उसे अथर्ववेद की कश्मीरी पांडुलिपि उपलब्ध हो गई। बाद में इस पांडुलिपि की चर्चा विश्व-भर के संस्कृत विद्वानों में हुई। धर्मशास्त्र से सम्बन्धित 642 ग्रंथों का संकलन रणवीर सिंह पुस्तकालय के लिये किया गया। इसके अतिरिक्त महाराजा ने विभिन्न भाषाओं की पुस्तकों का अनुवाद करवाने के लिए अनुवाद विभाग खोला। इस विभाग में एक सौ कर्मचारी नियुक्त थे। इसी प्रकार कई अन्य पुस्तकों का अनुवाद डोगरी भाषा में करवाया गया। इसी प्रकार महाभारत, भगवत-गीता और उपनिषदों का अनुवाद फारसी में हुआ। वास्तव में महाराजा का युग ज्ञान-विज्ञान का युग था।

महाराजा ने डोगरी भाषा और लिपि को फारसी के साथ-साथ सरकारी भाषा

घोषित किया। उनकी इच्छा थी कि कश्मीर में फारसी और जम्मू में डोगरी का उपयोग सभी कार्यालयों में हो। उन्होंने एक आदेश भी निकाला जिस के अन्तर्गत डोगरी में काम न करने वाले कर्मचारियों के वेतन में से दस प्रतिशत कटौती करने का प्रस्ताव था। महाराजा ने डोगरा लिपि में आवश्यक सुधार और संशोधन करवाये। डोगरी को लोकप्रिय बनाने के लिये श्री रघुनाथ जी के मन्दिर में डोगरी की कक्षाएं आरम्भ की गईं और डोगरी लिपि सीखने वालों को महाराजा की ओर से प्रोत्साहित और पुरस्कृत किया जाता रहा। महाराजा के आदेश से विद्यार्थियों के लिए डोगरी भाषा और लिपि में पाठ्य पुस्तकें प्रकाशित की गईं। ज्योतिषी विश्वेश्वर ने भी गणित की पुस्तक लीलावती का अनुवाद डोगरी में किया। यह पुस्तक 344 पृष्ठों पर आधारित थी। इसी प्रकार विश्वेश्वर ज्योतिषी ने डोगरी में व्यवहार गीता का भी सृजन किया जिस की पृष्ठ संख्या 630 थी। सरकारी कर्मचारियों के लिये इस पुस्तक का पठन अनिवार्य किया गया था।

महाराजा ने संस्कृत व्याकरण अमरकोश का डोगरी अनुवाद डोगरी भाषा के विद्यार्थियों के लिए करवाया । इसी प्रकार डोगरी में 'विद्यार्थियों की प्राथमिक पुस्तक' भी प्रकाशित करवाई ताकि छात्रों को डोगरी भाषा और लिपि का पूर्ण ज्ञान हो। महाराजा ने हिन्दी पुस्तकों को डोगरी लिपि में लिखवाने का भी प्रयास किया और 'रणवीर चिकित्सा सुधासार', इस ढंग की एक पुस्तक थी। 'रणवीर सैनिक दण्ड विधि' पुस्तक का प्रकाशन महाराजा ने डोगरी और फारसी दोनों भाषाओं में करवाया।

महाराजा ने जम्मू में 'विद्या विलास सभा' का गठन भी किया। इस सभा का उद्देश्य साहित्यिक और सांस्कृतिक विषयों पर परिचर्चा करना था। इस सभा के माननीय सदस्यों में पंडित वृजलाल, पंडित रास मोहन भट्टाचार्य, पंडित व्यास, पंडित आशानन्द, लाला गुलाबराय तथा पंडित विश्वम्भर ज्योतिषी थे। इस सभा की बैठक सप्ताह में एक बार महाराजा रणवीर सिंह के सभापतित्व में आयोजित होती थी।

महाराजा के शासन काल में पुस्तकों के प्रकाशनार्थ सम्भवतः 1858 में सरस्वती प्रैस जम्मू में लगाई गई। इसके बाद विद्याविलास प्रैस खुली। इस प्रैस ने डोगरी, हिन्दी और संस्कृत की अनेक पुस्तकें प्रकाशित कीं। तत्पश्चात् रघुनाथ प्रैस भी खुली और इसके बाद 'जंगी प्रैस' ने काम करना शुरू किया। एक प्रैस उत्तर वाहिनी में भी खोली गई जिसका नाम 'भारती प्रकाश प्रैस' था। इस के अतिरिक्त जम्मू में दो और मुद्रणालय खुले जिनके नाम क्रमशः दरबार प्रैस और कौंसल प्रैस थे। श्रीनगर मे पहली प्रैस 1870 में लगाई गई जिसका नाम तोफा-ए -कश्मीर प्रैस था।

जम्मू में मुद्रणालय खुलने के बाद पत्र-पत्रिकाओं का प्रकाशन भी आरम्भ हो गया। महाराजा के संरक्षण में 'विद्या-विलास' नाम से एक साप्ताहिक पत्र प्रकाशन होने

लगा। यह पत्र हिन्दी और उर्दू में छपता था। श्रीनगर से भी दो पत्र छपते थे एक का नाम तोफा-ए कश्मीर था। इसके सम्पादक मुन्शी हरसुखराय थे। दूसरा पत्र जम्मू गज़ट था और इसके सम्पादक मुन्शी निसार अली शोहरत थे। विद्या विलास पत्रिका का प्रकाशन 1867 में, तोफा-ए कश्मीर का प्रकाशन 1976 में और 'जम्मू गज़ट' का प्रकाशन 1884 से हुआ।

महाराजा रणवीर सिंह के राजकवि पंडित नील कंठ ने श्री रणवीर प्रकाश, श्री रणवीर रत्नमाला, कथा बावा जित्तो दी, मंडलीक कथा, त्रिकूटा कथा, कालू कहार कथा, डक्कोत्पति कथा, कीर्तिविलास आदि हिन्दी पुस्तकों का सृजन किया। इनके अतिरिक्त महाराजा के शासन काल में और भी कई साहित्यकारों ने विभिन्न भाषाओं में साहित्यिक रचनाएं सृजित कीं।

महाराजा ने रियासत के लोगों में साहित्यिक रुचि पैदा करने के लिए और रियासत में साहित्यिक तथा आध्यात्मिक वातावरण पैदा करने के लिए रघुनाथ मंदिर संग्राहलय में 6100 पुस्तकों का संकलन करवाया जिन में तीन हज़ार पुस्तकें प्रकाशित थीं। महाराजा के यत्न से रणवीर पुस्तकालय संस्कृत के विद्वानों के लिए एक विश्व-विख्यात केन्द्र बन गया।

डोगरा राजाओं में धर्म के नाम पर मन्दिर बनाना धर्मशालाओं का निर्माण करवाना, सदाव्रत लगवाना, तालाब बनवाना और कुएं खुदवाना एक परम्परा बन चुकी थी। महाराजा गुलाब सिंह ने भी सन् 1926 से धर्मार्थ काम शुरू किये थे। सुई-सिम्बली और भुर्ज में मन्दिर भी बनवाये थे। उन्होंने पांच लाख रुपये अपनी ओर से दान करके श्री रघुनाथ कोष भी स्थापित किया था। किन्तु महाराजा रणवीर सिंह ने जम्मू व कश्मीर का शासक बनते ही धर्मार्थ के कामों में बहुत रुचि दिखाई। उन्होंने 21 अक्तूबर 1884 को 'धर्मार्थ ट्रस्ट' की स्थापना की। इस ट्रस्ट का विधान बनाया और इस को वैध रूप दिया। महाराजा स्वयं इस ट्रस्ट के संरक्षक बने। इस ट्रस्ट का कार्य डोगरा राजाओं द्वारा निर्मित अथवा अधिकार में लिये गए मन्दिरों, धर्मशालाओं, पाठशालाओं की व्यवस्था करना इनसे सम्बन्धित सम्पत्ति की देख रेख करना, आय-व्यय का ब्यौरा तैयार करना, कर्मचारियों और अधिकारियों की नियुक्ति करना, तथा सदाव्रत आदि चलाना था। धर्मार्थ ट्रस्ट की ओर से कई लोकोपयोगी कार्य भी किये गये तथा नदियों पर पुल बनाये और सड़कों का निर्माण करवाया। धर्मार्थ की ओर से गौशालाएं भी खोली गई और साधु सन्तों के लिए सदा व्रतों की व्यवस्था भी की गई।

महाराजा रणवीर सिंह जम्मू को धर्म का केन्द्र बनाना चाहते थे। वे इसे कांशी का रूप देना चाहते थे। अतः उन्होंने जम्मू में कई मन्दिर बनवाये और अपने परिवार के

लोगों को भी मन्दिरों के निर्माण में उदारता से दान देने के लिए प्रेरित किया। महाराजा ने जम्मू नगर में सात मन्दिरों का निर्माण करवाया जिन में सबसे बड़ा मन्दिर रघुनाथ मन्दिर है। यह मन्दिर वास्तव में ग्यारह मन्दिरों का एक समूह है जिसमें ग्यारह लाख शालिग्राम स्थापित हैं। प्राय: सभी पौराणिक देवी देवताओं की मूर्तियें इस मन्दिर में स्थापित हैं। इस मन्दिर समूह के अतिरिक्त महाराजा ने जम्मू में श्री महालक्ष्मी जी का मन्दिर, गजाधर जी का मन्दिर, श्री शिव नाभ जी का मन्दिर, श्रीरणवीरेश्वर का मंदिर, अमुक्तेश्वर जी का मन्दिर, बाहुमें कालका जी का मन्दिर बनवाया। इनके अतिरिक्त महाराजा ने पुरमंडल और उत्तरवाहिनी में कई मन्दिर बनवाये। महाराजा ने श्री रघुनाथ जी का एक मन्दिर उधमपुर में, एक मन्दिर सुचेतगढ़ में, सतैनी में एक शिवालय, बामने दी बड़ी में एक ठाकुर द्वारा, बनवाया। इसी प्रकार श्री माता वैष्णोदेवी के दरबार में उन्होंने यात्रियों के ठहरने के लिए धर्मशालाएं बनवाईं।

महाराजा ने मन्दिरों के प्रांगणों का सौंदयीकरण करने के लिए वहां रम्य वाटिकायें विकसित करवाईं। मन्दिरों का प्रबन्ध चलाने के लिए कर्मचारी रखे। मन्दिरों में भक्ति संगीत गायन के लिए संगीतकार नियुक्त किये। मंदिरों के प्रांगणों में धार्मिक नाटकों के मंचन के लिए मंडप बनवाये। महाराज़ा की यह प्रबल इच्छा थी कि मन्दिर संस्कृति का केन्द्र बने, अत: उन्होंने मन्दिरों में पाठशालाएं खोलीं और औषधालयों की भी व्यवस्था की। मन्दिरों में सदाव्रत का आयोजन भी किया ताकि यात्री, विद्यार्थी और साधु-संतों को मुफ्त भोजन परोसा जाये। मन्दिरों की आय बढ़ाने के लिए महाराजा ने 35 गांवों का राजस्व मन्दिरों के नाम कर दिया।

महाराजा ने तपोवन, गया, बद्री-नारायण और काशी में धर्मशालाएं बनवाईं और वहां यात्रियों और साधुओं के लिए सदाव्रतों की व्यवस्था की । महाराजा ने काशी में जम्मू कश्मीर के यात्रियों के लिए एक हवेली भी बनवाई। महाराजा की ओर से काशी में एक पाठशाला भी खोली गई जिस में दो-सौ विद्यार्थियों की पढ़ाई की व्यवस्था थी। महाराज्ञा की बन्दराली रानी ने भी पुरानी मंडी जम्मू में एक भव्य रघुनाथ मन्दिर बनवाया और कटोचरानी ने गुम्मट के नीचे मन्दिर निर्मित किया। महाराजा के प्रधान मंत्री ज्वाला सहाय ने भी एक भव्य मंदिर बनवाया ज़िसे आज दीवान का मंदिर कहते हैं। जम्मू के इन्हीं मन्दिरों के कारण जम्मू को मन्दिरों का शहर कहा जाने लगा। महाराजा रणवीर सिंह ने जितने भी मंदिर बनवाये शैली की दृष्टि से उन्हें नागर शैली का माना गया है। उन दिनों उत्तर भारत में यही शैली प्रचलित थी। ये सभी मन्दिर प्राय: मिट्टी की ईंटों को पक्का कर बनवाये गए हैं। पत्थर की ईंटों के मन्दिर महाराजा के काल में प्राय: नहीं बने। मन्दिरों के भीतर जो मूर्तियें रखी गई हैं वे भी कला की दृष्टि से उच्च कोटि की हैं। अधिकांश मूर्तियें राजस्थान से लाई गई हैं और संगमरमर से निर्मित हैं। कई मन्दिरों,

पाठशालाओं और धर्मशालाओं की दीवारों पर भीत्ति-चित्र भी बने हैं और उन पर फुलकारी का काम भी हुआ है।

महाराजा रणवीर सिंह ने चित्रकला को भी प्रोत्साहित किया। उनके समय में अधिकांश चित्र पांडुलिपियों में ही मिलते हैं और इनके विषय प्रायः पौराणिक कथाएं हैं। ऐसे चित्र रागमाला पुस्तक में सुरक्षित हैं जिसका रचना काल 1873 माना गया है। इसके रचयिता पंडित राजाराम हैं। इसी प्रकार रागमाला की एक अन्य पुस्तक में 28 चित्र हैं। गीता पंचरत्नी और गीता-माला पांडुलिपि में भी धार्मिक विषयों को लेकर चित्र बनाये गए हैं कई पांडुलिपियों में महाभारत के कुछ दृश्य चित्रित हैं तो कईयों में श्रीमद्‌भागवत गीता से सम्बन्धित हैं। कई पांडुलिपियों में विष्णु के चित्र हैं तो कईयों में दश अवतारों के हैं । योग और तन्त्र पर भी कुछ चित्र उपलब्ध हैं। एक पांडुलिपि में कोक शास्त्र से सम्बन्धित चित्र भी हैं।

महाराजा रणवीर सिंह के समय में जिन चित्रकारों ने विशेष ख्याति प्राप्त की उनके नाम थे-जगत राम उर्फ छुन्नियां और हरिचन्द। हरिचन्द के हाथों बना दुर्गा और राम पंचायत के चित्र उत्कृष्ट कृतियां माने जाते हैं।

रणवीर सिंह एक शान्ति प्रिय नरेश थे। वे युद्ध और लड़ाई के पक्ष में नहीं थे। किन्तु फिर भी उन्हें गिलगित और बलतिस्तान में उभरते विद्रोह का दमन करने के लिए सैन्य शक्ति का प्रयोग करना पड़ा।

गिलगित का क्षेत्र पहले कश्मीर में नियुक्त खालसा गेवर्नर के अधीन था। किन्तु 1846 में अंग्रेजों और महाराजा में जो अमृतसर संधि हुई उसके अन्तर्गत गिलगित का क्षेत्र भी महाराजा गुलाब सिंह के अधीन आ गया। लाहौर दरबार द्वारा गिलगित में नियुक्त अधिकारी नत्थू शाह ने महाराजा गुलाब सिंह की सेवा स्वीकार कर ली। सन् 1847 में हुंज़ा क्षेत्र के राजा ने गिलगित क्षेत्र में घुसपैठ की तो नत्थूशाह ने उस के विरुद्ध सैनिक कारवाई की। किन्तु हुँजा के राजा ने नत्थूशाह और उसके साथ आये कई डोगरा सैनिकों की हत्या कर दी। बाद में महाराजा गुलाब सिंह ने 1851 में दीवान हरिचन्द और बज़ीर जोराबर के नेतृत्व में गिलगित में डोगरा सेना भेजी। डोगरा सेना ने वहां पुनः शान्ति स्थपित की। किन्तु 1852 में यासीन क्षेत्र के एक सरदार गौर रहमान ने गिलगित पर पुनः अधिकार कर लिया और 1860 तक वही गिलगित का शासक रहा।

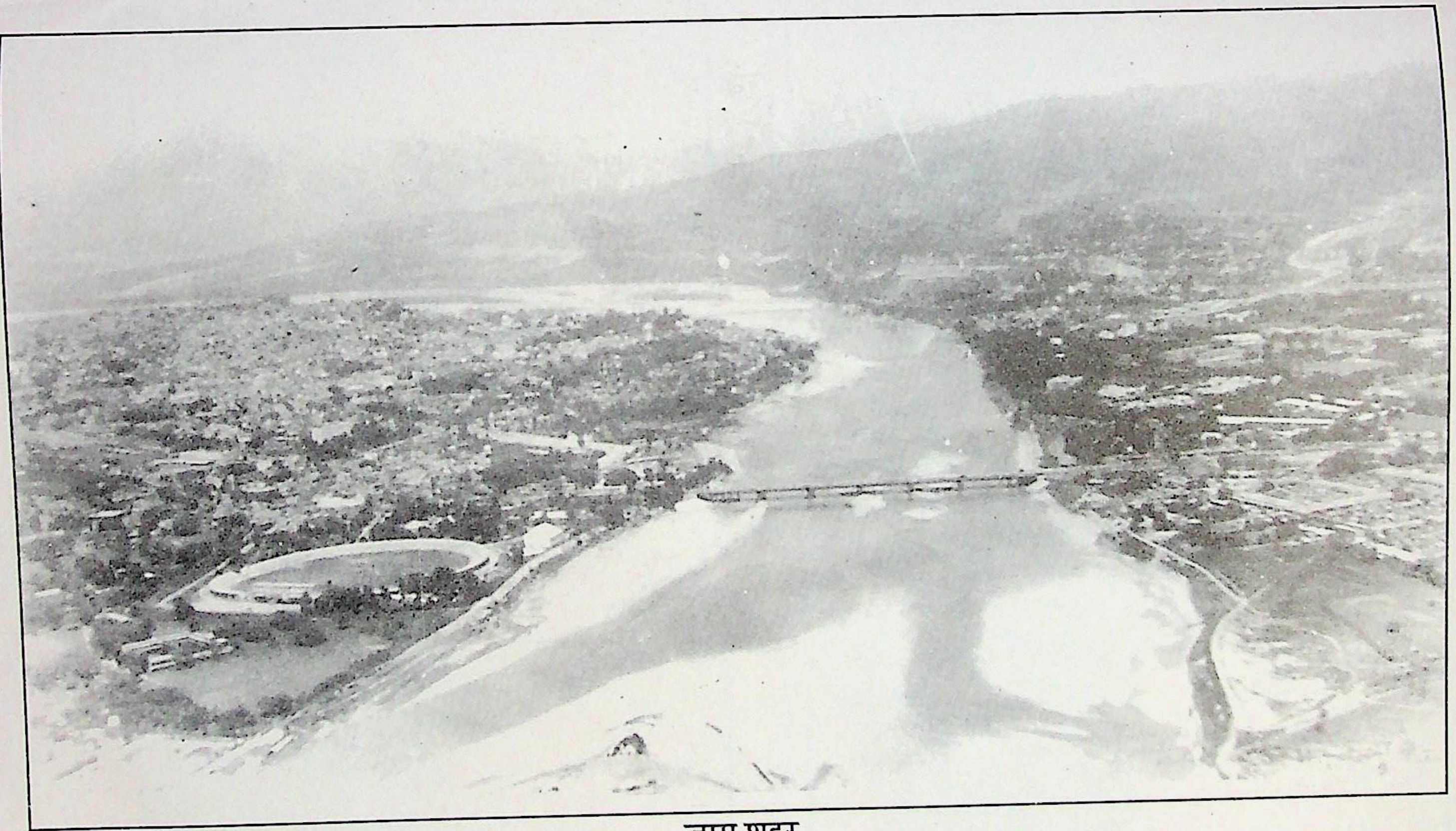
सन् 1860 में गौर रहमान की मृत्यु के बाद महाराजा रणवीर सिंह ने जनरल देवी सिंह नारायणियां के नेतृत्व में तीन हज़ार डोगरा सैनिकों के एक दल को गिलगित पर अधिकार करने के लिए भेज दिया। डोगरा सेना ने सिन्धु नदी को पार किया और दरद कबीले के साधारण अवरोध का सामना करती हुई गिलगित पुहंच गई और गिलगित के

बाहू का किला

रघुनाथ मन्दिर

अमर महल अजायबघर

मुबारक मंडी



जम्मू शहर

अखनूर का किला

मंगला देवी का किला

पुरातत्व सर्वेक्षण-भारत सरकार कश्मीर मंडल के सौजन्य से

भुबनेरगढ़ का किला

रियासी का किला

मोहेरगढ़ का किला

जसरोटा का किला

राजौरी का किला

महाराजा रणजीत देव

राजा आनन्ददेव-बाहू

राजा ध्रुवदेव - जसरोटा



राजा हरिदेव–जम्मू



राजा कृपालदेव–बाहू



राजा ध्रुवदेव—जम्मू



राजा बलवन्त सिंह—सरूईंसर जम्मू



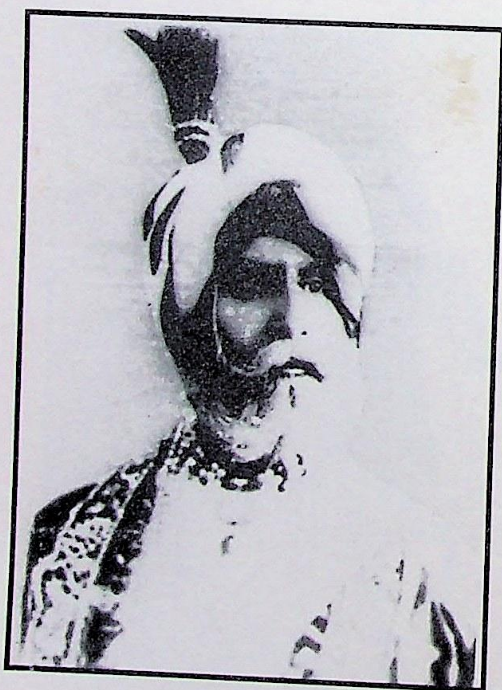
राजा बृजराज देव–जम्मू



राजा ध्यान सिंह



महाराजा गुलाब सिंह



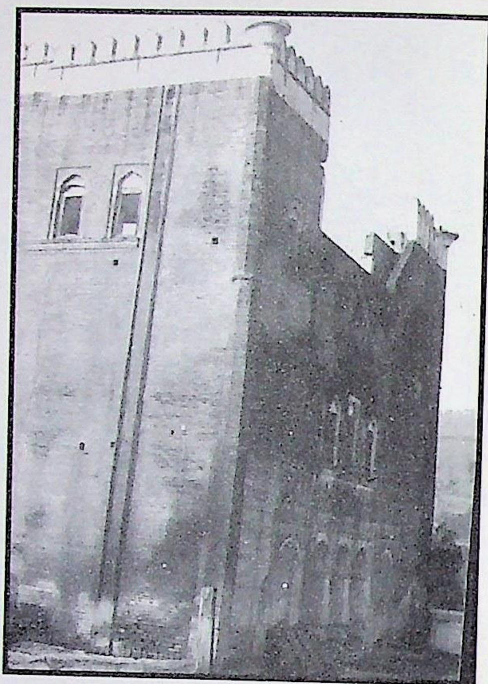
महाराजा रणवीर सिंह



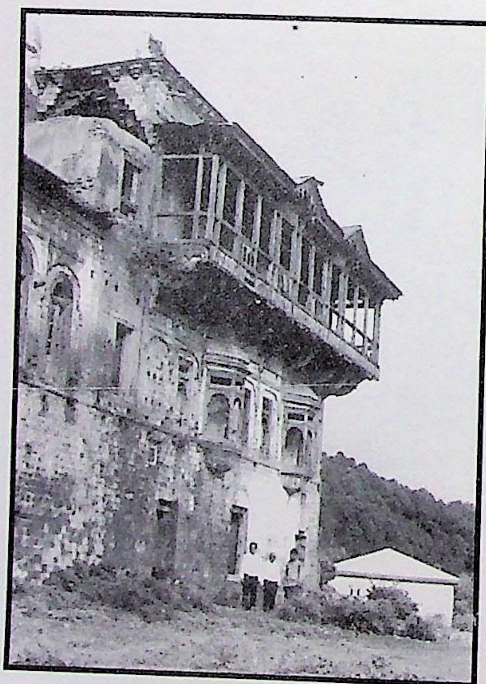
महाराजा प्रताप सिंह



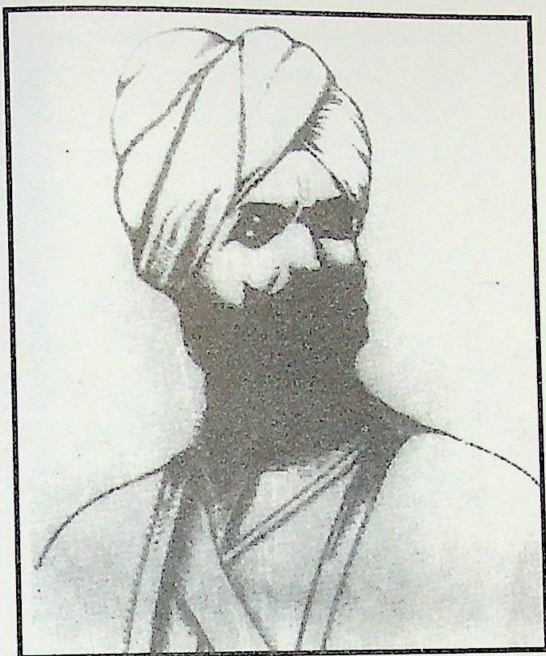
महाराजा हरि सिंह



जोरावर सिंह के महल का एक दृश्य



चनैनी के राजमहल



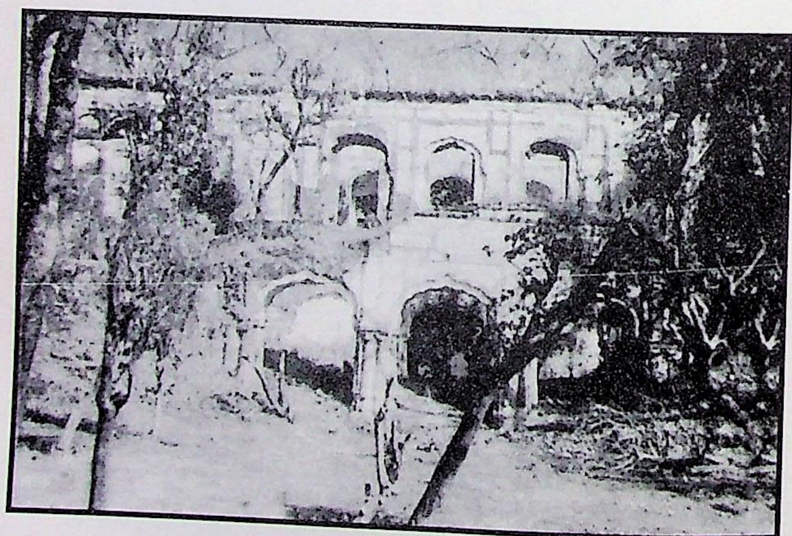
जोरावर सिंह



महावीर चक्र विजेता, अमर शहीद ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह



पर्वतीय क्षेत्र का प्रथम क्रान्तिकारी राम सिंह पठानिया



किला जसरोटा में भग्नमहलों के अवशेष

दुर्ग पर डोगरा सेना ने अधिकार कर लिया। डोगरा सेना यासीन की ओर भी बढ़ी। 16 सितम्बर 1860 को इस क्षेत्र पर भी डोगरा सेना ने अधिकार कर लिया। डोगरा सेना जैसे ही यासीन से लौटी वहां के लोगों ने पुनः विद्रोह कर दिया जिसे जनरल होशियारा ने 1864 में दबाया और इस इलाके पर पुनः अधिकार किया।

किन्तु गिलगित और उसके आस-पास क्षेत्रों में रहने वाले दरद कबीले के लोग डोगरा राजा का आधिपत्य स्वीकार करने को तैयार नहीं थे। अतः उन्होंने अमान उल मलिक और मीर बली के नेतृत्व में संगठित होकर डोगरा सेना के शिविरों पर कई बार आक्रमण किये और पूरे क्षेत्र में डोगरा सेना के विरुद्ध अभियान चलाया। किन्तु ऐसी स्थिति में भी डोगरा सेना वहां डटी रही। कर्नल विजय सिंह ने विद्रोहियों का दमन करने के लिए कठोर पग भी उठाये जिससे उस क्षेत्र में कुछ समय के लिए अस्थायी शान्ति रही। सन् 1869 में हुजा क्षेत्र के लोगों ने भी विद्रोह किया किन्तु डोगरा सेना ने उसे भी दबा दिया।

उन दिनों गिलगित का क्षेत्र भी कई छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित था। इन में प्रसिद्ध राज्य गिलगित, से, हासोरा, पुनियाल, नगर नुंजा, यासीन, चित्राल मसतिंज, इशकोमन, तांगीर, गोर, कोली हारवन, थोर चिलास, थैंक तथा बायर आदि थे। यहां के निवासी दरद थे। यह क्षेत्र भौगोलिक दृष्टि से बहुत ही महत्त्वपूर्ण था। इसकी सीमाएं अफगानिस्तान और रूस को स्पर्श करती थीं। अतः वाणिज्य और सैनिक दृष्टि से यह क्षेत्र बहुत ही महत्त्वपूर्ण था।

महाराजा रणवीर सिंह ने इस क्षेत्र पर अधिकार करने के लिए सैनिक बल प्रयोग के अतिरिक्त कूटनीतिक प्रयोग भी किये। जिसका परिणाम यह निकला कि सन् 1870 में हुंजा रियासत के सरदार ने महाराजा की अधीनता स्वीकार कर ली। नगर रियासत के राजा ने भी महाराजा को नज़राना देना मान लिया। जिसका परिणाम यह निकला कि गिलगित और नगर में पुनः व्यापार शुरू हो गया। किन्तु यासीन रियासत के सरदार मीरवली ने महाराजा की अधीनता स्वीकार न की और एक अंग्रेज अधिकारी ले. जार्ज. एच. हेवर्ड को अपने पक्ष में करके पूरे गिलगित पर शासन करने का स्वप्न लिया। अंग्रेज अधिकारी ने महाराजा रणवीर सिंह के विरुद्ध अमानुषिकता के आरोप लगा कर ब्रिटिश सरकार को मीरवली की सहायता करने की सलाह दी। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने जब मीरवली की प्रत्यक्ष कोई सहायता न की तो मीर-वली ने अंग्रेज अधिकारी का कतल कर दिया। इससे गिलगित क्षेत्र के अन्य सरदार मीरवली से अलग हो गये और मीरवली को भी यासीन की राजगद्दी को छोड़कर भागना पड़ा। इस घटना का ब्रिटिश सरकार पर यह प्रभाव पड़ा कि उसने महाराजा रणवीर सिंह को गिलगित क्षेत्र पर पूर्ण नियंत्रण करने में सहायता करने का मन बनाया।

सतरह और अठारह नवम्बर 1876 को ब्रिटिश भारत के गर्वनर जनरल लार्ड टेलन ने महाराजा रणवीर सिंह से माधोपुर स्थान पर इस विषय पर विस्तृत चर्चा की और उन्हें सलाह दी कि वे किसी भी मूल्य पर चितराल और यासीन पर अपना अधिकार कर लें। लार्ड ने महाराजा को इस शर्त पर सहायता देना स्वीकार किया कि महाराजा ब्रिटिश सरकार को गिलगित में अपना राजनैतिक अधिकारी नियुक्त करने की अनुमति दें। 22 दिसम्बर 1876 को गर्वनर जनरल ने महाराजा को इस आशय का एक पत्र भी लिखा और स्पष्ट किया कि ब्रिटिश सरकार ऐसा कदम महाराजा को सीमा बढ़ाने के उद्देश्य की परिपूर्ति के लिए कर रही है।

ब्रिटिश सरकार से समर्थन मिलने के बाद महाराजा ने गिलगित क्षेत्र के सरदारों को येन केन प्रकारेण अपने प्रभाव में लाने का यत्न आरम्भ कर दिया। जिस का परिणाम यह निकला की 1879 में नगर के शाहज़ादा ज़फर ने महाराजा के दरबार में उपस्थिति देकर उन से समझौता कर लिया। हुंजा के सरदार ने भी अधीनता स्वीकार कर ली। इसका परिणाम यह निकला कि दरद पर महाराजा का आधिपत्य स्थापित हो गया। 1878 में चित्राल के हाकिम ने भी अफगानिस्तान के अमीर की धमकी से बचने के लिए महाराजा से समझौता कर लिया। चित्राल पर महाराजा का प्रभाव बढ़ना कूटनीति की दृष्टि से बहुत बड़ी सफलता मानी गई। चित्राल के बाद महाराजा ने गिलगित के छोटे-छोटे राज्यों यथा शिनाकी, दारेल, तांगीर, खीली, सऊ, हारबन, यासीन और जालकोट के सरदारों को भी अपने अधीन किया। इस प्रकार महाराजा ने ब्रिटिश सरकार की सहायता से गिलगित के अधिकांश भाग पर अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया।

सन् 1880 में महाराजा ने गिलगित में स्थित डोगरा सेना का स्थानान्तरण जनरल होशियारा सहित जम्मू में कर दिया। डोगरा सेना गिलगित से चल पड़ी किन्तु नई सेना अभी गिलगित में नहीं पहुँची थी। ऐसी स्थिति में यासीन के सरदार ने विद्रोह कर दिया किन्तु उस के विद्रोह को चित्राल के हाकम ने अपनी सेना भेज कर दबा दिया। महाराजा ने यासीन की शक्ति को कम करने के लिए इसका विभाजन इस आशय से किया कि भविष्य में इस क्षेत्र का सरदार उन के लिए सिरदर्द न बने। यासीन के सरदार पहलवान बहादुर ने एक बार पुनः लोगों को संगठित करके महाराजा के विरुद्ध विद्रोह किया किन्तु गिलगित के बजीर-बजारत बख्शी मूलराज ने उस विद्रोह का दमन कर दिया।

महाराजा रणवीर सिंह के गिलगित पर आधिपत्य स्थापित कर लेने के बाद ब्रिटिश सरकार ने 20 जुलाई 1881 को गिलगित में स्थापित अपनी एजैंसी को हटा लिया।

महाराजा रणवीर सिंह ने गिलगित के अतिरिक्त मध्य एशिया की ओर भी विशेष

ध्यान दिया। लद्दाख का क्षेत्र बजीर जोरावर सिंह के विजय-अभियान के अन्तर्गत पहले ही रियासत का भाग बन चुका था। महाराजा लद्दाख से भी आगे स्थित विभिन्न देशों और प्रदेशों की राजनैतिक, सामाजिक, भौगोलिक और व्यापारिक स्थिति की जानकारी चाहते थे। वे मध्य एशिया के देशों के साथ व्यापारिक सम्बन्ध भी स्थापित करना चाहते थे। अतः उन्होंने गुप्त रूप से अपने विश्वस्त अधिकारी मेहता शेर सिंह को मध्य एशिया के देशों का सर्वेक्षण करने के लिए भेजा। मेहता ने 28 जुलाई 1866 को अपनी यात्रा आरम्भ की और वह हज़ारा पेशावर, काबुल, बुखारा बल्ख, समरकन्द, ताशकन्द, खोतान, काशगर और यारकन्द की यात्रा करके अक्तूबर 1867 में 175 स्थानों की यात्रा करके वापिस लौट आया। उसने महाराजा को जो ब्योरा दिया उस की पुष्टि के लिए महाराजा ने मुहम्मद खान किश्तबाढ़ी को भेजा। महाराजा ने यारकन्द में राजनैतिक उद्देश्यों को दृष्टि में रखकर 1864 में कादेरजू और मियां साहब सिंह को भेजा था। इसी प्रकार सोवाग्वां बन्दूकी को चीन की सैन्य शक्ति का पता लगाने के लिये नियुक्त किया गुप्तचरों से उत्साह जनक सूचनाएँ मिलने पर महाराजा ने यारकन्द और काशगर पर आक्रमण करने की योजना बनाई और उसके लिए ब्रिटिश सरकार से अनुमति माँगी। किन्तु ब्रिटिश सरकार महाराजा के बढ़ते हुए प्रभाव से प्रसन्न नहीं थी, अतः उसने महाराज को यारकन्द पर आक्रमण करने की अनुमति नहीं दी।

अंग्रेजों ने स्वयं मध्य एशिया के देशों के साथ व्यापारिक संधियां कर ली और महाराजा को उन मार्गों की सुरक्षा प्रदान करने के लिए कहा जिनसे व्यापारियों के बड़े-बड़े काफिले सामान लेकर गुजरते थे। ब्रिटिश सरकार ने अपना व्यापार बढ़ाने के लिए लेह में वाणिज्य केन्द्र भी खोला जिसका अधिकारी एक अंग्रेज था।

महाराजा रणवीर सिंह ब्रिटिश सरकार के द्वेषपूर्ण व्यवहार से प्रसन्न नहीं थे। रूस से अपने सम्पर्क सूत्र जोड़ना चाहते थे। उन्होंने अर्ब्दुरहमान खान, सैय्यद रमज़ान खान, आदि विश्वस्त गुप्तचरों को ताशकन्द भी भेजा यहाँ उन्होंने रूसी अधिकारियों से वार्तालाप किया। रूसी अधिकारियों ने महाराजा को पूर्व में उपद्रव करने के लिए उकसाया और आश्वासन दिया कि रूस महाराजा की सहायता करेगा। ब्रिटिश सरकार को महाराजा और रूस के मध्य चल रही गुप्त मंत्रणा का पता चल गया। लार्ड मेयो ने सन् 1870 में महाराजा को कठोर चेतावनी दी और उसे सलाह दी कि वे अमृतसर सन्धि की सीमा के भीतर ही रहें।

महाराजा और ब्रिटिश सरकार के मध्य सम्बन्ध विशेष मधुर नहीं रहे। ब्रिटिश सरकार का सदैव यही प्रयास रहा कि कश्मीर का महाराजा ब्रिटिश सरकार का स्वामी भक्त ही बना रहे तथा सरकार की कश्मीर सम्बन्धी नीतियों का अनुसरण करे। किन्तु महाराजा रणवीर सिंह ने अमृतसर संधि के अन्तर्गत दी गई स्वायत्तता के मूल्य पर ब्रिटिश

सरकार के आगे झुकना पसंद नहीं किया और सम्भवत: यही एक कारण था कि ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों ने महाराजा के विरुद्ध आक्रामक रुख अपनाये रखा। ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों ने महाराजा पर कई मिथ्यारोप भी लगाये और उस की प्रशासनिक क्षमता पर सन्देह व्यक्त किया। किन्तु महाराजा ने उन की चिन्ता नहीं की और अपनी योग्यता से प्रजा का हृदय जीता।

ब्रिटिश सरकार हैदराबाद की भाँति महाराजा के दरबार में अपना रेजिडेट बैठाये रखना चाहती थी। किन्तु महाराजा ने ब्रिटिश सरकार के इस प्रस्ताव को कभी स्वीकार नहीं किया। योरोपीय पर्यटकों के हित को देखने के लिए सरकार ने श्रीनगर में एक विशेष अधिकारी की नियुक्ति अंवश्य की थी किन्तु जैसे ही गर्मियों का मौसम समाप्त हो जाता महाराजा उस अधिकारी को अपना कार्यालय बन्द करने का आदेश दे देता था। ब्रिटिश सरकार महाराजा को केवल नाम मात्र का शासक बनाये रखना चाहती थी, किन्तु रणवीर सिंह ने अपनी सत्ता का अनावश्यक हस्तक्षेप ब्रिटिश अधिकारियों को कभी नहीं करने दिया और इसी कारण वे महाराजों से क्षुब्ध रहे। महाराजा द्वारा तीस हज़ार सैनिकों से गठित सेना को भी ब्रिटिश सरकार ने सन्देह की दृष्टि से देखा।

महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में सब यह बड़ी दुर्घटना यह घटित हुई कि 1877 में देश में भयंकर दुर्भिक्ष फैला जिस की लपेट में पूरी कश्मीर घाटी और जम्मू प्रान्त आ गया। रियासत में दुर्भिक्ष का कारण प्राकृतिक आपदा था। इस दुर्भिक्ष के कारण पूरी रियासत में कई लोग भूख से तड़प-तड़प कर मरे। कश्मीर में दुर्भिक्ष के कारण लोगों को पलायन करने के लिए विवश होना पड़ा। उन दिनों कश्मीर से बाहिर जाने के लिए 'राहगिर' अर्थात् यात्रा के लिए अनुमति पत्र लेना पड़ता था। लोगों को अनुमति-पत्र प्राप्त करने में जब कठिनाई आने लगी तो वे अति दुष्कर मार्गों से घाटी छोड़ कर भागने लगे। लोगों की कठिनाईयों का जब महाराजा को पता चला तो उन्होंने अनुमति पत्र प्राप्त किये बिना भी लोगों को मनपसंद स्थानों की ओर प्रस्थान करने की अनुमति दे दी।

महाराजा ने दुर्भिक्ष से पीड़ित लोगों की सहायतार्थ पंजाब से लाखों रुपये का अन्न आयात किया और सस्ते भाव लोगों को दिया। महाराजा ने कश्मीर में 74 लंगर लगाये जिन में लोगों को मुफ्त खाना दिया जाता रहा।

भारत सरकार ने भी लार्ड कनिंघम को कश्मीर में परिव्यापक दुर्भिक्ष का अध्ययन करने के लिए कश्मीर भेजा। महाराजा ने कनिंघम के सुझावों को मानते हुए कश्मीर में और अधिक अन्न का निर्यात किया। कश्मीर में दुर्भिक्ष की स्थिति दो वर्ष तक बनी रही।

महाराजा ने कश्मीर के लोगों को दुर्भिक्ष से बचाने के लिए बहुत यत्न किये फिर

भी ब्रिटिश सरकार के अधिकारियों और कुछ पत्रकारों ने महाराजा और उसके प्रशासन पर ये आरोप लगाया कि उन्होंने कई भूखे कश्मीरियों को झील बुल्लर में डुबो दिया और उन पर अमानुषिक अत्याचार किये। ऐसे समाचारों ने महाराजा को दुखी अवश्य किया किन्तु वे निरुत्साहित नहीं हुए। महाराजा ने घाटी के लोगों को दुर्भिक्ष से बचाने के लिये सस्ते दाम पर अनाज की बिक्री की।

महाराजा रणवीर सिंह ने अपने राज्य की फैली हुई सीमाओं को ध्यान में रखते हुए तथा रियासत को बाह्य आक्रमण से बचाने के लिए एक प्रशिक्षित सेना का गठन भी किया। एक अंग्रेज अधिकारी हेनवे के अनुसार महाराजा की सेना में सैनिकों की कुल संख्या 30,480 थी। इन्द्रसिंह, लाभा, चतरसिंह तथा शंकरसिंह, महाराजा की सेना में मुख्य अधिकारी थे। महाराजा के सेना के पास तीन सौ से भी अधिक तोपें थीं जिन में अधिकांश सीमान्त क्षेत्र में रखी गई थीं। युद्ध का सामान तैयार करने के लिए दो मुख्य कारखाने थे इन में एक कारखाना जम्मू में और दूसरा श्रीनगर के ही निकट स्थित था। इन में देसी बन्दूकें, कारतूस तथा बारूद आदि तैयार किया जाता था। वह पुरानी शैली का होता था अत: सेना के लिए बहुत उपयोगी नहीं होता था। इस के अतिरिक्त तलवारें, छुरे और बर्छियें बनाने के भी कई कारखाने थे जिन में एक जैना गाँव (कश्मीर) में भी था। सेना में हिन्दू, मुसलमान सिक्ख इत्यादि सभी धर्मों और जम्मू, कश्मीर, लद्दाख, वलतिस्तान आदि क्षेत्रों के लोग सम्मिलित थे। मध्य एशिया के सीमान्त क्षेत्र पर दृष्टि रखने के लिए ब्रिटिश सरकार महाराजा की सैनिक दृष्टि से सहायता करती थी और आवश्यक युद्ध सामग्री तथा सैनिक प्रशिक्षण प्रदत्त करती थी।

महाराजा रणवीर सिंह अपने जीवन के अन्तिम चरण में शारीरिक और मानसिक रूप से दुखी ही रहे। उन्होंने अपने समय की परम्परा को निभाते हुए पाँच विवाह किये थे। उनका पहला विवाह बाल्यावस्था में हुआ। दूसरा विवाह उन्होंने युवा अवस्था आरम्भ होते ही पहली अक्तूबर 1848 को कल्हूर के राजा हीराचन्द की बहन से किया। प्रौढ़ावस्था में जुलाई 1871 को उन्होंने तीसरा विवाह बलोरिया राजपूतों के घर किया। पच्चास वर्ष की आयु में उन्होंने दो विवाह और किये। उन की चौथी रानी बलोरिया कबीले से और पाँचवीं रानी बन्दराल कबीले से सम्बधित थी। ये दोनों विवाह उन्होंने 1880 में किये।

सन् 1880 के बाद महाराजा का शारीरिक स्वास्थ्य भी बिगड़ने लगा। वे मधुमेय के रोगी हो गए। उन का शरीर दुर्बल हो गया। 1881 में तो वे गम्भीर रूप से बीमार पड़ गये। उन को रोगग्रस्त देखकर उन के अधिकारियों में भ्रष्टाचार बढ़ गया। महाराजा के महालेखाकार पंडित रामकृष्ण ने इन भ्रष्ट अधिकारियों की सूची तैयार करके जब उस सूची को महाराजा को प्रस्तुत करने का मन बनाया तो उन अधिकारियों को इस बात का

पता चल गया। उन्होंने एक ऐसा षड्यंत्र रचा कि महाराजा ने निरापराधी पंडित रामकृष्ण और उसके परिवार को अपनी रियासत से निर्वासित कर दिया। बाद में जब उन्हें वास्तविकता का पता चला तो उन्होंने पंडित रामकृष्ण को जून 1885 को लाहौर से जम्मू वापिस बुला लिया।

12 सितम्बर 1885 को महाराजा का शरीर एक दम शिथिल हो गया। उसी दिन सायंकाल को उन्होंने अपने तीनों बेटों को अपने पास बुलाया। उन्होंने अपने बड़े पुत्र मियां प्रताप सिंह से कहा कि वह उन लोक कल्याणकारी कामों को पूर्ण करें जिन को उन्होंने शुरू किया है। उसी दिन सायं साढ़े चार बजे उन्होंने अपना यह नश्वर शरीर छोड़ दिया।

महाराजा रणवीर सिंह एक दूरदर्शी, प्रजापालक, विद्वानों का सम्मान करने वाले तथा सभी धर्मों का आदर करने वाले नरेश थे। वे डुग्गर के पहले ऐसे नरेश थे जिन्होंने जन-कल्याण के लिए असाधारण काम किये। वे जनता की पीड़ा को अपनी पीड़ा समझते थे। वे एक ऐसे दार्शनिक राजा थे जिन्होंने जम्मू कश्मीर राज्य में न्याय व्यवस्था स्थिर की और राज्य के लोगों को नई दिशा दी। वे हृदय से बड़े ही दयालु और परोपकारी राजा थे। उन्हें प्रशासन का पर्याप्त अनुभव था। एक पुरुष के रूप में वे महान् थे।

महाराजा प्रताप सिंह

महाराजा प्रताप सिंह की परिगणना डुग्गर के धर्मात्मा-राजा के रूप में की जाती है। उन्हें एक मनीषी, कृपालु, दयालु और प्रजा हितैषी राजा कहा जाता है। इनके शासन काल में रियासत में प्रायः सुख-शांति और समृद्धि में वृद्धि हुई।

महाराजा प्रताप सिंह का जन्म 18 जुलाई 1848 को महाराजा रणवीर सिंह की पहली रानी सिबी के गर्भ से रियासी के राज महलों में हुआ। इनके जन्म के समय महाराजा गुलाब सिंह जम्मू और कश्मीर राज्य की संस्थापना कर चुके थे, अतः उन्होंने इन के जन्म पर विशेष उत्सव का आयोजन किया और हर्षोल्लास कई दिनों तक चलता रहा। इन के दूसरे भाई रामसिंह का जन्म 1861 में और तीसरे भाई अमर सिंह का जन्म 4 जनवरी 1864 में हुआ। इनकी दो सगी बहनें भी थी।

महाराजा प्रताप सिंह जब सात वर्ष के हुए तो इन का यज्ञोपवीत संस्कार धार्मिक और पारिवारिक रीतिरिवाज के अनुसार सम्पन्न हुआ। इनके इस संस्कार के बाद दो मास तक उत्सव होते रहे। जिस में लाखों रुपये ख़र्च हुए।

महाराजा रणवीर सिंह ने इनकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध किया। इन्होंने

अपने अध्यापकों से संस्कृत, फारसी और अंग्रेजी भाषाएँ सीखी। डोगरी भाषा लिखने का भी इन्हें अभ्यास था। इन्हें सामान्य ज्ञान, विधि, विज्ञान और चिकित्सा के विषयों का ज्ञान भी करवाया गया जिसे इन्होंने हृदयंगम कर लिया।

मियां प्रताप सिंह जब चौदह वर्ष के हुए तब 10 फरवरी 1862 को इन का विवाह चम्बा के राजघराने की राजकुमारी से हुआ। कुछ वर्षों बाद इन्होंने दो और विवाह किये। इनकी दूसरी रानी कटोच कबीले से और तीसरी पठानियां कबीले से थी।

प्रताप सिंह महाराजा रणवीर सिंह के ज्येष्ठ पुत्र थे अत: महाराजा ने इन्हें युवराज घोषित किया। उन की यह प्रबल इच्छा थी कि उन का उत्तराधिकारी प्रत्येक दृष्टि से एक योग्य शासक सिद्ध हो, अत: उन्होंने इन्हें प्रशासन की विशेष शिक्षा देने के लिए अपने साथ दरबार में रखा। उन्होंने इन पर दायित्व भी डाले और न्याय सम्बन्धी प्रार्थना-पत्रों को देखने और उनका निपटारा करने का काम भी कुछ सीमा तक इन्हें ही सौंपा।

सन् 1881 में भारत के वायसराय जब कश्मीर यात्रा पर आया तो राज्य की सीमा में प्रवेश करते ही उनके स्वागत का काम महाराजा ने इन्हें ही सौंपा और इन्होंने इस काम को बड़ी योग्यता और कुशलता से निभाया।

12 सितम्बर 1885 को महाराज़ा रणवीर सिंह के देहावसान के बाद 14 सितम्बर 1885 को इनका राज्याभिषेक बड़े हर्षोल्लास के साथ सम्पन्न हुआ ये नवगठित जम्मू कश्मीर लद्दाख और गिलगित रियासत के तीसरे शासक बने।

महाराजा प्रताप सिंह जब राजसिंहासन पर बैठे उस समय रियासत जम्मू कश्मीर राज्य का सीमान्त क्षेत्र पूर्ण रूपेण शान्त नहीं था। रूस और अफगानिस्तान के मध्य सीमा-विवाद था और यह भय था कि रूस और ब्रिटिश सरकार के मध्य कहीं युद्ध न आरम्भ हो जाये। ऐसी विकट स्थिति में ब्रिटिश सरकार सीमान्त क्षेत्र के विषय में विशेष चिन्तित थी और वह इस क्षेत्र पर सैनिक दृष्टि से अपना महत्व बढ़ाना चाहती थी।

ब्रिटिश सरकार ने महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में गिलगित में अपना एक विशेष अधिकारी अपने हितों को देखने के लिए बैठा रखा था, किन्तु 1881 में उसे ब्रिटिश सरकार ने वापस बुला लिया था। ब्रिटिश सरकार ने महाराजा रणवीर सिंह के दरबार में अंग्रेज रेजीडेंट बैठाने के लिए बहुत दबाव डाला था किन्तु वे नहीं माने थे।

महाराजा प्रताप सिंह के सिंहासन पर बैठने के कुछ समय बाद ब्रिटिश सरकार ने महाराजा को दुर्बल समझ कर उनके दरबार में अंग्रेज रेज़ीडेंट बैठा दिया। महाराजा ने इस नियुक्ति का ब्रिटिश सरकार से कई बार विरोध किया किन्तु सरकार ने महाराजा की एक भी बात नहीं सुनी।

अंग्रेज रेज़ीडेंट को ब्रिटिश सरकार ने इतने अधिकार दिये कि उनसे महाराजा की स्थिति बहुत ही कमज़ोर हो गई। लार्ड डफरिन ने भी महाराजा को आदेश भेजा कि वह रेजिडेंट की उपस्थिति को खुले ह्रदय से स्वीकार करे और रेज़िडेंट से विचार-विमर्श करके अपने प्रशासन में विशेष सुधार लाये। कश्मीर दरबार में जब रेज़िडेंट ने कार्य-भार सम्भाल लिया तो उसने राज परिवार के सदस्यों और उच्चाधिकारियों से मिल कर महाराजा को राजगद्दी से हटाने के लिए षड्यंत्र रचना आरम्भ कर दिये। मार्च 1888 में जब नया रेजिडेंट दरबार में आया तो उसने महाराजा के छोटे भाई मियां अमर सिंह को अपने पक्ष में करने के बाद वायसराय को पत्र भेजा कि महाराजा प्रताप सिंह शासन करने के योग्य नहीं है और वह अपने प्रशासन में सुधार लाने की क्षमता भी नहीं रखता है। रेज़िडेंट ने महाराजा को पदच्युत करने के लिए उन पर एक और गम्भीर आरोप पत्र तैयार किया जिस में कहा गया था कि प्रताप सिंह किसी विदेशी शक्ति (रूस) से मिल कर ब्रिटिश सरकार के विरुद्ध षड्यंत्र रच रहा है।

महाराजा प्रताप सिंह ने इन आरोपों को मिथ्या सिद्ध करने के लिए अपना स्पष्टीकरण भेजा। पर भारत सरकार महाराजा के स्पष्टीकरण पर सन्तुष्ट नहीं हुई और उसने महाराजा के अधिकार कम करने का निर्णय लिया। मार्च 1889 में ब्रिटिश रेजिडेंट ने महाराजा पर दबाव डाला कि वह 'कौंसिल आफ रिजेंसी' को सत्ता का हस्तांतरण कर दे। तदानुरूप महाराजा ने 18 अप्रैल 1889 को सत्ता कौंसिल को सौंप दी। वह स्वयं नाम-मात्र के महाराजा रह गये।

भारत सरकार ने कौंसिल के सदस्यों का नामांकन स्वयं किया। उन्होंने कौंसिल का प्रधान मियां अमर सिंह को बनाया क्योंकि वह रेजिडेंट का विशेष विश्वास पात्र था। कौंसिल में जिन अन्य सदस्यों को नियुक्त किया गया वे थे-राजा रामसिंह, इन्हें सेनापति बनाया गया। राय बहादुर भागराय को विधि विभाग सौंपा गया। बजट तैयार करने, कानून और प्रशासन तथा राजपरित कर्मचारियों की नियुक्ति का दायित्व भी कौंसिल को सौंप दिया गया। नवगठित कौंसिल पर रेजिडेंट का नियंत्रण रखा गया। इस प्रकार भारत में शासित अंग्रेजों ने अप्रत्यक्ष रूप में जम्मू कश्मीर राज्य को भी अधिग्रहण करने का प्रयास किया। किन्तु भारत की कुछ प्रतिष्ठित और निष्पक्ष पत्र-पत्रिकाओं ने अंग्रेजी सरकार पर जम्मू कश्मीर रियासत के आन्तरिक मामलों में अनुचित हस्तपेक्ष करने का आरोप लगाया और साथ ही लिखा कि यदि सरकार ने अविलम्ब अनावश्यक हस्तक्षेप बन्द न किया तो उसके परिणाम अति गम्भीर होंगे। ब्रिटिश पार्लियामेंट में भी सांसदों ने कश्मीर की विशेष रूप से चर्चा की।

जिस का परिणाम यह निकला कि भारत सरकार ने नई कौंसिल की घोषणा की

जिस का प्रधान महाराजा को बनाया। नई कौंसिल में कुछ नये सदस्य भी मनोनीत किये गये। 1885 से लेकर 1900 तक महाराजा प्रताप सिंह को न केवल अंग्रेजी सरकार ने अपितु महाराजा के छोटे भाई अमर सिंह ने उस के विरुद्ध कई षड्यंत्र रचे। उस पर कई मिथ्या आरोप लगाये और उस की स्थिति को कमजोर करने के लिए भरसक प्रयास किये, किन्तु महाराजा ने बड़े धैर्य से उन सब का सामना किया और धर्मभीरु होनें के कारण किसी से भी प्रतिशोध नहीं लिया। अन्तत: 1900 के बाद महाराजा की स्थिति बहुत सुदृढ़ हो गई और अंग्रेजी सरकार ने भी महाराजा के साथ सद्व्यवहार करना इसलिये आरम्भ किया क्योंकि उत्तर-पश्चिम सीमांत क्षेत्र में जो अफगानिस्तान के साथ लगता था, वहां शांति स्थापना का दायित्व अंग्रेजी सरकार का था और अंग्रेजी सरकार को इस काम में महाराजा के सहयोग की आवश्यकता थी।

लार्ड कर्ज़न ने महाराजा को निर्दोष मानकर 1905 में स्टेट कौंसिल को भंग करके प्रसासन का पूरा दायित्व महाराजा को सौंप दिया। इससे महाराजा के अधिकार बढ़ गये। किन्तु लार्ड कर्ज़न ने रेज़िडेंट के अधिकार कम नहीं किये। महाराजा और उसके मंत्री मंडल को अंग्रेजी सरकार ने यह स्पष्ट आदेश दिया कि बजट सहित प्रत्येक महत्वपूर्ण मामले में वे रेजीडेंट की सलाह लें। अत: महाराजा को अपने मंत्री नियुक्त करते समय, अन्य उच्चाधिकारियों को नौकरी पर रखने के लिये रेजिडेंट या भारत सरकार से अनुमति लेना पड़ती थी। भूमि सुधार विभाग, वन विभाग और लोक निर्माण विभाग भी एक अंग्रेज अधिकारी के अधीन थे जिसकी सेवायें जम्मू कश्मीर सरकार ने भारत सरकार से प्रार्थना करके प्राप्त की थीं।

महाराजा प्रताप सिंह के शासनकाल में रियासत का प्रशासन चार भागों में विभाजित था। जम्मू प्रान्त के लिए अलग गर्वनर और कश्मीर प्रान्त के लिए अलग गवर्नर था। गिलगित का इलाका बजीर बजारत के अधीन और लद्दाख का इलाका भी बजीर बजारत अर्थात जिलाधीश के अधीन था।

जम्मू प्रान्त पांच जिलों में विभाजित था और जिले तहसीलों में विभाजित थे। महाराजा प्रताप सिंह ने अपने शासनकाल में जिलों की संख्या कम की।

सन् 1914 में प्रथम विश्व युद्ध आरम्भ हो गया। अंग्रेज़ों को रियासतों के राजाओं और नवाबों से आर्थिक और सैनिक सहायता की आवश्यकता पड़ी। महाराजा प्रताप सिंह ने अपनी सेनायें अंग्रेजी सरकार की सेवा में समर्पित कर दी। अंग्रेजों ने रियासत की सेना को युद्ध लड़ने के लिए भारत से बाहर कई अन्य देशों में भेजा यहां डोगरा सेना ने अपनी वीरता का प्रदर्शन करके ख्याति अर्जित की। भारतीय रियासतों के राजाओं की सेना की सहायता से अंग्रेजों ने अपने सहयोगियों के समर्थन से प्रथम विश्व युद्ध जीत

लिया। भारत में स्थित अंग्रेजी सरकार युद्ध जीतने के बाद रियासतों के राजाओं और नवाबों पर बहुत प्रसन्न हुई। अंग्रेजी सरकार ने महाराजा प्रताप सिंह की भी इस सन्दर्भ में प्रशंसा की।

महाराजा प्रतापसिंह ने डोगरा सेना को युद्ध में मिली बहुत बड़ी सफलता के बाद अंग्रेजी सरकार को रियासत की स्वायत्तता लौटाने के लिये 18 सितम्बर 1920 को प्रार्थना-पत्र भेजा। मार्च 1921 को लार्ड कैलमस्फोर्ट ने एक आदेश द्वारा महाराजा को उससे छीने हुए अधिकार सौंप दिये किन्तु साथ ही यह निर्देश भी दिया कि वह सीमान्त क्षेत्र की सुरक्षा तथा प्रशासनिक कार्यों में रेजिडेंट से विचार-विनिमय करता रहे। नये आदेश के बाद महाराजा ने पांच सदस्यीय मंत्री मंडल गठित किया जिस का प्रमुख महाराजा स्वयं था। नये मंत्री मंडल का गठन महाराजा ने जनवरी 1924 में किया। मंत्रियों को विभाग महाराजा की इच्छानुसार सौंपे गए। मंत्री मंडल के निर्णयों को वीटो करने का अधिकार महाराजा के पास था।

महाराजा रणवीर सिंह की भाँति महाराजा प्रताप सिंह को स्वेच्छा से प्रशासन चलाने का बहुत अधिक अवसर नहीं मिला। उन्हें कोई भी प्रशासनिक अथवा निर्माण कार्य करने से पूर्व रेजिडेंट अथवा अंग्रेजी सरकार की अनुमति लेना पड़ती थी किन्तु फिर भी उन के शासन काल में कुछ काम ऐसे भी हुए जो उल्लेखनीय हैं।

महाराजा ने रियासत में यातायात बढ़ाने के लिए कई नई सड़कों का निर्माण करवाया तथा जम्मू तथा कश्मीर घाटी को कार्ट रोड़ से जोड़ा। इस सड़क का निर्माण कार्य महाराजा रणवीर सिंह के समय में आरम्भ हुआ था किन्तु घाटी के सड़क द्वारा रावलपिण्डी से जुड़ जाने के बाद इस सड़क की अपेक्षा की जाने लगी थी और यह सड़क प्रायः बन्द हो गई थी। महाराजा ने अपने एक योग्य मंत्री को इस सड़क के निर्माण का काम सौंपा और 1913 में यह सड़क बनकर तैयार हो गई। इस के बनने से जम्मू और कश्मीर घाटी से व्यापार आरम्भ हो गया। शुरू-शुरू में यह सड़क महाराजा की निजी सड़क मानी जाती थी और इस सड़क पर गाड़ी चलाने के लिए महाराजा की अनुमति लेना पड़ती थी। किन्तु 1922 में महाराजा ने यह सड़क सब के लिए खोल दी।

महाराजा के शासनकाल में रियासत की नदियों में भीषण बाढ़ें आईं। जेहलम नदी ने तो 1893 और 1903 में तबाही ही मचा दी। नदी का पानी तट तोड़ कर खेतों में चला गया जिससे कृषि को बहुत-अधिक हानि पहुँची। इन बाढ़ों से जनहानि भी हुई। रेज़िडेंट ने भी बाढ़ नियंत्रण के लिए सुझाव भेजे। अन्ततः बाढ़ पर नियंत्रण पाने के लिए जेहलम नदी पर बांध बांधने और इसे गहरा करने का काम आरम्भ किया गया। रियासत में महाराजा के शासनकाल में महोरा स्थान पर पहला बिजली घर बना जिस से श्रीनगर को

बिजली प्रदान की गई। यह बिजली घर देश में दूसरा जल-विद्युत घर था। इस बिजली घर ने 1907 से काम करना आरम्भ किया।

रियासत को अन्न के क्षेत्र में स्वावलम्बी बनाने के लिए रियासत में कृषि विभाग की स्थापना की। खेतों की सिंचाई के लिए सात बड़ी नहरें बनवाईं। जिस का परिणाम यह निकला कि रियासत में अन्न-उत्पादन में विशेष वृद्धि हुई। अन्न संग्रह के लिए अन्न भंडारों का भी निर्माण किया गया। नगर निवासियों को अनाज वितरण करने के लिए कंट्रोल प्रणाली लागू की गई जिसके अन्तर्गत गांवों से इकट्ठा किया हुआ अनाज सस्ते मूल्य पर नगर के लोगों को वितरित किया जाता था। इस काम को व्यवस्थित रखने के लिए फूड-कन्ट्रोल-विभाग की भी स्थापना की गई।

रियासत के निर्धन लोगों की आर्थिक दशा को उन्नत करने के लिए कई नये उद्योग और धन्धे प्रारम्भ किये गये। महाराजा ने रेशम उद्योग को नया रूप देने के लिए इटली और फ्रांस से शहतूत के नये बीज मंगवाये और शहतूत की कई नर्सरियां स्थापित कीं जिससे इस उद्योग को नया प्रोत्साहन मिला। 1921 में लगभग 55,000 कश्मीरी रेशम-उद्योग में संलिप्त थे।

महाराजा ने जम्मू को रेल द्वारा जोड़ने के लिए स्यालकोट से जम्मू तक रेलवे सेवा आरम्भ करवाई। इससे सब से बड़ा लाभ यह हुआ कि जम्मू व्यापार की एक मण्डी के रूप में विकसित होने लगा। महाराजा ने शिक्षा के प्रचार और प्रसार के लिए कई नये स्कूल खोले। उन्होंने श्रीनगर में 1905 में श्री प्रताप कालेज और जम्मू में 1908 में प्रिंस आफ वेल्स कालेज की स्थापना डॉ॰ ऐनी वेसन्ट के प्रयासों को दृष्टि में रख कर की। इन कॉलेज़ों की स्थापना से पहले जम्मू व कश्मीर राज्य की प्रशासनिक सेवाओं में अधिकांश पंजाब के शिक्षित लोग काम करते थे, कॉलेजों की स्थापना के बाद रियासत के कई शिक्षित युवक प्रशासनिक सेवाओं में पंजाबियों के प्रतिद्वन्दी बनने लगे जिस का परिणाम यह निकला कि महाराजा ने सरकारी नौकरियों के लिए रियासत का निवासी होने का प्रमाण-पत्र प्राप्त करने की शर्त लगा दी। किन्तु प्रभावशाली पंजाबी परिवारों के लोग अधिकारियों से ऐसे प्रमाण-पत्र सहज में ही प्राप्त कर लेते थे। अन्ततः महाराजा ने 1925 में एक आदेश निकाला जिस के अन्तर्गत यह आवश्यक था कि रियासत में ज़मीन और नौकरी उसी को मिलेगी जो 'स्टेट सब्जेक्ट' अर्थात् रियासत का स्थायी निवासी होगा। इस आदेश का परिणाम यह निकला कि रियासत के शिक्षित युवकों के लिए सरकारी-विभागों में नौकरी प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त हो गया।

महाराजा ने रियासत में खनिज पदार्थों की खोज का काम आगे बढ़ाने के लिए जनरल सर्वे विभाग स्थापित किया। रियासत में चिकित्सा विभाग, वन- विभाग, कर

विभाग, शिक्षा-विभाग, पुरातत्व विभाग की स्थापना करके कई जन उपयोगी कार्य किये। श्री प्रताप म्युज़ियम की स्थापना भी इसी महाराजा के शासनकाल में हुई।

महाराजा प्रताप सिंह के शासनकाल की सब से बड़ी उपलब्धि यह रही कि भूमि सम्बन्धी कई नये सुधार हुए जिस के रियासत के किसानों की आर्थिक दशा में आशातीत परिवर्तन हुआ। सर बाल्टर लारेंस ने इस क्षेत्र में महाराजा की बहुत सेवा की। उसने ज़मीन के बन्दोबस्त का काम सन् 1898 में आरम्भ किया और 1912 में पूरा किया।

सर बाल्टर लारेंस के भूमि सुधार क़ार्य से पूर्व राज्य में ज़मीन की पैमायश के कोई विधिवत् नियम नहीं थे। ज़मीन का न तो कोई नक्शा ही तैयार किया जाता था और न ही उस का कोई रिकार्ड ही रखा जाता था। गाँव का पटवारी अपनी इच्छा से जिसे जितना कर लगा देता था, किसान को उतना ही मालिया देना पड़ता था। इस की अपील कही नहीं होती थी। फसल काटने के बाद किसानों को सरकारी अधिकारी बहुत तंग करते थे और उनसे मालिया के अतिरिक्त नज़राना (उपहार) भी स्वीकार करते थे। कई बार मालिया उगहाने में सरकारी सेना की भी सहायता ली जाती थी। किसानों से मालिया नकदी और अनाज दोनों रूपों में लिया जाता था।

किन्तु महाराजा के शासनकाल में बाल्टर लारेंस के सुझावों पर मालिया इकट्‌ठा करने में सेना की सहायता लेने की प्रथा को बन्द कर दिया गया। अनाज की बजाय किसानों से मालिया नकद लिया जाने लगा। मालिया की रकम निश्चित कर दी गई। रियासत में शताब्दियों से प्रचलित बेगार प्रथा (फोर्सड लेबर) बन्द कर दी गई। रियासत की पूरी ज़मीन की पैमायश की गई और इस को विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत किया गया और उसी के मुताबिक मालिया लगाया गया। रस्म प्रथा (उपहार) बन्द कर दी गई। सरकार द्वारा किसानों से गाय, घोड़ा, खच्चर, दूध, दही, घी, ऊन इत्यादि वस्तुएँ सीधे-सीधे नाम मात्र मूल्य देकर खरीदने की प्रथा पर भी पाबन्दी लगा दी गई। इस से किसानों को सब से बड़ा लाभ यह पहुँचा कि उन की वस्तुएँ उचित दामों पर बिकने लगीं।

बेगार प्रथा की समाप्ति किसानों और मजदूरों के लिए एक वरदान सिद्ध हुई। पहले किसानों को इस प्रथा के अन्तर्गत बहुत कष्ट झेलना पड़ते थे। राजा या सामंत जब एक स्थान से दूसरे स्थान को प्रस्थान करते तो उनका सामान किसान और मजदूर ही एक स्थान से उठा कर दूसरे स्थान तक पहुँचाते। इस से कई बार खेत बिना बुहाई के ही रह जाते। इसी प्रकार जब लड़ाईयां होती तब युद्ध-सामग्री को भी यही लोग उठा कर लड़ाई के मैदान में पहुँचाते। यदि ये लोग राजा या अधिकारी के लिए बेगार न करते तो सैनिक इन की पिटाई करते या इनके परिवार के लोगों को दंडित करते। इस प्रथा का प्रचलन कश्मीर के अतिरिक्त गिलगित में भी था। किसी समय इस प्रथा का प्रचलन आवश्यक

भी माना जाता था। किन्तु सड़कें बन जाने के बाद इस प्रथा को प्रचलित रखने का कोई औचित्य नहीं था।

महाराजा के शासनकाल से पहले सरकारी कर्मचारियों को वेतन देने में बड़ी ही अनियमितताएँ थीं। कई बार उन्हें एक वर्ष के बाद तो कई बार छह महीने के बाद वेतन मिलता था। किन्तु इनके शासनकाल में वेतन का भुगतान मासिक कर दिया जिससे राज्य के कर्मचारी भी प्रसन्न हो गये। सरकारी कर्मचारियों की सुविधा के लिए कई नये नियम बने। जिस के अन्तर्गत उन्हें छुट्टी लेने तथा सेवा निवृति के बाद पेन्शन प्राप्त करने का अधिकार भी मिला। इसी प्रकार पहले एक सिपाही की गलती का दंड उसके अधिकारी को भी दिया जाता था जो महाराजा ने बन्द कर दिया। नियम यह बनाया गया कि जो गलती करे वही दंड भुगते।

महाराजा रणवीर सिंह के समय में रियासत में तार व्यवस्था लागू हो गई थी। किन्तु महाराजा प्रताप सिंह के शासनकाल में तार व्यवस्था का पूरी रियासत में जाल ही बिछा दिया। टेलीफोन व्यवस्था का भी प्रचलन हुआ तथा जम्मू और श्रीनगर के बीच टेलीफोन सेवा आरम्भ हो गई।

महाराजा के शासनकाल के आरम्भ में अदालत की भाषा फारसी थी। इस भाषा का ज्ञान बहुत कम लोगों को था। स्टेट कौंसिल ने 1889 में फारसी के स्थान पर उर्दू को अदालत की भाषा बना दिया। महाराजा रणवीर सिंह ने डोगरी भाषा को जो महत्व दिया था वह भी समाप्त हो गया। बाद में उर्दू का ही रियासत में प्रचार और प्रसार होने लगा।

महाराजा ने शिक्षा के प्रसार के लिए दो कॉलेज़ों के अतिरिक्त रियासत में दो टैक्नीकल स्कूल, पच्चास माध्यमिक स्कूल और छह सौ प्राथमिक स्कूल खोले। इसके अतिरिक्त महाराजा ने मिशनरी स्कूलों को खोलने की अनुमति प्रदान कर दी। इसका परिणाम बड़ा ही सकारात्मक रहा। रियासत में शिक्षा का प्रसार हुआ।

महाराजा ने 1890 और 1910 में रियासत में फैले संक्रामक रोगों को ध्यान में रखकर जम्मू और श्रीनगर में एक-एक हस्पताल और अन्य शहरों और कस्बों में सरकारी डिस्पैंसरियें खोलीं ताकि लोगों को समुचित दवाईयां और डाक्टर की सलाह निःशुल्क उपलब्ध हो। रियासत में चेचक का टीका 1894 में आया और इससे कई लोगों को लाभ पहुँचा।

महाराजा प्रताप सिंह के शासनकाल में सीमान्त क्षेत्र में स्थानीय कबीलों तथा छोटी-छोटी रियासतों के सरदारों ने समय-समय पर जब उपद्रव किये और विद्रोह जैसी स्थिति पैदा कर दी तब महाराजा प्रताप सिंह के अतिरिक्त भारत सरकार भी चिन्तित हो उठी। सीमांत क्षेत्र राजनैतिक, व्यापारिक और भौगोलिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण

था। इस की सीमाएँ रूस, चीन, अफगानिस्तान आदि देशों के अति निकट थी। अत: उस क्षेत्र की किसी भी दृष्टि से उपेक्षा नहीं की जा सकती थी। इस दिशा में भारत सरकार ने पहल की। कश्मीर में उस ने रेजिडेंट पहले ही बैठा रखा था, अब सीमान्त क्षेत्र को अशान्त देखकर भारत सरकार ने वहाँ अपना राजनैतिक प्रतिनिधि भी सितम्बर 1889 में भेज दिया। गिलगित क्षेत्र का प्रशासन प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से इसी प्रतिनिधि के हाथ में था। वह नागरिक और सैनिक दोनों मामलों में रियासत के प्रशासकों को निर्देश देता था। उस का नियंत्रण पूरे प्रशासन पर था।

सन् 1891 के अक्तूबर मास में गिलगित में यह अफवाह फैली कि रूसी सेना हुंजा और नगर के सरदारों के आमंत्रण पर पामीर पर्वत के दर्रे से इस क्षेत्र में प्रवेश करने की योजना बना रही है। ऐसी स्थिति में सीमाओं की रक्षा करने के लिए गिलगित में स्थित अंग्रेजों के राजनैतिक प्रतिनिधि ने उन रियासतों के सरदारों को पत्र लिख कर अग्रिम सीमा चौकियों तक उन के क्षेत्र से गुजर कर जाने वाली सड़क का निर्माण करने की अनुमति मांगी। जब सरदारों ने अनुमति न दी तो सेना आगे बढ़ी और उसने हुंजा नदी को पार करके निल्ट दुर्ग पर हमला कर दिया। तोप की गोलाबारी से भी इस दुर्ग को बहुत क्षति पहुँची। नगर राज्य का बजीर इस लड़ाई में मरा। अन्तत: डोगरा सेना ने इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया। डोगरा सेना जब नगर राज्य के भीतरी भाग में पहुँच गई तो वहाँ के राजा उज़रखान ने 26 दिसम्बर 1891 को आत्मसमर्पण करके अधीनता स्वीकार कर ली। नगर राज्य के पतन का समाचार सुनते ही हुंजा राज्य का सरदार अली खान अपने विश्वस्त साथियों को साथ लेकर चीनी तुर्किस्तान की ओर भाग गया। डोगरा सेना के कमांडर हज़ारासिंह ने हुंजा और नगर जैसे छोटे-छोटे राज्यों को विजित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस लड़ाई का परिणाम यह निकला कि नगर और हुंजा के सरदार शक्तिहीन हो गये।

सन् 1870 में चित्तराल के हाकम इमाम-उल-मुल्क ने महाराजा रणवीर सिंह के साथ संधि करके उसकी अधीनता स्वीकार कर ली थी। अगस्त 1892 में उस का देहावसान हो गया। उसका बड़ा बेटा नज़ाम -उल-मुल्क उस समय यासीन का गर्वनर था। अत: इमाम-उल मुल्क के दूसरे बेटे अफजुल-उल-मुल्क ने अपने अन्य भाईयों की हत्या करके चितराल का मेहतार (हाकम) होने की घोषणा कर दी। उसने अपने बड़े भाई की हत्या करने के लिए यासीन की ओर भी प्रस्थान किया। किन्तु उसके प्रस्थान का समाचार सुनते ही अफजुल-उल-मुल्क गिलगित की ओर भाग गया। इस प्रकार अफजुल-उल-मुल्क ने चितराल पर अधिकार कर लिया और कश्मीर दरबार ने उसे मान्यता दे दी। किन्तु दो मास के बाद उसके चाचा शेर अफज़ल ने उसकी हत्या करके चितराल पर अधिकार कर लिया। चितराल के उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर चितराल क्षेत्र में जब अशान्ति का वातावरण परिव्याप्त हो गया तब वहाँ शांति स्थापना के लिये कश्मीर दरबार

को भी गतिशील होना पड़ा। कश्मीर दरबार ने शेर अफज़ल के शासन को मान्यता नहीं दी।

कश्मीर दरबार ने इमाम-उल-मुल्क के बड़े बेटे निज़ाम-उल-मुल्क को चितराल पर आक्रमण करने के लिए सहायता की और उसने चितराल को अपने अधिकार में ले लिया। शेर अफज़ल वहाँ से भाग कर पुनः अफगानिस्तान चला गया। किन्तु पहली जनवरी 1895 को उसके सौतेले भाई अमीर उलमुल्क ने उसकी हत्या करके चितराल की राजगद्दी पर अधिकार कर लिया। किन्तु शेर अफज़ल ने जडाल क्षेत्र के सरदार के सहयोग से चितराल पर पुनः आक्रमण कर दिया। उसके हमले को रोकने के लिए जनरल बाज़सिंह और मेजर भीखनसिंह डोगरा सेना के साथ जब आगे बढ़े तो दोनों दलों के मध्य भयंकर लड़ाई हुई जिस में जनरल बाज सिंह मारा गया।

डोगरा जनरल बाज सिंह की मृत्यु का संवाद जब कश्मीर दरबार और कलकता में पहुँचा तो दोनों ने चितराल पर अधिकार बनाये रखने के लिये और सैनिक दल वहाँ भेजने का निर्णय लिया। कश्मीर की सेना ने कर्नल केली के नेतृत्व में उमरा खां को चितराल क्षेत्र खाली करने के लिये विवश कर दिया। 20 अप्रैल 1895 को चितराल के विद्रोहियों का दमन करने में डोगरा सेना सफल हो गई। इस अभियान के पश्चात् गिलगित और चितराल क्षेत्र में शान्ति व्याप्त हो गई।

सीमान्त क्षेत्र में विद्रोहात्मक गतिविधियों को ध्यान में रखते हुए महाराजा प्रताप सिंह ने अपनी सेना का गठन अंग्रेज सरकार के निदेशानुसार किया। अंग्रेज सरकार ने दिसम्बर 1888 में भारतीय रियासतों में इम्पीरियल सर्विस टूपस गठित करने की घोषणा की थी। सरकार का ऐसी सेना को गठित करने के पीछे उद्देश्य यह था कि रियासत की सेना को नियमित प्रशिक्षण देकर उसे ब्रिटिश सैनिकों के बराबर खड़ा किया जाए। इम्पीरियल सर्विस टूपस में सैनिक उसी रियासत के होते थे किन्तु अधिकारी भारत सरकार के होते थे। महाराजा प्रताप सिंह ने रियासत जम्मू कश्मीर में अंग्रेजों को इम्पीरियल सर्विस टूपस खड़े करने की अनुमति दे दी थी। महाराजा की सेना में सैनिकों की कुल संख्या 6, 283 थी जिन में 3, 370 इम्पीरियल सर्विस ट्रपस में थे। महाराजा ने जम्मू कश्मीर में सैनिक शिक्षा के प्रावधान के लिए 1906 में केडिट स्कूल की भी स्थापना की जिस में सैनिकों, अधिकारियों, सरकारी अफसरों तथा अन्य योग्य विद्यार्थियों को प्रशिक्षण दिया जाता था।

जम्मू कश्मीर की सेना ने प्रथम विश्वयुद्ध में भी भाग लिया। ब्रिटिश सरकार के आमंत्रण पर अगस्त 1914 को ले० कर्नल रघुवीर सिंह तथा ले० कर्नल दुर्गा सिंह बहादुर के नेतृत्व में 1, 174 जम्मू कश्मीर के सैनिक फरवरी 1915 को मिश्र पहुँचे और वहाँ से

वे जर्मन सैनिकों से लड़ने के लिए पूर्वी अफ्रीका के मोर्चों में गए। 'जम्मू एण्ड कश्मीर आर्मस' पुस्तक के अनुसार प्रथम विश्वयुद्ध में रियासत के इक्कतीस हज़ार सैनिकों ने भाग लिया और रियासत ने इन पर एक करोड़ रुपये के लगभग व्यय किया। डोगरा सेना ने अफ्रीका में विपरीत जलवायु के होते हुए भी लड़ाई के मोर्चों पर अपनी असाधारण वीरता का जो ज्वलंत प्रमाण प्रस्तुत किया उसकी प्रशंसा विश्वभर में हुई।

महाराजा प्रताप सिंह 1885 से लेकर 1925 तक जम्मू कश्मीर के शासक रहे। ब्रिटिश सरकार ने 1893 में उन्हें चाहे 'स्टार ऑफ इंडिया' की उपाधि से विभूषित किया किन्तु इस सरकार ने महाराजा पर इतना अधिक अंकुश लगाया कि वे मात्र एक कठपुतली राजा ही बने रहे।

महाराजा प्रताप सिंह ने चार विवाह किये किन्तु उनके घर फिर भी सन्तान न हुई। दरबारियों और सम्बन्धियों के अनुरोध पर 35 वर्ष की आयु में उन्होंने वीरपुर के फेरू सिंह चाड़क की बेटी से विवाह किया। महाराजा जब पच्चास वर्ष के थे तो रानी चाड़क ने श्रीनगर में एक बेटे को जन्म दिया जिस का नाम महाराजा ने कश्मीर सिंह रखा। किन्तु उनका वह पुत्र भी छह मास की आयु भोग कर चल बसा। इस घटना के बाद महाराजा और दुखी हो गये। जब उनके उत्तराधिकारी का प्रश्न आया तो यह भी उनके लिए एक समस्या बना। महाराजा के दो सगे भाई रामसिंह और अमर सिंह थे। रामसिंह के दो पुत्र नारायण सिंह और भगवान सिंह अल्पायु में ही मर गये थे। राजा अमर सिंह का एक पुत्र अल्पायु में ही मर चुका था और दूसरा पुत्र हरिसिंह इंगलैंड में पढ़ रहा था। अतः महाराजा ने पुंछ के राजा बलदेव सिंह के पुत्र जगदेव सिंह को अपने पास बुला लिया। राजा अमर सिंह का पुत्र हरिसिंह महाराजा का सगा भतीजा था, अतः इंगलैंड से लौटने के बाद जब वह जम्मू आया तो उसे जगदेव सिंह का महाराजा का दत्तक पुत्र बनना पसंद न आया। दरबार में भी अधिकांश लोग हरिसिंह के ही पक्ष में थे। महाराजा लोगों की भावनाओं को ठेस भी नहीं पहुँचाना चाहता था।

उन्हीं दिनों पुंछ के राजा सुखदेव सिंह की मृत्यु हो गई। महाराजा प्रताप सिंह ने जगदेव सिंह को पुंछ का राजा घोषित करके उसे पुंछ भेज दिया और हरिसिंह को अपना उत्तराधिकारी बनाया।

महाराजा प्रताप सिंह जब पचहतर वर्ष के थे तो उनका स्वास्थ्य एकदम बिगड़ गया। उसी वर्ष छटे नवरात्रे के दिन उन्होंने श्रीनगर में शरीर छोड़ दिया। उन का अन्तिम संस्कार भी श्रीनगर के राम बाग में सम्पन्न हुआ।

महाराजा प्रताप सिंह का व्यक्तित्व बहुत आकर्षित नहीं था। वे नाटे कद के थे और अपने सिर पर बड़ी मोटी पगड़ी बांधते थे। वे धार्मिक वृत्ति के थे, अतः अपना

अधिकांश समय पूजा-पाठ में ही व्यतीत करते थे। साधु-संतों का उपदेश सुनने में उनकी विशेष रुचि थी। स्वामी नित्यानन्द उन के गुरुओं में से एक थे।

महाराजा को अफीम खाने का व्यसन था और इसी कारण वे सुस्त और बीमार रहते थे। उन्हें रंगमंच और संगीत का भी बहुत शौक था। उन्होंने पांच हजार रुपये व्यय करके जम्मू में दीवान मन्दिर में नाटक के लिए मण्डल बनवाया। उन्होंने श्रीनगर में बसंत बाग में भी एक रंगशाला बनवाई जहाँ नाटकों का मंचन होता था। उन्हीं के समय अमेच्चुर क्लब की स्थापना हुई। अमींचन्द और रमण महाराजा के दरबारी गायक थे। वे अपने दरबारी संगीतकारों के अतिरिक्त अन्य संगीतकारों का संगीत भी सुनते थे। उन की रुचि क्रिकेट में भी थी। उन्होंने एक क्रिकेट टीम गठित की जिसके कप्तान रामकृष्ण थे। उन के समय में साहित्य और पत्रकारिता के क्षेत्र में भी अभिवृद्धि हुई। उन का युग सुधार और समृद्धि का युग रहा।

महाराजा हरिसिंह

महाराजा हरिसिंह का राज्याभिषेक महाराजा प्रताप सिंह के उत्तराधिकारी के रूप में मार्च 1926 को जम्मू में पारम्परिक ढंग से हुआ।

हरिसिंह डुग्गर के पहले ऐसे नरेश थे जिन्होंने राजगद्दी पर बैठने से पूर्व योरुप की यात्रा की थी और जिन्हें विभिन्न देशों की शासन प्रणालियों का पूर्ण परिचय था।

महाराजा हरिसिंह का जन्म 1895 में राजा अमर सिंह के घर हुआ। राजा अमर सिंह ने इनकी शिक्षा-दीक्षा का समुचित प्रबन्ध किया। प्रारम्भ में राजा अमर सिंह ने इन्हें पढ़ाने के लिए एक अंग्रेज अध्यापिका को नियुक्त किया और जब ये आठ वर्ष के हो गए तो उन्होंने इन्हें पढ़ने के लिए अज़मेर में स्थित 'मयो' कॉलेज में भेज दिया। इस कॉलेज में केवल राजा, महाराजों, नवाबों तथा उच्चाधिकारियों के बच्चों को ही शिक्षा दी जाती थी। हरिसिंह मयो कॉलेज से शिक्षा प्राप्त करके बाहर निकले तो इनका चयन देहरादून के इम्पीरियल कैडट कोर में हुआ और वहाँ से प्रशिक्षण प्राप्त करके जब ये जम्मू कश्मीर राज्य में आये तो महाराजा प्रताप सिंह ने सन् 1914 में इन की नियुक्ति रियासत जम्मू कश्मीर के सेनापति के रूप में की। उसी वर्ष विश्वयुद्ध भी छिड़ गया। इनको विदेश जाने वाली रियासत की सेना को लड़ाई का प्रशिक्षण देने का काम सौंपा गया।

सन् 1922 में ब्रिटिश सरकार ने महाराजा प्रताप सिंह को जब उन के प्रशासन सम्बन्धी अधिकांश अधिकार सौंप दिये तो महाराजा ने इन्हें स्टेट कौंसिल का वरिष्ठ सदस्य नियुक्त किया। इस से राजगद्दी पर बैठने से पूर्व ही इन्हें राजनीति और प्रशासनिक कार्यों का अनुभव प्राप्त हो गया था। अतः सिंहासन पर बैठते ही उन्होंने प्रशासन में आवश्यक सुधार लाने का यत्न किया। उन्होंने 1924 में गठित कौंसल में कुछ परिवर्तन

किया और वरिष्ठ सदस्य का पद इस आशय से समाप्त किया कि वे स्वयं कौंसिल की अध्यक्षता कर सकें। महाराजा ने जी. ई. सी वैक फिल्ड को रियासत का सचिव नियुक्त किया और विदेश विभाग के लिए एक अलग सचिव नियुक्त किया। इसी प्रकार कर्नल राय बहादुर जनक सिंह जो पहले राजस्व मंत्री थे उसे सेना का मंत्री बनाया और उन्हें मेजर जनरल का पद दिया। महाराजा ने ले. कर्नल आर. डी. अलेक्जेडर को सेना का अध्यक्ष बनाया।

महाराजा ने मंत्रिमंडल के गठन के बाद अपनी प्रजा की कठिनाईयों को दूर करने का यत्न किया। उन्होंने यह अनुभव कर लिया था कि रियासत में निर्धनता का कारण प्रजा का शोषण है। प्रजा का शोषण करने में मुख्य भूमिका साहूकारों के अतिरिक्त सरकारी कर्मचारियों की होती है। महाराजा के गद्दी पर बैठते समय रियासत में अधिकांश कर्मचारी राज्य से बाहर के थे, वही प्रशासन में भ्रष्टाचार फैलाते थे। महाराजा ने घोषणा की कि भविष्य में सरकारी नौकरी पर उन्हीं लोगों को नियुक्त किया जाएगा जो रियासत के मूल निवासी (स्टेट सब्जेक्ट) होंगे। महाराजा की इस घोषणा का राज्य से बाहर से आये कर्मचारियों और उनसे सहानुभूति रखने वाले लोगों ने बहुत विरोध किया। किन्तु महाराजा ने उसकी एक न सुनी। इस घोषणा के बाद महाराजा ने रियासत से बाहर के केवल उन लोगों को सरकारी पदों पर नियुक्त किया जिन की सेवाएँ राज्य के लिए वांछनीय थी।

महाराजा ने यह अनुभव किया कि रियासत में तब तक समृद्धि का दौर नहीं लाया जा सकता जब तक रियासत में निरक्षरता का साम्राज्य छाया हुआ है। उन्होंने अपनी प्रजा को शिक्षित करने के लिए प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य की और तदार्थ उन्होंने रियासत में सैकड़ों प्राथमिक तथा माध्यमिक स्कूल खोले। नये महाराजा ने रियासत के कुशाग्र विद्यार्थियों को छात्रवृतियां प्रदान करके उन्हें उच्च-शिक्षा प्राप्त करने के लिए योरुप, अमेरिका तथा अन्य कई देशों में भेजा। जब ये विद्यार्थी प्रशिक्षण प्राप्त करके वापिस लौटे तो महाराजा ने उन्हें सरकारी सेवा में नियुक्त किया। इससे प्रशासन में भी कुशलता आ गई और विद्यार्थियों में भी प्रतिद्वन्द्वता पैदा हुई और वे पूरी लग्न के साथ विद्या-अध्ययन करने लगे।

महाराजा ने कृषकों की दशा सुधारने के लिये कई ऐसे प्रगातिशील पग उठाये जिसके कारण किसान और मजदूर साहूकारों के चंगुल से मुक्त हो सकें। महाराजा ने एक ऐसा कानून बनाया जिस के अन्तर्गत बाल-विवाह वर्जित था। नये कानून में यह प्रावधान था कि विवाह के समय लड़के की आयु 18 वर्ष से अधिक और लड़की की आयु 14 वर्ष से ऊपर होनी चाहिए।

महाराजा ने न्याय व्यवस्था में भी सुधार लाने का प्रयास किया। रियासत में एक उच्च-न्यायालय की स्थापना की गई जिसका कार्य नीचे की अदालतों की अपीलें सुनना तथा दीवानी और आपराधिक मुकद्दमों को सुलझाना था। महाराजा ने तीन अनुभवी न्यायाधीशों पर आधारित एक बोर्ड भी स्थापित किया जो महाराजा को विधि सम्बन्धी परामर्श देता था।

महाराजा ने रियासत में खेतों की सिंचाई के लिए एक नई व्यवस्था अपनाई जिससे नहरों की दशा सुधारी गई और खेतों तक पानी पहुँचाया गया। इस से रियासत में अन्न-उत्पादन में भी वृद्धि हुई।

महाराजा ने महौरा के बाद जम्मू में जल विद्युत परियोजना का काम आरम्भ करवाया जिससे जम्मू नगर भी बिजली के बल्बों से जगमगा उठा। महाराजा ने राजस्व में भी आवश्यक सुधार किये और अनावश्यक कर उठा लिये जिससे वाणिज्य में बहुत ही बढ़ोत्तरी हुई।

महाराजा ने सामाजिक स्थिति को सुधारने का भी यत्न किया। उन्होंने सोलह वर्ष से कम आयु के लड़कों के लिए धूम्रपान करने पर पाबन्दी लगाई। हिन्दुओं में विधवा विवाह की अनुमति नहीं थी किन्तु महाराजा ने 1933 में एक एक्ट द्वारा विधवा विवाह को वैध ठहरा दिया। उन दिनों रियासत के कई कबीलों में लड़कियों को विक्रय करने अथवा लड़की के विवाह पर दूल्हा पक्ष के लोगों से 'रुम प्रथा' के अन्तर्गत धन ऐंठने की प्रथा थी। महाराजा ने कानून बना कर इस प्रथा पर पाबन्दी लगा दी। इसी प्रकार महाराजा ने लद्दाख क्षेत्र में प्रचलित बहुपति प्रथा को भी कानून द्वारा बन्द करवाया। महाराजा ने 1932 में हरिजनों को मन्दिरों में प्रवेश की अनुमति प्रदान करके छूत-छात के रोग को मिटाने का भरसक प्रयास किया। महाराजा ने अपने हाथ से हल चला कर राजपूतों को कृषिकर्म करने के लिए प्रोत्साहित किया। ऐसा करना इसलिए आवश्यक था क्योंकि राजपूतों के कई कबीले आजीविका का साधन केवल सैन्य कर्म ही मानते थे।

महाराजा ने कृषि विभाग, देहात सुधार विभाग, चिकित्सा विभाग, उद्योग और वाणिज्य विभाग आदि को पुनर्गठित किया। इनमें व्याप्त त्रुट्टियों को दूर करने के लिए आवश्यक पग उठाये। रियासत में कई नई सड़कें बनवाई, पुल बनवाये। वाणिज्य और व्यापार को प्रोत्साहन देने के लिए जम्मू कश्मीर बैंक की स्थापना की। नये सुधारों से महाराजा अपनी प्रजा में बहुत ही लोकप्रिय हुआ।

महाराजा ने प्रशासन में सुधार लाने के बाद सीमान्त क्षेत्र की ओर विशेष ध्यान देना शुरू किया। ब्रिटिश सरकार ने महाराजा प्रताप सिंह को चाहे सभी अधिकार लौटा दिये थे किन्तु फिर भी गिलगित बज़ारत में ब्रिटिश राजनैतिक अधिकारी ही प्रशासन चलाता

था। महाराजा ने भारत में स्थित ब्रिटिश सरकार से इस दिशा में पत्र व्यवहार किया और गिलगित ऐजेंसी को उठाने का अनुरोध किया। किन्तु ब्रिटिश सरकार ने महाराजा के इस अनुरोध को तो स्वीकार नहीं किया और इसके विपरीत महाराजा को गिलगित बजारत का नियंत्रण लीज़ पर साठ वर्ष के लिए ब्रिटिश सरकार को देने के लिए दबाव डाला। महाराजा ने इस प्रस्ताव का विरोध तो किया किन्तु अन्ततः महाराजा को ब्रिटिश सरकार की बात माननी ही पड़ी और उसने कश्मीर में स्थित ब्रिटिश रेजिडेंट के साथ एक नई संधि पर हस्ताक्षर किये जिसके अन्तर्गत महाराजा ने गिलगित को ब्रिटिश सरकार को इस शर्त पर सौंपा कि गिलगित के क्षेत्र पर प्रशासन चाहे ब्रिटिश राजनैतिक प्रतिनिधि का हो किन्तु यह क्षेत्र जम्मू कश्मीर राज्य का ही भाग रहेगा। इस नई संधि से गिलगित का नियंत्रण महाराजा के हाथ से निकल कर ब्रिटिश सरकार के हाथ में आ गया।

ब्रिटिश सरकार भारत में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा संचालित स्वतन्त्रता-आन्दोलन से भयभीत भी थी। अतः सरकार ने भारत के नेताओं के साथ लंदन में 1930 में गोलमेज सम्मेलन का इस उद्देश्य से आयोजन किया कि भारत की राजनैतिक स्थिति में स्थिरता लाई जा सके। इस सम्मेलन में ब्रिटिश सरकार ने महाराजा हरिसिंह को भी भारतीय 'रियासतों के शासकों के प्रतिनिधि के रूप में आमंत्रित किया। ब्रिटिश सरकार को आशा थी कि महाराजा सम्मेलन में ब्रिटिश सरकार का पक्ष लेंगे। किन्तु महाराजा ने अपने भाषण में अपनी निष्ठा अपने देश के प्रति व्यक्त करते हुए कहा कि हम अपने देशवासियों के साथ हैं और हम ब्रिटिश राष्ट्र मंडल में सम्मान और समता की स्थिति चाहते हैं।'

महाराजा के इस भाषण ने ब्रिटिश सरकार को चौंका दिया। अतः सरकार ने महाराजा को सबक सिखाने के लिए कश्मीर में साम्प्रदायिक उपद्रव आरम्भ कराने की योजना बनाई। कश्मीर घाटी में मुसलमानों की जनसंख्या बहुत अधिक थी। किन्तु कश्मीर का महाराजा हिन्दू था। कश्मीर में स्थित अंग्रेज रेजिडेंट ने उन कश्मीरी मुसलमान युवकों को महाराजा के विरुद्ध भड़काया जो मुस्लिम-विश्व विद्यालय से उच्च-शिक्षा प्राप्त करके घाटी में अभी लौटे ही थे। इन युवकों ने महाराजा की सरकार पर यह आरोप लगाया कि सरकारी नौकरियों में कश्मीर की सरकार मुसलमानों के साथ भेद-भाव करती है और हिन्दुओं को सरकारी नौकरियों में प्राथमिकता देती है। महाराजा हरिसिंह लंदन से जब कश्मीर लौटे तब साम्प्रदायिकता की यह ज्वाला कश्मीर घाटी में पूरी तरह फैल चुकी थी। इस आग को भड़काने में उन कश्मीरी युवकों ने सक्रिय भूमिका निभाई जिन्होंने अखिल कश्मीर मुस्लिम सम्मेलन में भाग लिया, जिसका आयोजन लाहौर में 1930 को हुआ था। महाराजा के विरुद्ध रियासत से बाहर की कुछ संस्थाओं ने मिथ्या प्रचार किया और कश्मीर-घाटी में ऐसा साहित्य वितरित किया जिसे पढ़ कर कश्मीर के मुसलमान और भी भड़क उठे। उन का आन्दोलन जब पूरी घाटी में फैल गया तो

महाराजा ने आन्दोलनकारियों का दमन करने के लिए उनके नेताओं को जेल में बन्द कर दिया। किन्तु इससे भी आन्दोलन शान्त न हुआ। अन्ततः महाराजा ने आन्दोलनकारियों के नेताओं से बातचीत करके उनके साथ समझौता कर लिया और उनकी कई माँगें मान लीं। आन्दोलन अभी शान्त ही हुआ था कि उत्तर प्रदेश के एक मुसलमान नेता ने नगर में एक जनसभा में ऐसा उत्तेजनात्मक भाषण किया कि जिससे आन्दोलन पुनः भड़कने की सम्भावना पैदा हो गई। प्रशासन ने उस नेता को गिरफ्तार कर लिया और उस के विरुद्ध न्यायालय में याचिका दायर की। न्यायालय ने उसे तीन वर्ष का दंड सुनाया।

श्रीनगर में उस नेता को दंडित करने का समाचार आग की तरह फैला। हज़ारों लोग इकट्ठे हो गये और उन्होंने एक जलूस के रूप में अदालत की ओर प्रस्थान किया पुलिस ने इस जलूस को रोकने का बहुत प्रयास किया किन्तु जब यह जलूस पीछे न हट तो पुलिस ने गोली चला दी जिससे इक्कीस व्यक्ति हताहत हुये। यह घटना 13 जुलाई 1931 को घटित हुई। इक्कीस लोगों के एक साथ शहीद होने के बाद तो यह आन्दोलन प्रशासन के नियंत्रण से भी बाहर हो गया।

महाराजा ने गोली कांड की जाँच करने के लिए एक कमेटी का गठन किय किन्तु कश्मीरी मुसलमानों के नेताओं ने इस कमेटी की निष्पक्षता पर सन्देह व्यक्त करते हुए इसका बहिष्कार किया। भारत के वायसराय ने महाराजा को सलाह दी कि वे इस कमेटी में एक मुसलमान न्यायाधीश को भी सम्मिलित करें किन्तु महाराजा ने वायसराय की यह सलाह स्वीकार नहीं की। महाराजा ने अपने अंग्रेज प्रधानमंत्री को भी बर्खास्त कर दिया और उसके स्थान पर राजा हरिकृष्ण कौल को नया प्रधानमंत्री नियुक्त किया।

राजा हरिकृष्ण कौल ने आन्दोलनकारियों से बात-चीत की और उनकी कई माँगें स्वीकार करते हुए जेलों में बन्द आन्दोलनकारियों को मुक्त कर दिया। किन्तु कई मुस्लिम संस्थाओं ने राजा हरिकृष्ण कौल के साथ हुए समझौते को अस्वीकार करते हुए आन्दोलन को जारी रखा।

ब्रिटिश सरकार ने महाराजा को विकट स्थिति में फंसे हुए देखकर यह चेतावनी दी कि वह चौबीस घंटे के भीतर उनकी निम्न तीन शर्तें स्थिति में सुधार लाने के लिए स्वीकार करें:-

---

"As Indians are loyal to the land whence we derive our birth and infant nature we stand as solidly as the rest of our country men for our land's enjoyment of a position of honour and equality in the British Common-wealth of Nations."

Jammu and Kashmir Arms-by Majo general D.K. Palit.

1. मुसलमानों की शिकायतों को दूर करने के लिए आवश्यक पग उठाये।
2. मुसलमानों की माँगों की जाँच एक ब्रिटिश अधिकारी से करवाये।
3. वह योरुप के किसी आई. सी. एस अधिकारी को अपनी रियासत का प्रधानमंत्री बनाये।

महाराजा ने रियासत में शांति और स्थिरता लाने के लिए ब्रिटिश सरकार की उपरोक्त शर्तें स्वीकार कर लीं और उसे सूचित किया कि वह जाँच के लिए कमेटी का गठन करने को तैयार है। महाराजा ने बंदी सभी आन्दोलनकारियों को मुक्त कर दिया।

अभी कश्मीर घाटी में आन्दोलन शान्त हुआ ही था कि जम्मू और मीरपुर में साम्प्रदायिक दंगे भड़क उठे। जम्मू कश्मीर की पुलिस जब इन दंगों पर नियंत्रण न पा सकी तो महाराजा ने ब्रिटिश सरकार से सहायता माँगी। ब्रिटिश सरकार ने मीरपुर में सैनिकों की एक कम्पनी तथा जम्मू में दो कम्पनियां भेज कर एक सप्ताह में ही इन उपद्रवों पर नियंत्रण पा लिया।

जम्मू और कश्मीर में भड़के साम्प्रदायिक दंगों के बाद महाराजा ने यह संकल्प लिया कि भविष्य में वे ब्रिटिश सरकार से अपने सम्बन्ध सुधारेंगें और उसे सन्तुष्ट रखने का यत्न करेंगे। उन्हें यह आभास मिल चुका था कि उनकी गद्दी केवल तब तक सुरक्षित है जब तक ब्रिटिश सरकार की उन पर कृपा है। अत: उन्होंने ब्रिटिश सरकार के निर्देशानुसार 12 नवम्बर 1931 को सर बी जे. गलांसी की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की जिस में हिन्दुओं का एक प्रतिनिधि और मुसलमानों के दो प्रतिनिधि लिये गए। जम्मू का हिन्दू प्रतिनिधि बाद में इस कमेटी से त्यागपत्र दे कर बाहर निकल गया। फिर भी कमेटी ने अपना काम पूरा किया और महाराजा से सिफारिश की कि वह सरकारी नौकरियों में भर्ती के लिए शिक्षा के स्तर का ध्यान रखे। किसी भी धर्म अथवा सम्प्रदाय के लोगों की उपेक्षा न करे। अनावश्यक कर हटा ले और भूमि सम्बन्धी आवश्यक सुधार करे। वह रियासत में बेरोजगारी को दूर करने के लिए उद्योग धन्धों को प्रोत्साहन दे।

कश्मीर घाटी और जम्मू प्रान्त में भड़के साम्प्रदायिक आन्दोलनों का प्रभाव यह पड़ा कि इन दोनों प्रान्तों में राजनैतिक गतिविधियां सक्रिय हो गई। कश्मीर घाटी में एक नई राजनैतिक संस्था स्थापित हुई जिसका नाम 'जम्मू एण्ड कश्मीर मुस्लिम कान्फ्रेंस' रखा गया। इस संस्था का गठन अक्तूबर 1932 को हुआ और शेख मुहम्मद अब्दुल्ला इसके प्रधान निर्वाचित हुए। शेख अब्दुला ने जब यह घोषणा की कि जम्मू कश्मीर का सर्वांग विकास तभी सम्भव है जब सभी सम्प्रदायों के लोग मिल जुलकर प्रयास करें तो कुछ उग्र विचारों के मुसलमान नेताओं ने शेख अब्दुल्ला का साथ छोड़ दिया और

मुसलमानों के लिए नई राजनैतिक संस्था का गठन किया जिसका उद्देश्य कश्मीर में मुस्लिम आधिपत्य स्थापित करना था।

शेख अब्दुल्ला के नेतृत्व में कश्मीर में आन्दोलनों का एक दौर ही चल पड़ा। मार्च 1933 को उन्होंने असहयोग आन्दोलन चलाया जो बहुत ही सफल रहा। अन्तत: महाराजा को आन्दोलनकारियों की माँग स्वीकार करनी ही पड़ी। महाराजा ने संवैधानिक सुधारों के लिए सर बी. जे ग्लांसी की अध्यक्षता में एक कमेटी गठित की जिस ने महारांजा को सिफारिश की कि वे रियासत में विधान सभा का गठन करें जिसमें लोगों के निर्वाचित सदस्य भी हो। परिणामत: महाराजा ने 1934 में 'प्रजा सभा' के लिए चुनाव करवाया। प्रजा सभा में कुल 75 सदस्य रखे गये जिन में 33 सदस्यों का चुनाव करवाया गया और 42 सदस्य महाराजा द्वारा मनोनीत किये गये। प्रजा सभा में मुसलमानों के लिए केवल 21 सीटें ही रखी गई थीं जिन में 19 पर शेख अब्दुला की मुस्लिम कान्फ्रेंस ने विजय प्राप्त की। प्रजा सभा के चुनाव में केवल वकील, डाक्टर, लम्बरदार, सेवानिवृत्त अधिकारी पुजारी और आठवीं पास लोगों को ही वोट देने का अधिकार दिया गया था। किन्तु फिर भी इस चुनाव से एक बात स्पष्ट हो गई कि कश्मीर घाटी में शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ही मुसलमानों के मुख्य प्रतिनिधि हैं।

प्रजा सभा को सीमित अधिकार दिये गए थे। उसके सदस्य सभा में केवल प्रस्ताव प्रस्तुत कर सकते थे। बिल पेश कर सकते थे, बजट पर बहस कर सकते थे किन्तु वे महाराजा के 'प्रिवी-पर्स' पर कोई टीका टिप्पणी नहीं कर सकते थे।

प्रजा-सभा के गठन से केवल एक लाभ यह हुआ कि जम्मू कश्मीर रियासत लोकतन्त्र की प्रणाली की ओर अग्रसर होने लगी। प्रजा-सभा की स्थापना के बाद मुस्लिम कान्फ्रेंस के दृष्टिकोण में भी अन्तर आया और उसने भी यह अनुभव किया कि लोक-तन्त्र ढंग से सत्ता प्राप्त करने के लिए उसे सभी सम्प्रदायों के लोगों का समर्थन प्राप्त करना होगा।

महाराजा हरिसिंह ने भी नई उभरती राजनैतिक संस्थाओं को तथा रियासत के लोगों को 1932 में अभिव्यक्ति और प्रैस की अनुमति दे दी। महाराजा ने 1936 में रियासत में एक नया प्रशासनिक ढांचा खड़ा किया और सर एन. गोपालास्वामी अय्यंगर को रियासत का प्रधान मंत्री नियुक्त किया। गोपाला स्वामी अय्यंगर राष्ट्र वादी विचारों के थे अत: उन के आने के बाद रियासत में क्षेत्रीय अथवा साम्प्रदायिक राजनीति की जगह धर्म निरपेक्ष तथा राष्ट्रवादी शक्तियों को प्रबल बल मिला।

जम्मू में भी 1920 के बाद राजनैतिक गतिविधियाँ बढ़ीं। उन दिनों जम्मू प्रान्त में सामाजिक और राजनैतिक संस्था मुख्य रूप से एक ही थी जिस का नाम डोगरा सदर

सभा था। इस संस्था में सभी धर्मों और सम्प्रदायों के लोग सम्मिलित थे। इस संस्था के लोग महाराजा हरिसिंह के विरुद्ध तो नहीं थे किन्तु उन की निष्ठा महात्मा गांधी और इंडियन कांग्रेस में थी। कांग्रेस पार्टी जब भी कोई राष्ट्र व्यापी आन्दोलन आरम्भ करती तो डोगरा सदर सभा के सदस्य न केवल कांग्रेस का समर्थन ही करते अपितु वे जम्मू में भी जलसे करते और जलूस निकालते। मई 1930 को ब्रिटिश सरकार ने जब महात्मा गांधी को बन्दी बनाया तो उस की प्रतिक्रिया सारे देश के साथ-साथ जम्मू में भी हुई। जम्मू में भी जलूस निकला, जलसा हुआ और विदेशी कपड़ों की होली फूंकी गई। इससे ब्रिटिश सरकार बहुत सटपटाई। किन्तु महाराजा ने एक घोषणा में यह कह कर कि अंग्रेजी राज के विरुद्ध किसी भी प्रदर्शन को वे राजद्रोह समझते हैं, ब्रिटिश सरकार का विश्वास जीतने का प्रयास किया। महाराजा की इस घोषणा के बावजूद जम्मू के लोग इंडियन कांग्रेस के कार्यक्रमों में बड़ी सक्रियता से भाग लेते रहे। उन में से जो लोग सच्चे गांधी वादी थे, वे राष्ट्रीय आन्दोलन में कूद पड़े और खद्दर के वस्त्र पहन कर बाज़ारों में घूमने लगे। कश्मीर घाटी के विपरीत जम्मू के लोगों ने ग्लांसी कमीशन की सिफारशों के विरोध में आन्दोलन चलाया। जम्मू में भी कुछ जागरूक लोगों ने इंडियन कांग्रेस की शाखा स्थापित करने का यत्न भी किया। कुछ लोगों ने मुस्लिम कान्फ्रेंस की भाँति जम्मू में 'हिन्दू-सभा' का गठन किया किन्तु इस संस्था को लोगों का प्रबल समर्थन न मिला।

जम्मू कश्मीर राज्य की कई राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं ने मुस्लिम कान्फ्रेंस से अनुरोध किया कि रियासत में लोकतन्त्र प्रणाली की स्थापना के लिए सभी धर्मों के लोगों को संगठित किया जाये। परिणामस्वरूप जून 1938 को मुस्लिम कान्फ्रेंस ने एक प्रस्ताव द्वारा सभी धर्मों के लोगों को आह्वान किया कि वे कान्फ्रेंस में सम्मिलित हो। इसी वर्ष अगस्त मास में रियासत की बारह राजनैतिक संस्थाओं ने महाराजा से प्रार्थना की कि वे रियासत में राजनैतिक और सामाजिक परिवर्तन लाने के अतिरिक्त लोकतांत्रिक ढंग से अपने अधीन नई सरकार बनायें।

शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के नेतृत्व में मुस्लिम कान्फ्रेस ने रियासत के सभी क्षेत्रों, सभी धर्मों और सभी जातियों को एक मंच पर लाने के लिए 1939 में अपनी संस्था का नाम बदला और नया नाम नेशनल कान्फ्रेंस रखा। नेशनल कान्फ्रेंस का पहला अधिवेशन अक्तूबर 1939 में आयोजित हुआ जिस में यह प्रस्ताव पास किया गया कि विधान सभा के सभी सदस्य जनता द्वारा चुने हुए हों और विधान सभा को बजट पास करने का पूरा अधिकार हो। महाराजा ने नेशनल कान्फ्रेंस के इस प्रस्ताव को आंशिक ही माना और केवल सात सीटें चुनाव के लिए बढ़ाईं किन्तु इन से आम जनता को कोई लाभ नहीं पहुँचा।

1939 में ही दूसरा विश्व युद्ध शुरू हो गया। ब्रिटिश सरकार को रियासतों से सैनिक सहायता की आवश्यकता थी अतः सरकार ने महाराजा के प्रति भी अपना व्यवहार बदला। महाराजा ने इस युद्ध में ब्रिटिश सरकार की सहायतार्थ 2 जे. ऐ. के और 4 जे. ऐ. के बटालिनें अपनी रियासत से बाहर विदेशों में भेजी। शेष सेना को सीमांत क्षेत्र में इसलिए नियुक्त किया कि यदि रूस, अफगानिस्तान अथवा चीन की सीमाओं में कोई हलचल हो तो ऐसी स्थिति में जम्मू कश्मीर के सीमान्त क्षेत्र में सुरक्षा प्रबन्ध कड़े किये जायें।

महाराजा की सरकार ने रियासत के युवकों को अधिक से अधिक संख्या में ब्रिटिश सेना में भर्ती होने के लिए प्रोत्साहित किया। इस प्रकार हज़ारों की संख्या में इस रियासत के युवक ब्रिटिश सेना में भर्ती हो गए।

महाराजा ने उन सिपाहियों के परिवारों को विशेष पारिवारिक भत्ता प्रदान किया जो रियासत के बाहर भेजे गए थे। इस भत्ते की राशि छह रुपये प्रति मास थी। महाराजा ने अपनी सेना को नये ढंग से प्रशिक्षित करने के लिये सैनिक प्रशिक्षण स्कूल का पुनर्गठन किया। महाराजा ने उन सभी सिपाहियों का वेतन और भत्ता भी बढ़ा दिया जो ब्रिटिश सरकार की सेवा के अतिरिक्त रियासत में सेवारत थे।

महाराजा ने अपने शासनकाल में चार ब्रिगेड सेना खड़ी की। पहले ब्रिगेड को जम्मू ब्रिगेड कहा गया और इस का स्थायी निवास जम्मू सतवारी में रखा गया। जम्मू से भिम्बर तक का सीमा क्षेत्र इसके अधीन था। कश्मीर ब्रिगेड का मुख्यालय बदामी बाग श्रीनगर में था। लेह, अस्कर्दू तक का सीमा क्षेत्र इस के अधीन था। मीरपुर ब्रिगेड का मुख्यालय धर्मशाला जागर में था। यह नौशहरा और मीरपुर के सीमा क्षेत्र पर नज़र रखता था। चौथा ब्रिगेड पुंछ में था और वही इसका मुख्यालय था। रावलकोट तक का क्षेत्र इस ब्रिगेड के अधीन था। रियासत में सैनिकों की कुल संख्या बारह हज़ार के लगभग थी। महाराजा की सेना में सभी धर्मों तथा तीनों क्षेत्रों के लोग सम्मिलित थे। इनके अतिरिक्त गोरखा और कांगड़ी भी थे।

सरकार ने अपनी रियासत से जो सेना समुन्द्र पार भेजी थी उसने युद्ध में अदम्य साहस का परिचम दिया और कई उपलब्धियां प्राप्त कीं जिसके कारण ब्रिटिश सरकार महाराजा हरिसिंह पर अति प्रसन्न रही।

किन्तु द्वितीय विश्व युद्ध आरम्भ हो जाने पर भी जम्मू और कश्मीर में जन-आन्दोलन चलते ही रहे। नेशनल कान्फ्रेंस ने कश्मीर घाटी में लोकतन्त्र की बहाली के लिए अपना संघर्ष छेड़े रखा। कश्मीर में खाद्यान्न के अभाव को दूर करने तथा वितरण-प्रणाली में सुधार लाने के लिए भी नेशनल कान्फ्रेंस ने सरकार पर ज़ोर डाला। नेशनल

कान्फ्रेंस ने घाटी में स्थान-स्थान पर जनता खाद्यान्न कमेटियां गठित करके अनाज, तेल आदि के वितरण में सक्रिय भाग लिया। इस से घाटी के लोग बहुत प्रभावित हुए और वे शेख मुहम्मद अब्दुल्ला और उन की संस्था नेशनल कान्फ्रेंस के प्रशंसक बन गये।

मुस्लिम कान्फ्रेंस जब नेशनल कान्फ्रेंस में बदली तो नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं के विचारों में भी बदलाव आया। उस समय देश में मुस्लिम-साम्प्रदायिकता को आधार बना कर मुहम्मद अली जिन्नाह केवल मुसलमानों के अधिकारों के लिए लड़ रहे थे। जब कि भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और उसके नेता पूरे देश के लोगों को अपने साथ लेकर स्वतन्त्रता की लड़ाई लड़ रहे थे। नेशनल कान्फ्रेंस के नेता वैचारिक दृष्टि से राष्ट्रीय कांग्रेस के अधिक निकट थे, अत: उन्होंने महात्मा गांधी, जवाहर लाल नेहरू, मौलाना, अब्दुल कलाम आज़ाद तथा सरहद्दी गांधी जैसे नेताओं से प्रेरणा लेकर अपना आन्दोलन और तेज किया। नेशनल कान्फ्रेंस के आमन्त्रण पर 1940 में जवाहर लाल नेहरू भी कश्मीर में आये और कश्मीर के लोगों ने उन का भव्य स्वागत किया। जून 1944 को मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मद अली जन्नाह भी कश्मीर आये। उन्होंने कश्मीर के लोगों को मुस्लिम कान्फ्रेंस के झंडे के नीचे संगठित होने का आह्वान किया। उस समय मुस्लिम कान्फ्रेंस उन लोगों की संस्था थी जो नवगठित नेशनल कान्फ्रेंस में सम्मिलित नहीं हुए थे और रियासत में केवल मुसलमानों का ही वर्चस्व चाहते थे। मुहम्मद अली जन्नाह का कश्मीर घाटी का दौरा असफल रहा और उन्हें कश्मीर की जनता का समर्थन नहीं मिला। जिन्नाह के जाने के बाद हिन्दूमहासभा के प्रधान बी. डी . सावरकर ने भी रियासत का दौरा किया और हिन्दू राज्य की वकालत की। किन्तु उन्हें भी लक्ष्य में कोई सफलता न मिली।

इसी समय-अवधि में जम्मू भी शान्त नहीं रहा। 1943 में जम्मू के लोगों ने रोटी-आन्दोलन शुरू किया। इस आन्दोलन में सभी वर्गों, धर्मों और सम्प्रदायों के लोग सम्मिलित हुए। जब सरकार ने आन्दोलनकारियों की माँगे स्वीकार न कीं तो आन्दोलन ने विकराल रूप धारण कर लिया। 26 सितम्बर 1943 को पुलिस ने आन्दोलनकारियों पर गोली चलाई जिसमें आठ व्यक्ति मारे गये। मृत व्यक्तियों में हिन्दु और मुसलमान दोनों थे। इस आन्दोलन के कारण महाराजा का जम्मू स्थित प्रशासनिक ढांचा हिल गया। अन्तत: रियासत के प्रधानमंत्री ने आन्दोलनकारियों से बात-चीत करके इस आन्दोलन को ठंडा किया। गौ आन्दोलन के बाद जम्मू में घटित होने वाला यह आन्दोलन राजनैतिक दृष्टि से बहुत ही महत्वपूर्ण सिद्ध हुआ। जम्मू के लोग भी सोचने पर विवश हो गए कि महाराजा का प्रशासन कश्मीर घाटी के लिए जितना बर्बर है, उससे भी अधिक बर्बर वह जम्मू के लोगों के लिए है।

कश्मीर घाटी में नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं ने पूरे देश में चल रहे राष्ट्रीय आन्दोलनों से प्रभावित होकर घाटी से बाहर जम्मू प्रान्त के विभिन्न स्थानों में भी अपनी पार्टी की शाखाएँ खोली। जम्मू प्रान्त के बहुत से राजनैतिक कार्यकर्ता जो इंडियन नेशनल कांग्रेस के प्रति समर्पित थे, अपनी पार्टी के नेताओं के निर्देश पर नेशनल कान्फ्रेंस के सदस्य बन गए। इससे नेशनल कान्फ्रेंस का दायरा विस्तृत हुआ और सभी सम्प्रदायों के लोग इस के सदस्य बनने लगे।

नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं ने 1944 में यह निर्णय किया कि उन का भावी लक्ष्य रियासत में समाजवादी समाज की स्थापना होगा, वे एक ऐसे समाज की संरचना के विषय में सोचने लगे जो लोकतन्त्र प्रणाली पर आधारित हो और शोषण से मुक्त हो।

सन् 1945 की गर्मियों में नेशनल कान्फ्रेंस ने अपना छटा वार्षिक अधिवेशन सोपुर में बुलाया। इस सम्मेलन में नेशनल कान्फ्रेंस ने मौलाना अब्दुल्ल कलाम आज़ाद और सरहदी-गाँधी जैसे राष्ट्रीय स्तर के नेताओं को भी सम्मेलन में भाग लेने के लिए आमंत्रित किया। जम्मू प्रान्त से भी कई प्रतिनिधि इस में भाग लेने के लिए सोपुर गये। कश्मीर के लोगों ने इंडियन नेशनल कांग्रेस के नेताओं का भव्य स्वागत करके यह सिद्ध कर दिया कि वे मुस्लिम लीग की अपेक्षा कांग्रेस की नीतियों का समर्थन करते हैं। यह सम्मेलन प्रत्येक दृष्टि से बहुत ही सफल रहा।

द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान अंग्रेजों ने महाराजा हरिसिंह के प्रशासन में कोई विशेष अनावश्यक हस्तक्षेप नहीं किया। जब रियासत के प्रधानमंत्री एन. गोपालास्वामी आयंगर ने प्रधानमंत्री पद से त्यागपत्र दे दिया तो महाराजा ने अपनी इच्छा से राजा सर महाराज सिंह को अपना नया प्रधानमंत्री बनाया किन्तु जब वह प्रभावशाली सिद्ध न हुआ तो महाराजा ने 1945 में रामचन्द्र काक को अपना प्रधानमंत्री नियुक्त किया। रामचन्द्र काक बहुत विद्वान था। किन्तु प्रशासनिक योग्यता उस में इतनी नहीं थी कि वह रियासत के लोगों को साफ सुथरा प्रशासन देता। उसने इतना अवश्य किया कि लोगों द्वारा निर्वाचित दो सदस्यों को अपने मंत्रिमंडल में शामिल कर लिया। नेशनल कान्फ्रेंस ने भी रामचन्द्र काक के मंत्रिमंडल के लिए अपना एक सदस्य मनोनीत किया। किन्तु मंत्री बनने के बाद जब उसने यह महसूस किया कि उसे स्वतन्त्र रूप से काम नहीं करने दिया जा रहा और उसको पूरा सहयोग नहीं मिल रहा है तो उसने 17 मार्च 1946 को त्याग पत्र दे दिया।

मंत्रिमंडल से बाहर निकलने के बाद नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं ने गाँधी जी के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन का अनुकरण करते हुए 'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन चलाया। शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने 6 मई 1946 से 16 मई 1946 तक कश्मीर घाटी के गांव-गांव

में जन-सभाओं का आयोजन किया और महाराजा को कश्मीर छोड़ कर जम्मू चले जाने को कहा। इस आन्दोलन का मुख्य लक्ष्य यह था कि सत्ता महाराजा से छीन कर जनता को सौंप दी जाए।

सरकार ने 'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन का दमन बड़ी कठोरता से किया। नेशनल कान्फ्रेंस के नेताओं को बन्दी बना लिया। आन्दोलनकारियों की गतिविधियों को रोकने के लिए कई कदम उठाये किन्तु फिर भी आन्दोलन शान्त न हुआ। सरकार ने शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को बन्दी बना कर सेना के संरक्षण में बदामी बाग में रखा। आन्दोलन के लिए बाहर से समर्थन जुटाने के लिए नेशनल कान्फ्रेंस के दो नेता बख्शी गुलाम मुहम्मद और गुलाम मुहम्मद सादिक रियासत से बाहर चले गये।

20 जून 1946 को राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता कश्मीर की स्थिति का अवलोकन करने के लिए कश्मीर आ रहे थे कि जम्मू कश्मीर सरकार ने कोहाला के स्थान पर नेहरू जी को बन्दी बना लिया। नेहरू जी को बन्दी बनाने से कश्मीर घाटी में तनाव और बढ़ा और पूरे देश में कश्मीर सरकार की भर्त्सना भी हुई। कश्मीर सरकार ने नेहरू जी को दूसरे दिन ही मुक्त कर दिया और वे दिल्ली चले गए।

'कश्मीर छोड़ो' आन्दोलन के सन्दर्भ में जम्मू कश्मीर सरकार ने शेख़ मुहम्मद अब्दुल्ला के विरुद्ध विद्रोह का आरोप चलाकर उन पर मुकद्दमा चलाया। शेख अब्दुल्ला ने उन पर लगाये गए आरोपों का अदालत में खंडन किया और कहा कि उन का आन्दोलन रियासत में लोकतन्त्र प्रणाली की स्थापना के लिये संघर्ष मात्र है।

अप्रैल 1946 में बर्तानिया से केबिनेट मिशन भारत आया। मिशन के सदस्यों ने राष्ट्रीय कांग्रेस, मुस्लिम लीग तथा भारतीय रियासतों के प्रमुखों से लम्बी बात-चीत की और अपनी रिपोर्ट में भारत को स्वतन्त्रता प्रदान करने की माँग को उचित ठहराया। ब्रिटिश सरकार ने मुस्लिम लीग की यह माँग भी मान ली कि भारत के जिन प्रान्तों में मुसलमानों की जनसंख्या सर्वाधिक है, उन प्रान्तों को मिला कर एक अलग देश पाकिस्तान बनाया जाये जो प्रत्येक दृष्टि से सार्वभौम हो।

ब्रिटिश सरकार ने भारत वर्ष का विभाजन कर दिया। दो नये राष्ट्र विश्व मानचित्र पर उभर आये-भारत और पाकिस्तान। ब्रिटिश सरकार ने देसी रियासतों के प्रमुखों को यह अधिकार दिया कि वे यह निर्णय स्वयं लें कि उन्हें भारत राष्ट्र में सम्मिलित होना है, पाकिस्तान में सम्मिलित होना है या फिर स्वतन्त्र रहना है।

मुस्लिम लीग के नेता मुहम्मद अली जिन्नाह ने तो रियासतों की आजादी के सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया किन्तु कांग्रेस ने इसका विरोध किया। कांग्रेस के नेताओं से इस सम्बन्ध में अपनी नीति स्पष्ट की और कहा कि इस उपमहाद्वीप में भारत और

पाकिस्तान के अतिरिक्त अन्य किसी तीसरी शक्ति को स्वीकार नहीं करेंगे। पारिणाम स्वरूप 15 अगस्त 1947 से पूर्व जम्मू कश्मीर और हैदराबाद को छोड़ कर शेष रियासतों ने भारत या पाकिस्तान में विलय का निर्णय ले लिया।

जम्मू और कश्मीर के महाराजा हरिसिंह को मुस्लिम कान्फ्रेंस ने यह सलाह दी कि वे रियासत में मुसलमानों की अधिक जनसंख्या को ध्यान में रखते हुए इस रियासत का विलय पाकिस्तान के साथ करें। हिन्दू महासभा के नेताओं ने महाराजा को भारत के साथ विलय करने का परामर्श दिया। रावी पार की पहाड़ी रियासतों के राजाओं ने भी महाराजा से भेंट की और उनके सामने एक प्रस्ताव रखा जिस में कहा गया था कि पहाड़ी रियासतों का एक संघ बने जो भारत के अन्तर्गत हो। किन्तु महाराजा ने इस प्रस्ताव को भी विशेष महत्व नहीं दिया।

महाराजा हरिसिंह उन दिनों बड़ी उलझन में थे। वे कोई भी निर्णय नहीं ले पा रहे थे। उनका प्रधान मंत्री रामचन्द्र काक उन्हें जिस दिशा की ओर ले जाना चाहता था, वे उस ओर जाना नहीं चाहते थे। इसी लिए उन्होंने जुलाई 1947 को रामचन्द्र काक को भी प्रधान मंत्री पद से निकाल कर मेजर जनरल जनकसिंह को अपना नया प्रधानमंत्री बनाया।

राष्ट्रीय कांग्रेस रियासत जम्मू कश्मीर में जनता का प्रतिनिधि केवल शेख मुहम्मद अब्दुला और उनकी संस्था नेशनल कान्फ्रेंस को ही मानती थी। राष्ट्रीय कांग्रेस के नेता चाहते थे कि ऐसी विषम परिस्थितियों में महाराजा को शेख अब्दुल्ला को जेल में बन्द नहीं रखना चाहिए और उन्हें अविलम्ब मुक्त कर देना चाहिए। इस सम्बन्ध में महाराजा से बात करने के लिए राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष आचार्य कृपलानी मई 1947 को कश्मीर यात्रा पर आये और कश्मीर के प्रधान मंत्री से भी मिले। कृपालानी के दिल्ली लौटने के बाद भारत के गर्वनर जनरल लार्ड माऊंट वेटन ने भी कश्मीर की यात्रा की और महाराजा को विलय सम्बन्धी निर्णय यथाशीघ्र लेने का आग्रह किया। किन्तु महाराजा फिर भी कोई निर्णय न ले सके। लार्ड माऊंट वेटन ने पहली अगस्त 1947 को गिलगित क्षेत्र का प्रशासन महाराजा को सौंपा और वे भी दिल्ली लौट आए। 5 अगस्त 1947 को महात्मा गाँधी ने भी कश्मीर की यात्रा की। वे जम्मू भी आए। तीन दिन जम्मू व कश्मीर में रहने के बाद वे भी दिल्ली लौट गए। महाराजा इस अवधि में विलय के प्रश्न पर कोई अन्तिम निर्णय न ले सके।

ब्रिटिश सरकार ने 14 अगस्त 1947 को नवगठित राष्ट्र पाकिस्तान के प्रधान मुहम्मद अली जन्नाह को और 15 अगस्त 1947 को भारत के गर्वनर को सत्ता सौंप दी।

महाराजा ने भारत और पाकिस्तान को कश्मीर के सम्बन्ध में यथास्थिति बनाये

रखने का प्रस्ताव भेजा जिसे पाकिस्तान के प्रधान ने सहर्ष स्वीकार कर लिया किन्तु भारत सरकार ने इस प्रस्ताव पर कोई विशेष प्रतिक्रिया सम्भवतः इस लिए व्यक्त नहीं की क्योंकि वह इस सम्बन्ध में कश्मीर के नेता शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के विचार जानना चाहती थी, किन्तु उन दिनों शेख मुहम्मद अब्दुल्ला जेल में थे।

कश्मीर के महाराजा हरिसिंह को विश्वास था कि पाकिस्तान उन के प्रस्ताव को स्वीकार कर लेने के बाद डाक व तार व्यवस्था को पहली जैसी सुविधा प्रदान करता रहेगा और रियासत के साथ वाणिज्य और व्यापार बढ़ायेगा, किन्तु ऐसा हुआ नहीं। पाकिस्तान ने कश्मीर को खाद्यान्न तथा अन्य वस्तुएँ नहीं भेजीं। इस से कश्मीर घाटी में खाद्य-वस्तुओं का अभाव आ गया। बाद में पाकिस्तान ने कश्मीर की व्यापारिक दृष्टि से मुकम्मल नाकाबन्दी कर दी। इससे महाराजा का प्रशासन चिन्तित हो उठा।

महाराजा ने बदली हुई स्थिति को दृष्टि में रख कर 30 सितम्बर 1947 को शेख मुहम्मद अब्दुल्ला और उनके कई साथियों को कारावास से मुक्त कर दिया। शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने कारावास से बाहर आने के बाद सब से पहले कश्मीर घाटी में शांति और व्यवस्था स्थापित करने का प्रयास किया। उनकी संस्था के सदस्य गांव-गांव में गए और उन्होंने वहां अमन कमेटियां स्थापित कीं और साम्प्रदायिक सद्भावना को बनाये रखा।

पाकिस्तान को आशा थी कि खाद्यान्न की नाकाबन्दी के बाद कश्मीर में उपद्रव होंगे और कश्मीर की जनता सहायता के लिए पाकिस्तान को आमंत्रित करेगी, किन्तु नेशनल कान्फ्रेंस के सदस्यों की वजह से जब यह सब कुछ न हुआ तो पाकिस्तान के नेताओं ने जम्मू और कश्मीर को हस्तगत करने के लिए कबायलियों को जम्मू-कश्मीर के सीमावर्ती क्षेत्रों में धकेल दिया। पाकिस्तानी सेना के सैकड़ों सैनिक कबायलियों के वेश में सीमावर्ती क्षेत्र में घुस आये और उन्होंने अक्तूबर 1947 को जम्मू कश्मीर राज्य की सीमा का अतिक्रमण करके हिन्दुओं और सिक्खों को लूटना शुरू किया। इस से हिन्दू और सिक्ख भयभीत होकर अपने-अपने घर और गांव छोड़कर सुरक्षित स्थानों की खोज में भागने लगे।

कबायलियों ने सब से पहले मीरपुर क्षेत्र में जेहलम नदी को जो जम्मू कश्मीर राज्य की सीमा बांधती थी, 5 अक्तूबर 1947 को पार किया और रियासत की सेकंड जे. ए. के. की एक प्लाटुन पर जो सालीग्राम पतन में तैनात थी, आक्रमण कर दिया। डोगरा सैनिक संख्या में थोड़े थे। अतः वे कबायलियों का सामना न कर सके और ओयल पतन की ओर भाग आये। कबायलियों ने 9 अक्तूबर को ओयल पर भी अधिकार कर लिया। इसके बाद कबायली महाराजा की सेना को धकेलते हुए आगे बढ़ते ही गये। कबायलियों ने कुछ ही

दिनों के भीतर कोटली, मीरपुर भिम्बर और पुंछ के एक बहुत बड़े भाग पर अधिकार कर लिया। महाराजा की सेना के जो मुसलमान सैनिक थे, वे आवेश में आकर कबायलियों से जा मिले और उनका मार्ग दर्शन करने लगे।

पाकिस्तानी सैनिकों ने कबायलियों के वेश में कश्मीर घाटी पर आक्रमण करने के लिए ऐबटाबाद का मार्ग चुना। 22 अक्तूबर 1947 को इन्होंने गढ़ी दोमेल की ओर प्रस्थान किया और उस पर अनाधिकार करने के बाद वे मुज्जफ़राबाद की ओर बढ़े। मुजफ़राबाद में कर्नल नारायण सिंह ने उनको आगे बढ़ने से रोकने के लिए मोर्चा बन्दी की किन्तु महाराजा की सेना के ही कुछ सैनिकों ने कर्नल की हत्या करके कबायलियों के लिए आगे बढ़ने का मार्ग प्रशस्त किया।

कर्नल नारायण सिंह की हत्या का समाचार जब महाराजा के पास पहुंचा तो उन्होंने ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह को सीमा की रक्षा करने के लिए तत्क्षण प्रस्थान करने का आदेश दिया। ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह ने 23 अक्तूबर को अपना मोर्चा लगा लिया और आततायियों को आगे बढ़ने से रोका। किन्तु ब्रिगेडियर के साथ बहुत कम सैनिक थे जबकि कबायलियों की संख्या हज़ारों में थी। कबायली महाराजा की सेना को पीछे धकेलते हुए आगे बढ़ते गये।

महाराजा ने ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह की सहायता के लिए कैप्टन ज्वाला सिंह को एक सैनिक टुकड़ी के साथ हवाई जहाज द्वारा जम्मू से श्रीनगर भेजा। ब्रिगेडियर के नाम महाराजा ने एक पत्र भी भेजा जिसमें उसे आखरी गोली और आखरी सिपाही तक शत्रु से लड़ने का आदेश था।

कैप्टन ज्वाला सिंह के आ जाने के बाद ब्रिगेडियर राजेन्द्र सिंह ने ऐसी जगह मोर्चा बन्दी की यहां शत्रु की दृष्टि नहीं पड़ सकती थी। कबायलियों का काफिला जैसे ही आगे बढ़ा डोगरा सैनिकों ने उस पर गोलियाँ चलाईं और तोपों के गोले बरसाये। इससे आततायियों को बहुत क्षति पहुंची और वे रुक गए।

ब्रिगेडियर ने अपना अगला मोर्चा रामपुर मोहरा में लगाया। 25 और 26 अक्तूबर को उन्होंने शत्रु को वहीं लड़ाई में व्यस्त रखा। 26 अक्तूबर को रात्रि के समय अन्धेरे का लाभ उठा कर वे अपने सैन्यदल के साथ नये मोर्चे की ओर जा रहे थे कि शत्रु ने उन्हें घेरे में ले लिया। गोलियों की बौछार से उन का शरीर छलनी हो गया तो वे धरती पर गिर पड़े। ब्रिगेडियर के शहीद हो जाने के बाद आततायी हर्षोल्लास मनाते हुए बड़ी तीव्र गति से बारा-मूला की ओर बढ़े। नेशनल कान्फ्रेंस के एक नेता शेरवानी ने अपना बलिदान दे कर उन्हें कुछ समय के लिए वहां रोका। कबायली जब बारामूला में पहुंच गये तो उन्हें आशा बंध गई कि अब वे शीघ्र ही श्रीनगर पहुंच जायेंगे।

पाकिस्तान द्वारा समर्थित कबायली आक्रमण के कारण महाराजा का दिवास्वप्न टूट गया। उन्होंने महसूस किया की पाकिस्तान ने उनके 'यथा स्थिति' प्रस्ताव को केवल दिखावे के लिए ही स्वीकार किया था। वास्तव में पाकिस्तान येन केन प्रकारेण जम्मू व कश्मीर रियासत को हड़पना चाहता है।

महाराजा शेख मुहम्मद अब्दुल्ला और उनके साथियों की उस कार्य प्रणाली पर प्रसन्न थे जिसके अन्तर्गत नेशनल कान्फ्रेंस के नेता और कार्यकर्ता कबायलियों के कश्मीर पर आक्रमण का विरोध कर रहे थे और पूरी घाटी में साम्प्रदायिक सद्‌भावना बनाये रखने के लिए अल्प मत के लोगों की सुरक्षा के लिए शांति समितियों का गठन कर रहे थे।

जम्मू कश्मीर को बचाने के लिए महाराजा के पास अब केवल एक ही विकल्प बचा था और वह था जम्मू व कश्मीर राज्य का विलय भारत के साथ करना। महाराजा ने बिना अवसर खोये 26 अक्तूबर को अपने नये प्रधानमंत्री मेहरचन्द खन्ना को विलय-पत्र पर हस्ताक्षर करके दिल्ली भेजा। भारत सरकार ने महाराजा का प्रार्थना पत्र 27 अक्तूबर 1947 को स्वीकार करके इस की सूचना महाराजा को भेज दी।

महाराजा ने बदले हुए परिवेश में श्रीनगर छोड़ दिया और वे जम्मू आ गये। उन्होंने 30 अक्तूबर 1947 को नेशनल कान्फ्रेंस के नेता शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को रियासत का 'नाज़म' (मुख्य प्रशासक) नियुक्त किया।

महाराजा हरिसिंह जब जम्मू में पहुंचे उस समय जम्मू प्रान्त भी साम्प्रदायकिता की आग में जल रहा था। देश के बंटबारे के बाद हज़ारों की संख्या में ,पाकिस्तान के अन्तर्गत पूर्वी पंजाब से हिन्दू और सिक्ख पाकिस्तान से भाग कर जम्मू क्षेत्र में आ गये थे। हिन्दुओं और मुसलमानों में इतना अधिक विद्वेष भाव फैल चुका था कि शताब्दियों से चले आ रहे भाई चारा के सम्बन्ध तोड़ कर वे एक दूसरे के रक्त के प्यासे बने हुए थे।

इस रक्त रंजित दौर में मीरपुर, कोटली, भिम्बर, मुजफ्फराबाद, और पुंछ के अन्तर्गत बाग और पलन्दरी से हज़ारों की संख्या में हिन्दू और सिक्ख कबायली हमलों से प्रभावित हुए और वे अपने घर का परित्याग करके शरणार्थियों के रूप में इधर-उधर भागे। इसी प्रकार जिला जम्मू और कठुआ से हज़ारों मुसलमान अपनी जन्मभूमि का परित्याग करके पाकिस्तान चले गये। किन्तु शेख मुहम्मद अब्दुल्ला और उनके साथियों को यह श्रेय जाता है कि उन्होंने कश्मीर घाटी में एक भी साम्प्रदायिक घटना घटित न होने दी।

जम्मू कश्मीर राज्य का विलय भारत के साथ हो जाने के बाद भारत सरकार ने वायुयानों से कई सैनिक दस्ते कश्मीर में भेजे जिन्होंने जहाज से उतरते ही आततायियों

को कश्मीर से भगाना शुरू किया। भारतीय सेना ने डेढ़ वर्ष के अल्पकाल में कबायलियों से जम्मू कश्मीर राज्य का बहुत बड़ा क्षेत्र मुक्त करवा लिया। भारतीय सेना अभी अपने अभियान में व्यस्त ही थी कि पहली जनवरी 1949 को रात के 11 बज कर 59 मिनट पर संयुक्त राष्ट्र के अनुरोध पर युद्ध बन्दी हो गई। युद्ध-बन्दी के समय जम्मू कश्मीर का पूरा गिलगित क्षेत्र, मुजफ्फराबाद, कोटली, मीरपुर, भिम्बर, पुंछ जागीर का हवेली और पलन्दर का क्षेत्र पाकिस्तान के अनाधिकार में था।

महाराजा ने शेख अब्दुल्ला को जम्मू कश्मीर रियासत का नज़ाम नियुक्त करने के बाद भी प्रधान मंत्री का पद कायम रखा और इस पद पर मेहरचन्द खन्ना को ही नियुक्त रखा। किन्तु जब नज़ाम और प्रधान मंत्री के अधिकारों में विवाद में छिड़ा तो महाराजा ने 5 मार्च 1948 को मेहरचन्द खन्ना को प्रधान मंत्री पद से हटाकर शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को रियासत जम्मू व कश्मीर का प्रधान-मंत्री नियुक्त किया। महाराजा ने लोकतान्त्रिक संविधान के निर्माण की भी घोषणा की।

महाराजा हरि सिंह ने शेख मुहम्मद अब्दुला को रियासत जम्मू व कश्मीर का नज़ाम नियुक्त करने के बाद अपना ध्यान शरणार्थियों की समस्याओं की ओर केन्द्रित किया। वे महारानी तारादेवी तथा युवराज कर्ण सिंह को साथ लेकर शरणार्थियों के शिविरों में गए और वहाँ उन्होंने शरणार्थियों में जीवनोपयोगी वस्तुएँ बांटी।

20 जून 1949 को महाराजा ने अपने सभी अधिकार युवराज कर्णसिंह को सौंपे और स्वयं जम्मू कश्मीर की राजनीति सें संन्यास ले लिया। बाद में वे बम्बई चले गए और वहीं 26 अप्रैल 1961 को उन का देहावसान हुआ। महाराजा हरिसिंह डोगरा वंश के जम्मू कश्मीर में अन्तिम शासक थे।

महाराजा हरिसिंह का व्यक्तित्व बहुत ही आकर्षिक था। वे हृष्ट-पुष्ट तथा स्वस्थ महाराजा थे। उन्होंने उच्च-शिक्षा प्राप्त की थी, अतः प्रत्येक विषय का व्यावहारिक ज्ञान रखते थे। वे प्रगतिशील विचारों के थे और लोकतन्त्र में उन की आस्था थी। वे जम्मू कश्मीर के पहले महाराजा थे जिन्होंने अपने राज्य में लोगों द्वारा निर्वाचित प्रजा-सभा की स्थापना की। उन्होंने लोगों द्वारा निर्वाचित प्रजा सभा के सदस्यों को मंत्रिमंडल में स्थान दिया। महाराजा पक्के देश भक्त थे। 1930 में लंदन में आयोजित गोलमेज कान्फ्रेंस में उन्होंने जो भाषण दिया था वह उन के स्वदेश प्रेम का द्योतक कहा जा सकता है।

महाराजा हरिसिंह आधुनिक विचारों के आदमी थे। वे अन्धविश्वासों, रूढ़ियों और मिथ्या-अवधारणाओं से दूर रहते थे। वे सभी धर्मों का सम्मान करते थे और सभी पूजा स्थलों को पावन समझते थे। उन्होंने सिंहासन पर बैठते समय घोषणा की थी, ''सभी सम्प्रदाय मेरे लिए एक समान है। एक राजा के रूप में मेरा कोई धर्म नहीं है। सभी धर्म

मेरे हैं। मेरा धर्म न्याय है।"

महाराजा को अपनी जन्म भूमि से बहुत ही लगाव था तभी तो उन्होंने अपनी अन्तिम इच्छा में लिखा था कि मेरी राख मेरी जन्मभूमि में और तवी नदी में प्रवाहित की जाये।



बल्लपुर

बल्लपुर बब्बापुर की ही भांति डुग्गर का एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक केन्द्र था। यह राज्य एक हज़ार सात सौ वर्ग किलोमीटर पर्वतीय क्षेत्र में परिव्याप्त था। इस के उत्तर में बन्दरालता और भद्रवाह, पूर्व में चम्बा, दक्षिणपूर्व में नूरपुर तथा पश्चिम में जसरोटा और मन कोट के राज्य थे। इस राज्य की लम्बाई 80 किलोमीटर और चौड़ाई 30 किलोमीटर के लगभग थी।

बल्लपुर राज्य का उल्लेख प्राचीन ऐतिहासिक ग्रंथों में भी मिलता है। राजतरंगिणी में इस राज्य का उल्लेख कश्मीर के राजा अनन्तदेव (1028-63) और हर्ष (1063-89) के सन्दर्भ में हुआ है। राजतरंगिणी में यह उल्लेख भी मिलता है कि बल्लपुर का शासक कलश अन्य पर्वतीय राजाओं की भांति कश्मीर के राजा के अधीन था और वह कश्मीर के राजा कलस (1063-89) के दरबार में एक बार उपस्थित भी हुआ था। राजतरंगिणी में बल्लपुर की राजकुमारी जज्जला का उल्लेख भी मिलता है जिसका विवाह कश्मीर नरेश सुस्सल से हुआ था। इसी प्रकार अल्वेरुनी (1030) ने भी अपनी पुस्तक में बल्लपुर का उल्लेख अपनी यात्रा के सन्दर्भ में किया है। इस से स्पष्ट हो जाता है कि दसवीं शताब्दी में बल्लपुर उत्तर-भारत में एक चर्चित राज्य था।

इस राज्य की स्थापना कब और किस ने की? इस विषय पर भिन्न-भिन्न इतिहासकारों के मत भिन्न-भिन्न हैं। काहनसिंह बलौरिया की ऐतिहासिक पुस्तक तवारीख-ए राजपूतान-ए मुल्खे पंजाब के अनुसार इस राज्य की स्थापना बिल्लु नामक एक राणा ने पालवंशीय राजाओं के आगमन से पहले की थी। एक अन्य पुस्तक में उल्लेख मिलता है कि इस नगर का संस्थापक वली थान पाल नामक पालवंशीय राजा था। किन्तु इस राजा का नाम पाल वंशावली में नहीं मिलता है, अतः यह धारणा मिथ्या है। लोक परम्परा अनुसार बल्लपुर का नाम यहाँ विलवा वृक्षों की बढ़ोत्तरी के कारण पड़ा है। एक मत यह भी है कि यहाँ भगवान विल्वेश्वर का मंदिर था, अतः उसी के नाम पर इस स्थान का नाम बल्लपुर पड़ा। यह मत उपयुक्त भी लगता है क्योंकि भारत में ऐसे अनेक नगर हैं जिन का नामकरण देवी-देवताओं के नाम के आधार पर किया गया है। डाक्टर सुखदेव सिंह चाड़क का मत है कि इस राज्य की स्थापना आठवीं शताब्दी में हो चुकी थी।

बल्लपुर के राजाओं का क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध नहीं है। इतिहासकारों को बल्लपुर के राज पुरोहितों से जो वंशावली प्राप्त हुई है उसे वे संदिग्ध और अपूर्ण मानते

हैं। काहन सिंह बलौरिया ने बल्लपुर राज्य का संस्थापक राजा भोगपाल को माना है। एक दन्त कथा के अनुसार पांडवों की 42वीं पीढ़ी में राजा थनपाल हुआ। राजा थनपाल पहले प्रयाग में राज्य करता था। किन्तु उस ने किसी कारण अपने राज्य का परित्याग किया और वह अलमोड़ा में आ गया यहां उस ने एक अलग राज्य स्थापित किया। थनपाल के दो बेटे थे जिन में बड़े का नाम भोगपाल था। भोगपाल ने अल्मोड़ा का राज्य अपने भाई को दिया और स्वयं अपने भाग्य को आज़माने शिवालिक पहाड़ियों की ओर आ गया। जब उसने रावी नदी को पार किया तो पहाड़ियों में उसे गद्दी परिवार मिले। उन्होंने उसे बताया कि भीनी नदी के निकट घने जंगल के मध्य एक शिवमन्दिर है जो अति प्राचीन और भव्य है। भोगपाल उस मन्दिर को देखने गया तो बाद में उस ने वहीं रहने का निश्चय कर लिया। राजा भोगपाल ने स्थानीय लोगों के सहयोग से इस स्थान के राणा 'बिल्लो' को लड़ाई में परास्त करके उसे यहाँ से भगाकर एक नये राज्य की स्थापना की जो बाद में बल्लपुर के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

काहनसिंह बलौरिया ने राजा भोगपाल के वंशजों की सूची अपनी पुस्तक में प्रकाशित की है जो इस प्रकार है:-

1. राजा भोगपाल 2. राजा नागपाल 3. राजा साम्भपाल 4. राजा भोजपाल 5. राजा सत्याधिक पाल 6. राजा लक्ष्मण पाल 7. राजा शाकिरिया पाल (शंकरपाल) 8. राजा मान शाक्य 9. राजा देव शाक्य 10. राजा भोजशाक्य 11. राजा अपर शाक्य 12. राजा गुण शाक्य 13. राजा त्रिलोक शाक्य 14. राजा कलसपाल।

डाक्टर सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार राजा भोजपाल ने 700 मैं बल्लपुर की स्थापना की। उस के देहान्त के बाद नागपाल और साम्भपाल बल्लपुर के राजा बने। इस वंश के चौथे राजा सत्याधिक पाल ने भद्रवाह के इलाके पर अधिकार करके उसे अपने दूसरे बेटे राधिक पाल को सौंप दिया। इस राजा के बाद लक्ष्मण पाल बल्लपुर का राजा बना। उस के देहान्त के बाद शाक्यपाल बल्लपुर की राजगद्दी पर बैठा। राजा शाक्यपाल ने अपने छोटे पुत्र को सुमरता की जागीर दी।

तदुपरान्त बल्लपुर की राजगद्दी पर मानशाक्य पदासीन हुआ। मानशक्य ने बसोहली के राजा विस्सु को एक लड़ाई में पराजित कर के इस क्षेत्र पर भी अधिकार कर लिया।

राजा मानशाक्य के बाद बल्लपुर पर जिन शासकों ने राज्य किया उन के शासन की अवधि डॉ॰ सुखदेव सिंह चाड़क ने इस प्रकार अनुमानित की है:-

राजा देव शाक्य	-	940 से 960 तक
राजा भोग शाक्य	-	960 से 985 तक
राजा अप्र शाक्य	-	985 से 1010 तक

राजा गणेशाक्य	–	1010 से 1030 तक
राजा त्रिलोक शाक्य	–	1030 से 1050 तक
राजा कलस	–	1050 से 1090 तक

बल्लपुर के राजा कलस का उल्लेख जैसे पहले कहा जा चुका है राज तरंगिणी में कश्मीर के राजा अनन्तदेव (1028-63) और हर्ष (1063-89) के सन्दर्भ में हुआ है, अत: लगता है कि ग्यारहवीं शताब्दी के अन्त तक बल्लपुर राज्य की राजधानी या तो बल्लपुर ही थी या इस राज परिवार के कुछ लोग बल्लपुर में ही रहते थे।

बल्लपुर को आज बलौर या बिलावर कहते हैं। बल्लपुर के राज वंश के लोगों को बलौरिया कहा जाता है। इस राज वंश के महल के अवशेष बिलावर में आज भी स्थित हैं जो स्थापत्य कला की दृष्टि से साधारण कोटि के हैं। इस महल की अब केवल प्राचीरें ही खड़ी है। शेष महल धराशायी हो चुका है।

बल्लपुर में वास्तुकता का उन्नत और विकसित रूप विल्केश्वर भगवान का मन्दिर है। यह मन्दिर एक हज़ार वर्ष से भी अधिक पुराना है और सम्भवत: राजा भोगपाल के वंशजों की ही देन है। पाषाण शिलाओं को जोड़ कर बनाया गया यह मन्दिर डुग्गर के आश्चर्यों में से एक है। कहते हैं कि बाबर के सैनिकों ने इस मन्दिर को क्षति पहुंचाई और मूर्तियों को तोड़ डाला।

लगता है कि मुसलमानों के शिवालिक पहाड़ियों में बार-बार प्रतिक्रमण करने के बाद बल्लपुर के शासकों ने अपनी राजधानी बसोहली में स्थानान्तरित की।

आज बल्लपुर बलावर के नाम से जिला कठुआ की एक तहसील मात्र है। कल्हण कृत राजतरंगिणी में बल्लपुर के पद्मक, आनन्द, विक्रम तथा गुल्हण आदि राजाओं के नाम मिलते हैं। किन्तु इतिहासकार काहन सिंह बलौरिया द्वारा संकलित वंशावली में ये नाम नहीं हैं। लगता है बल्लपुर के इतिहास से सम्बधित कई तथ्य अभी भी अनसुलझे और अस्पष्ट हैं।



बल्लपुर बसोहली के राजाओं की जो वंशावली राज पुरोहित पीताम्भर दत्त उपाध्याय से प्राप्त हुई है उसमें 43 राजाओं के नाम हैं जो क्रमांक से निम्नांकित हैं :-

1. थानपाल 2. सोमपाल 3. भोगपाल 4. नागपाल 5. सिभुपाल 6. स्वपाल 7. सत्याधिक पाल 8. लक्ष्मणपाल 9. जैशाक्यपाल 10. मानशाक्यपाल 11. लोग इच्छागत पाल 12. गुणपाल 13. त्रिलोक पाल 14. कमलश पाल 15. तुखंगपाल 16. तनक पाल 17. महिपाल 18. रणमलपाल 19. अजय पाल 20. पृथ्वीपाल 21. भाईपाल 22. हरिपाल 23. विजयपाल 24. उदयपाल 25. सिद्ध पाल 26. मगसीपाल 27. समर्थपाल 28. अंचल पाल 29. दौलतपाल 30. गजेन्द्रपाल 31. यशपाल 32. कृष्णपाल 33. भोपत पाल 34. हंदाल पाल 35. किरपा पाल 36. धीरज़ पाल 37. मेगनी पाल 38. अजीत पाल 39. अमृत पाल 40. विजय पाल 41. महेन्द्र पाल 42. भूपेन्द्र पाल तथा 43. कल्याण पाल

पांचवां अध्याय

बसोहली

लोक परम्परा के अनुसार बसोहली राज्य की संस्थापना 'बसु' नाम के एक स्थानीय राणा ने की। उसी ने बसोहली गाँव बसाया और बाद में इस गाँव के इर्द-गिर्द के गाँवों को अपने अधिकार में लेने के बाद एक छोटे से राज्य की स्थापना की।

दसवीं सदी में बल्लपुर के राजा मणिशाक्य ने (910-940 ई०) बसु राणा को एक लड़ाई में पराजित करके उसे इस क्षेत्र से भगा कर इस पर अधिकार करके इस का विलय बल्लपुर राज्य के साथ किया।

ठाकुर काहनसिंह बलौरिया और नरसिंहदास नर्गिस के मतानुसार मणिशाक्य के वंशजों ने ही बसोहली में उन्नीसवीं शताब्दी के मध्य तक राज्य किया। किन्तु गणेशदास बटैहड़ा विरचित राजदर्शनी के अनुसार जम्मू के राजा अवतारदेव (1009-1053 वि० तदानुसार 952-996 ई०) ने राजा जयपाल के पुत्र राजा आनन्दपाल को जोकि, मुहम्मद गजनवी से पराजित होने के बाद भागकर पहले सतीसर (कश्मीर) चला गया था और फिर वहाँ से जम्मू आया, उसे शरण दी और बाद में बसोहली की जागीर प्रदान की।

लगता है कि राजदर्शनी में उल्लेखित तथ्य सही है। महमूद गजनवी के आक्रमणों का बार-बार मुकाबला करने पर भी पराजित होकर तक्षशिला के पालवंशीय राजा का सुरक्षा की दृष्टि से पहाड़ी इलाके में आना और जम्मू के राजा द्वारा उसे शरण देना उस की गोपनीयता बनाये रखने के लिए उसे बसोहली की ओर भेजना स्वाभाविक लगता है। सम्भवतः यही एक कारण है कि हमें पन्द्रहवीं शताब्दी से पूर्व के बसोहली के पालवंशीय राजाओं की वंशावली और उन का क्रमिक इतिहास नहीं मिलता। इसी प्रकार बल्लपुर के शक्य वंशीय राजाओं को बसोहली के पालवंशीय राजाओं को एक ही समझना बहुत बड़ी ऐतिहासिक गलती होगी। यह सम्भव है कि तेरहवीं या चौदहवीं शताब्दी के मध्य बसोहली के पालवंशीय राजाओं ने बल्लपुर के राज्य और राजवंश को अपने में आत्मसात कर लिया हो।

बसोहली के इतिहास में राजा जयपाल के नाम का उल्लेख राजा अजयपाल के रूप में हुआ है। ऐसा सम्भवतः उस की गोपनीयता को बनाये रखने के लिए किया गया है। राजा जयपाल ने महमूद गजनवी के साथ लड़ाईयां लड़ी थीं और शायद इसी कारण बसोहली के लोग आज भी एक लोक नायक के रूप में उस की पूजा करते हैं।

राजा जयपाल के जिन उत्तराधिकारियों के नाम ऐतिहासिक पुस्तकों में उपलब्ध हैं वे हैं-पृथ्वीपाल, महिपतपाल, हरिपाल, विनयपाल, उदयपाल, सिद्धपाल, भागपाल,

जयद्रथ पाल, अंचलपाल और बहुलपाल। बहुलपाल का देहावसान सम्भवत: 1500 ई० में हुआ और उसके बाद उसके वंशजों का इतिहास इतिहासकारों को उपलब्ध है जो इस प्रकार है :–

राजा दौलतपाल (1500 से 1530)

राजा बाहुल पाल के देहावसान के बाद बसोहली की राजगद्दी पर राजा दौलतपाल बैठा। उसे वृक्ष लगवाने का बहुत शौक था और कहते हैं कि उसके समय के लगवाये हुए आम के वृक्ष आज भी बसोहली क्षेत्र में खड़े हैं। राजा दौलतपाल के आठ बेटे थे। उसने अपने जीवन काल में ही अपने बड़े पुत्र गजेन्द्रपाल को राजतिलक दिया और स्वयं सत्ता से हट गया। उसने राहिन की जागीर अपने एक पुत्र गोधनपाल को दी। उसके वंशज राहिनियाल कहलाते हैं। दूसरी जागीर उसने अपने तीसरे बेटे केशवपाल को जंड़रोला की दी। उसके वंशज जंडरोतिया कहलाते हैं। इसी प्रकार उसने अपने अन्य बेटों को अलग-अलग जागीरें*देकर अलग-अलग स्थानों पर बसाया।

राजा गन्धर्वपाल–गन्धर्वपाल 1530 में राजा बना और उसने 1570 तक राज्य किया। वह मुगल सम्राट् अकबर का समकालीन था। उसने अपने भाई को अपना मंत्री बनाया।

यशपाल–गन्धर्वपाल के देहान्त के बाद 1570 में यशपाल बसोहली का राजा बना। उसने केवल दस वर्ष तक ही राज्य किया। उसने बसोहली राज्य में शान्ति स्थिर रखने के लिए अपने बेटों को जागीरें दे कर दूर-दूर के इलाके में भेज दिया। उसने भी अपने जीवन काल में अपने बड़े बेटे को राजगद्दी सौंप दी।

राजा कृष्णपाल–यह राजा 1580 के लगभग गद्दी पर बैठा। इस के शासनकाल में पहाड़ के तेरह राजाओं ने विद्रोह किया जिस में इस ने भी भाँग लिया। अकबर के सेनापति जैन खान कोका ने इस विद्रोह को 1589-90 में दबा दिया। इसके बारें में कई दन्त कथायें बसोहली क्षेत्र में प्रचलित हैं जिन में एक में कहा जाता है कि एक ब़ार नूरजहाँ को अपने साथ लेकर जहाँगीर नूरपुर में आया। उसने वहाँ सभी पहाड़ी राजाओं को बुलाया। राजा कृष्णदेव भी वहाँ गया। एक दिन जहाँगीर और पहाड़ी राजा जंगल में घूम रहे थे कि एक रीछ वहाँ दिखाई दिया। रीछ को देखकर सभी लोग डर गये किन्तु कृष्णपाल नहीं डरा, उसने अपने बरछे से रीछ को मार डाला। जहाँगीर उस की वीरता के देखकर बहुत प्रसन्न हुआ और उसने उसे शेरपाल की उपाधि दी। मुगल सम्राट् ने शाहपुर कंडी का इलाका भी इस राजा को पुरस्कार के रूप में दिया। किन्तु यह क्षेत्र बसोहली के अधिकार में अधिक समय तक न रहा।

**1. देखिये-राजदशर्नी पृष्ठ 80-81 लेखक गणेश दास बटैहड़ा*

राजा भूपतपाल—बसोहली के इतिहास में राजा भूपतपाल का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। इस राजा का जन्म 1573 ई॰ में हुआ। इस के पिता राजा कृष्णपाल का देहान्त 1595 में हुआ तो उस के बाद भूपतपाल बसोहली का राजा बना। जब यह सिंहासन पर बैठा उस समय इस की आयु केवल 22 वर्ष की थी। राजा भूपतपाल एक बलिष्ठ राजा था। वह प्रतिदिन सोलह किलो से अधिक चावल एक बकरे के माँस के साथ खाता था। पड़ोसी राजा उस की शक्ति को देख कर उस से भयभीत रहते थे और उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचते रहते थे।

नूरपुर का राजा जगतसिंह उसका समकालीन था। वह अपनी शक्ति बहुत बढ़ा चुका था। उसने चम्बा राज्य पर अधिकार कर लिया था। अब उस की दृष्टि बसोहली के राज्य पर थी। उंस ने मुगल-सम्राट् के दरबारियों से सांठ-गांठ की। मुगल दरबार ने राजा भूपतपाल को बुलाया और जब वह दरबार में उपस्थित हुआ तो मुगल-अधिकारियों ने उसे बन्दी बना कर दंगली दुर्ग में भेज दिया। राजा वहां चौदह वर्ष कैद रहा। 1627 में जहाँगीर की मृत्यु के बाद उसे मुक्ति मिली। वह दंगली से सीधा अपने राज्य में आ गया। वह वेश बदल कर एक दिन घूम रहा था तो उसे एक चमार ने पहचान लिया। बस फिर क्या था, उसके सभी साथी उससे आकर मिले। उन्होंने नूरपुर के राजा जगतसिंह के अधिकारियों को इस क्षेत्र से भगा दिया और भूपतदेव ने बसोहली के राज्य पर पुनः अधिकार कर लिया।

राजा भूपतदेव को दोबारा राज गद्दी पर बैठने के लिए फतेहजंग ने बहुत सहायता की थी। इस लिए राजा ने उसी को अपना वजीर बनाया। डॉ॰ चाड़क के अनुसार भूपतदेव 22 जुलाई 1627 को दोबारा राजा बना।

भूपतदेव ने पुनः राजगद्दी पर बैठने के बाद एक शक्तिशाली सेना का गठन करने के बाद पहले भड्डू को अपने अधिकार में लिया और बाद में भद्रवाह को जीता। उसने किशतवाड़ पर भी हमला किया और वहाँ से वह नीलकंठ का लिंग ले आया जिस की स्थापना बाद में उसने बसोहली के चौगान में की। उसने चम्बा पर भी आक्रमण किया और उसे अपने अधीन करने के बाद नूरपुर के भी कई इलाकों को लूटा।

राजा भूपतदेव ने पुरानी बसोहली के स्थान पर नई बसोहली की स्थापना की। यह नगर पुरानी बसोहली से कुछ दूर एक पहाड़ी ढलवान पर है और सुरक्षा की दृष्टि से भी उपयुक्त स्थान था। इस नये नंगर की स्थापना 1630 में की गई। पुरानी बसोहली के अवशेष रावी नदी के तट पर आज भी द्रष्टव्य है।

1635 में भूपतपाल दिल्ली के दरबार में अपनी उपस्थिति देने गया तो नूरपुर का राजा जगतसिंह भी वहीं था। वह भूपतपाल का कट्टर विरोधी था। उसने मुगल अधिकारियों

को अपने पक्ष में करके राजा भूपतपाल की हत्या कर दी। राजा भूपतदेव के वध का परिणाम यह निकला कि नूरपुर और बसोहली सदैव के लिए एक दूसरे के शत्रु बन गए और इन में वैमनस्य और बैर बढ़ता ही गया जो इस क्षेत्र में कलह का कारण बना।

राजा भूपतदेव ने दो विवाह किये हुए थे। पहला विवाह उसने किश्तवाड़ की राजकुमारी से संग्राम करते हुए किया था। उसके गर्भ से जो बेटा पैदा हुआ उसने उस का नाम संग्रामपाल रखा। उसने दूसरा विवाह चनैनी के राजवंश हिन्ताल में किया था। हिन्ताल रानी के पेट से जो बेटा पैदा हुआ उस का नामकरण हिन्तालपाल किया गया। संग्राम देव बड़ा था। अत: भूपतदेव के बाद वही बसोहली का राजा बना।

राजा संग्रामपाल–संग्रामपाल 1635 में जब बसोहली की राजगद्दी पर बैठा तो उस समय उस की आयु केवल सात वर्ष की थी। वह देखने में बहुत ही सुन्दर था, अत: उसकी सुन्दरता की चर्चा दिल्ली दरबार में भी पहुँची। जब वह बारह वर्ष का हुआ तो मुगल सम्राट् ने उसे दिल्ली बुला भेजा। बसोहली के दरबारियों को सन्देह था कि नूरपुर का राजा जगत सिंह कोई अन्य षड्यंत्र रच कर नये राजा का वध न करवा दे अत: उन्होंने राजा की रक्षा के लिए सौ सैनिकों का एक दल राजा के साथ दिल्ली भेजा। दिल्ली में मुगल सम्राट ने इस किशोर राजा का बहुत आदर मान किया और उसे कई उपहार दिये। मुगल सम्राट की बेगमों ने भी संग्रामपाल को देखने की इच्छा व्यक्त की तो दारा शिकोह राजा की आँखों में पट्टी बांध कर उसे अन्तरंग में ले गया। किन्तु बेगमों ने उससे कहा कि वास्तविक सौंदर्य तो आँखों में होता है, अत: पट्टी खोल दो। दारा शिकोह ने पट्टी खोल दी। बेगमों ने राजा को कई उपहार दिये। एक वर्ष दिल्ली में रहने का बाद संग्रामपाल बसोहली वापिस लौट आया।

राजा संग्रामपाल जैसे ही युवा हुआ उस ने सेना संगठित की और युद्ध की दुन्दुभि बजा कर चम्बा, गुलेर, कल्हुर, नूरपुर पर टूट पड़ा। उस ने अपने जीवन में बाईस लड़ाईयां लड़ीं जिन में अधिकांश में वह विजयी रहा। रावी नदी के पार भलाई क्षेत्र के अधिकार के प्रश्न पर संग्राम देव का चम्बा के राजा पृथ्वी सिंह से टकराव ही रहा। अन्त में पंजाब के हाकिम मीर खान के आदेश पर उसे भलाई का इलाका चम्बा के राजा को सौंपना ही पड़ा।

राजा संग्रामपाल ने अपने जीवन में 22 विवाह किये किन्तु फिर भी उसकी कोई सन्तान न थी, अत: 45 वर्ष की आयु में 1673 को जब वह मरा तो उस का भाई हिन्दालदेव बसोहली की गद्दी पर बैठा। हिन्दालदेव ने केवल पांच ही वर्ष राज्य किया और 1678 में उस की मृत्यु के बाद उस का बेटा किरपाल पाल बसोहली का राजा बना।

-राजा किरपाल पाल– यह राजा 1678 में बसोहली का राजा बना। इसने केवल

पन्द्रह वर्ष राज्य किया। इस के शासन काल में आयुर्वेद पर एक पुस्तक लिखी गई जो बसोहली के राज-वैद्य के वंशजों के पास सुरक्षित है। इस ग्रंथ का सृजन काल 1687 है। 1693 में किरपाल की मृत्यु हुई।

राजा धीरजपाल—किरपाल के देहावसान के बाद 1693 में धीरजपाल बसोहली का राजा बना। वह देखने में इतना सुन्दर था कि पंजाब के गवर्नर नवाब अदीना बेग की बेटी उस पर मोहित हो गई। राजा धीरजपाल और चम्बा के राजा के मध्य भलाई के इलाके के अधिक़ार को लेकर झगड़ा चलता ही रहा। अन्त में यह झगड़ा लड़ाई में बदला जिस में राजा धीरजपाल की मृत्यु'हुई।

राजा मेदिनीपाल—मेदिनीपाल अपने पिता की मृत्यु के समय केवल आठ वर्ष का था। अत: जब तक वह व्यस्क न हो गया बसोहली का प्रशासन मियां रत्नपाल ने चलाया। मेदिनी पाल ने जैसे ही होश सम्भाली उसने 'भलाई' का परगना हासिल करने के लिए चम्बा के राजा पर हमला कर दिया। पंजाब के हाकिम अदीनाबेग खान ने इन दोनों राजाओं में समझौता करवाने के लिए जुंद का परगाना चम्बा के राजा को दिलवाया। राजा मेदिनीपाल का देहान्त 1736 में हुआ।

राजा जीतपाल—यह राजा 1736 में बसोहली कीं गद्दी पर बैठा। इस के शासनकाल की सब से महत्वपूर्ण घटना यह घटी कि बसोहली के राजा ने जम्मू के राजा की सहायता से भड्डू पर हमला किया और उसे अपने अधिकार में ले लिया। इस राजा के शासन काल में बसोहली जम्मू का करदाता बना। राजा जीतपाल ने इक्कीस वर्ष राज्य किया और अन्त में 1757 में उसका देहावसान बसोहली में ही हुआ। जीत देव के दो पुत्र अमृतपाल और विक्रमपाल थे। राजा की मृत्यु के बाद उस का ज्येष्ठ पुत्र अमृतपाल बसोहली का राजा बना।

राजा अमृतपाल—राजा जीतपाल की मृत्यु के समय अमृतपाल केवल 12 वर्ष का था। उसे अल्पव्यस्क अवस्था में ही 1757 में दरबारियों ने बसोहली का राजा बनाया। जब वह चौदह वर्ष का हुआ तो जम्मू नरेश महाराजा रणजीत देव ने अपनी कन्या का विवाह उससे किया। 1763 में उस ने कांगड़ा के राजा अभयचन्द कटोच की कन्या से दूसरा विवाह किया।

अमृतपाल ने अपने शासनकाल में जम्मू नरेश के संरक्षण में भड्डू पर अधिकार किया। उसने बन्दरालता राजाओं से बसन्त गढ़ का क्षेत्र छीन कर अपने राज्य में सम्मिलित किया। उस ने पूरे लखनपुर राज्य पर अधिकार करके बसोहली के साथ मिला लिया। कहते हैं कि शाहपुर कंडी पर उसने अधिकार कर लिया था।

राजा अमृतपाल ने भद्रवाह और किशतवाड़ जीतने में जम्मू नरेश की सहायता की

और 1773 में कांगड़ा-अभियान में भी उसने भाग लिया। 1774 में जम्मू की ओर से उस ने चम्बा पर हमला किया। किन्तु चम्बा के राजा राजसिंह ने रामगढ़ियां सरदारों की सहायता से चम्बा को पुनः हासिल कर लिया।

राजा अमृतपाल ने बसोहली का चहुंमुखी विकास किया। इस के शासनकाल को बसोहली के इतिहास में स्वर्ण युग माना जाता है। इस राजा का देहान्त बत्तीस वर्ष की आयु में 1776 में हुआ।

विजयपाल–राजगद्दी पर बैठने के समय विजयपाल की आयु केवल तेरह वर्ष की थी। अभी उसे राजा बने छह वर्ष ही हुए थे कि चम्बा के राजा राजसिंह ने प्रतिशोध लेने के लिए बसोहली पर 1782 में आक्रमण किया। उसने विजयपाल से एक लाख रुपये लेकर उसे बसोहली का राज्य लौटाया। राजा विज़य पाल के समय में बसोहली और चम्बा के मध्य भलाई और जुंद के परगाने के अधिकार के प्रश्न को लेकर लड़ाइयां होती रहीं जिस से बसोहली राज्य कमज़ोर हो गया।

महेन्द्रपाल–विजयपाल के देहान्त के बाद 1806 में महेन्द्रपाल बसोहली का राजा बना। वह जम्मू के महाराजा रणजीत देव के दूसरे बेटे दलेलदेव की लड़की के गर्भ से पैदा हुआ था। राजा महेन्द्रपाल की भवन निर्माण में बड़ी रुचि थी। उसने बसोहली के महलों में रंगमहल और शीशमहल का निर्माण करवाया और उन में नायिकाओं के चित्र बनवाये। उसने वास्तुकला, चित्रकला, संगीत कला को बहुत प्रश्रय दिया। इस के शासनकाल में अन्य पहाड़ी रियासतों की भाँति बसोहली भी पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह के नियंत्रण में आ गई। बसोहली के राजा ने रणजीत सिंह की अधीनता स्वीकार कर ली। 1813 में महेन्द्रपाल लाहौर में हाजरी देने के बाद बसोहली लौट रहा था कि अमृतसर में वह बीमार हो गया और वहीं उस की मृत्यु हो गई।

राजा भूपेन्द्रपाल–महेन्द्रपाल के देहान्त के बाद भूपेन्द्रपाल 1813 में बसोहली का राजा बना। उसे लाहौर दरबार के बुलावे पर बार-बार लाहौर जाना पड़ता था। इस ने सिक्ख सेना के साथ कई बार युद्ध-अभियान में भी भाग लिया। यह पहला राजा था जिसने डोगरी को सरकारी भाषा घोषित किया। इस के शासन काल में चित्र कला को विशेष प्रोत्साहन मिला। सन् 1834 में लाहौर से लौटते समय यह राजा भी अमृतसर में बीमार पड़ गया और वहीं इस की मृत्यु हो गई।

राजा कल्याण पाल–कल्याण पाल बसोहली का अन्तिम राजा था। इस का जन्म 17 दिसम्बर 1834 को राजा भूपेन्द्र पाल की मृत्यु के दो मास बाद हुआ। इस की माता क्रिमची के भतियाल राज परिवार से और दादी जसरोटा राज परिवार से थी। उन दोनों ने इस छोटे शिशु को पाला।

1834 में पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह का सितारा बहुत ऊँचाई पर था। इन्होंने डुग्गर के सभी रजबाड़ों को अपने अधीन कर लिया था। जम्मू के राजा गुलाब सिंह, राजा ध्यान सिंह और राजा सुचेत सिंह उस की सेवा में थे। महाराजा रणजीत सिंह ने इन तीन भाइयों को डुग्गर प्रदेश के अन्तर्गत बड़ी-बड़ी जागीरें प्रदान कर दी थीं।

बसोहली की रानी जसरोटिया को भी रणजीत सिंह और गुलाब सिंह की नियत पर सन्देह था। उसे डर था कि कहीं महाराजा रणजीत सिंह बसोहली के महलों पर भी अधिकार न कर ले, अतः उस ने मूल्यवान आभूषण, सोना और नकदी अपने विश्वस्त लोगों को इस आशय से सौंपी कि महल से निष्कासन के बाद उस का परिवार इस का उपयोग कर सके। किन्तु मियां लाजनसिंह जो राजपरिवार से ही सम्बधित था, उसे सम्पत्ति का इस प्रकार निष्क्रमण पसंद नहीं आया। वह लाहौर गया और महाराजा से मिला। महाराजा ने उसे अल्पव्यस्क राजा का संरक्षक नियुक्त किया। किन्तु दादी रानी को मियां लाजन सिंह पसंद नहीं था अतः उसने उस का वध करवाने के लिए कुछ लोगों की सहायता ली। रानी ने किसी बहाने बातचीत के लिए मियां लाजन सिंह को महल के भीतर बुलाया। लाजनसिंह अपने भाई मानसिंह के साथ जैसे ही अन्दर पहुँचा रानी ने अपने आदमियों के द्वारा उसे एक 'दुग्ग' (काल-कोठरी) में फैंकवा दिया जिस में लाजन सिंह भूख और प्यास से तड़प-तड़प कर मर गया किन्तु मानसिंह को सिक्ख सैनिकों ने बचा लिया।

महाराजा रणजीत सिंह को जब इस दुर्घटना का पता चला तो उन्होंने 14 मई 1836 को बसोहली का इलाका एक जागीर के रूप में राजा ध्यान सिंह के ज्येष्ठ पुत्र राजा हीरा सिंह को दे दिया। राजा हीरा सिंह जसरोटा का पहले ही जागीरदार था। बसोहली की जागीर मिलने के बाद वह एक बहुत बड़े क्षेत्र का जागीरदार बन गया।

कल्याण देव जब दो वर्ष का हुआ तो राजा हीरा सिंह ने उसे जसरोटा भेज दिया। वह वहाँ कुछ महीने रहा। राजा हीरा सिंह के गुरू जल्ला पंत ने हीरा सिंह को सलाह दी कि वह शिशु राजा की हत्या करवा दे अन्यथा वह बड़ा होकर बसोहली राज्य का उत्तराधिकारी बनेगा किन्तु जसरोटा के वजीर बचना ने राजा की रक्षा की। राजा ध्यानसिंह को जब इस षड्यंत्र का पता चला तो उसने शिशु राजा को उसके मामा राय केसरी सिंह को सौंप दिया। राय केसरी सिंह उसे अपने घर काहनां चक्क ले आया। राजा का पोषण उसने वहाँ किया।

इसी बीच 1844 में राजा सुचेत सिंह और बाद में राजा हीरा सिंह का वध किया गया। दोनों निःसन्तान थे। अतः खालसा सरकार ने बसोहली की जागीर अपने अधिकार में ले ली। बाद में महारानी जिन्दा ने यह जागीर अपनी दासी मंगला को प्रदान की।

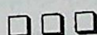
1845 में खालसा सेना और अंग्रेजों में लड़ाई छिड़ गई। खालसा सेना लड़ने के लिए मोर्चों पर चली गई। बसोहली के राजभक्त अधिकारियों को मौका मिला। उन्होंने खालसा सेना की टुकड़ी को बसोहली से भगा कर किशोर राजा कल्याण पाल को जिस की आयु ग्यारह वर्ष की थी, बसोहली की गद्दी पर बैठा दिया। राजा कल्याण पाल को गद्दी पर बैठे अभी कुछ महीने ही हुए थे कि अमृतसर संधि के अन्तर्गत जम्मू व कश्मीर का राज्य महाराजा गुलाब सिंह को मिल गया। महाराजा गुलाबसिंह ने राजा कल्याणपाल की तीन हज़ार रुपये वार्षिक पेन्शन निश्चित की और बसोहली का विलय जम्मू व कश्मीर राज्य के साथ 16 मार्च 1946 को कर दिया।

डॉ॰ सुखदेव सिंह चाड़क,के अनुसार कल्याण देव ने दो विवाह किये। उस की पहली रानी सिरमौर रियासत के राजवंश से तथा दूसरी मनकोट के राजवंश से थी। 1857 में राजा कल्याण देव भी नि:सन्तान मरा और उसकी मृत्यु के साथ ही पालवंशीय राजाओं का सूर्य अस्त हो गया।

बसोहली के राजाओं ने वास्तुकला, चित्रकला और मूर्तिकला में विशेष रुचि दिखाई। उन के समय में बसोहली का राजमहल पहाड़ के सात आश्चर्यों में एक माना जाता था। इस महल के भीतर निर्मित रंग महल और शीश महल वास्तु कला के सर्वोत्कृष्ट उदाहरण थे। राजा कल्याण पाल की रानियों के जीवन काल तक यह महल खड़ा था। उनके देहावसान के बाद यह संरक्षण न मिल पाने के कारण ध्वस्त हो गया। आज भी इस के खंडहर बसोहली में बिखरे पड़े हैं।

बसोहली के राजाओं ने चित्रकला को जो संरक्षण दिया उसके कारण बसोहली का नाम विश्व प्रसिद्ध है। बसोहली के चित्रकारों ने चित्रकला में जिस नई शैली को जन्म दिया उसे बसोहली कलम के नाम से अभिहित किया जाता है। बसोहली के चित्रकारों द्वारा बनाये गए राजा कृपालदेव, धीरजपाल, मेदिनीपाल के चित्र विशेष ख्याति अर्जित कर चुके हैं। देवी दास कृत 'रसमंजरी' भी विश्व भर में चित्रप्रेमियों में चर्चित है। इसी प्रकार मानक का नाम गीत-गोविन्द के चित्रों के कारण प्रसिद्ध है।

बसोहली के राजाओं ने आयुर्वेद, साहित्य और संगीत कला को भी समुचित प्रोत्साहन दिया। डोगरी भाषा को बसोहली के राजाओं ने सरकारी भाषा बनाया।



भड्डु

भड्डु बल्लपुर राज्य से विघटित एक छोटा सा राज्य था। यह राज्य लम्बाई में केवल 16 किलोमीटर था और इसकी चौड़ाई 10 किलोमीटर से लेकर 7 किलोमीटर के मध्य थी। इस राज्य के उत्तरपूर्व में बल्लपुर दक्षिण में कालीधार पर्वत श्रृंखला और पश्चिम में मनकोट (रामकोट) का राज्य था। इस राज्य की राजधानी भड्डु थी जो भीनी नदी के निकट एक पहाड़ी पर बसा है।

इस राज्य की संस्थापना डॉ॰ सुखदेव सिंह चाड़क के मतानुसार 1050 के लगभग बल्लपुर के राजा तुंगपाल के छोटे भाई तोषपाल ने की। तुगंपाल और तोषपाल बल्लपुर के राजा त्रिलोक पाल के पुत्र थे। राजा त्रिलोक पाल ने अपने जीवन काल में अपने कनिष्ठ पुत्र तोषपाल को हुटार की जागीर दी थी। किन्तु वह उस से सन्तुष्ट नहीं था। जैसे ही राजा त्रिलोक पाल का देहान्त हुआ, तोषपाल ने अपने बड़े भाई तुगंपाल से राज्य का आधा भाग मांगा। तुंगपाल के इन्कार करने पर वह पंजाब चला गया। वहाँ के मुसलमान हाकिम से उसने सैनिक सहायता ली और बल्लपुर पर आक्रमण कर दिया। बल्लपुर का राजा तुंगपाल सचेत नहीं था अतः तोषपाल ने बल्लपुर पर अधिकार कर लिया।

पंजाब से मुसलमान हाकिम ने जो सेना भेजी थी उस ने बल्लपुर को जीतने के बाद बिल्लेश्वर महादेव के मन्दिर से सोना और चाँदी लूट ली और मूर्तियों को तोड़ डाला। अपने इष्टदेव के स्थान का विनाश तोषपाल भी न देख सका। उसने अपने ज्येष्ठ भाई तुंगपाल से संधि की जिसके अन्तर्गत उसने तोषपाल को अपने राज्य का तीसरा भाग एक अलग राज्य के रूप में दे दिया। तोषपाल ने जिस नये राज्य की नींव डाली उसी को भड्डु और भड्डू के राजवंश के लोगों को भडवाल कहा गया।

भडवाल राजाओं की जो वंशावली मिली है उस में केवल बाईस राजाओं के ही नाम हैं। आठ सौ वर्ष की समयावधि के लिए ये नाम कम लगते हैं। लगता है कि वंशावली से कुछ नाम छूट गये हैं उपलब्ध नामों की सूची इस प्रकार है:-

1. राजा तोषपाल 2. राजा विक्रम पाल 3. राजा नरधन पाल 4. राजा गवारपाल 5. राजा धर्मगाल 6. राजा उतमपाल 7. राजा दक्षिणपाल 8. राजा अनिरुद्ध पाल 9. राजा क्रदनपाल 10. राजा अनन्तपाल 11. राजा जंर्नमपाल 12. राजा अभिमानपाल 13. राजा मानपाल 14. राजा छत्रपाल 15. राजा उदयपाल 16. राजा पूर्णपाल 17. राजा हंसपाल 18. राजा पृथ्वीपाल 19. राजा जयसिंह 20. राजा अवतार सिंह। इस वंशावली में दो और राजाओं के नाम भी हैं जिन में एक का नाम नकोदर पाल और दूसरे का नाम कर्मपाल

है। ये तारीख डोगरा देश के अनुसार अनिरुद्ध पाल के क्रमानुसार उत्तराधिकारी थे।

भड्डू के राजा पृथ्वीपाल के अतिरिक्त अन्य किसी भी राजा के शासन काल का विस्तृत ब्योरा किसी भी ऐतिहासिक पुस्तक में नहीं मिलता। इन के विषय में केवल इतनी ही जानकारी मिलती है कि पड़ोसी राजाओं के साथ इन का सीमा सम्बन्धी विवाद चलता रहता था। जिस के कारण छोटी-मोटी लड़ाईयां इस क्षेत्र में होती रहती थीं। इन लड़ाईयों में भडवाल प्राय: पराजित ही हुए जिस के परिणामस्वरूप इन्हें कभी एक शक्तिशाली राजा की तो कभी दूसरे शक्तिशाली राजा की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी।

भडवाल राजाओं के विषय में इतना प्रसिद्ध है कि वे धर्मभीरु थे। उन्होंने अपने राज्य में महादेव के कई मंदिर बनवायें, धर्मशालाएँ बनवाईं और तीर्थ-स्थानों का विकास किया। इन के समय में पंजतीर्थी तीर्थ को बहुत ही महत्व प्राप्त हुआ। यह स्थान पांच नदियों यथा उज्झ, भीनी, तिलहनी, नाज़, खुंड का संगम स्थल है।

इन राजाओं ने क्होग स्थान पर एक दुर्ग का निर्माण भी किया जो एक सीमावर्ती गाँव था। इसी गाँव में भगवान नृसिंह का मन्दिर भी है जिस के विषय में कहा जाता है कि उस की स्थापना भडवाल राजा के अनुचित निर्णय के विरोध में एक मेघ ने की थी। वही मेघ इस मन्दिर का पुजारी बना जिस के हाथ का चरणामृत भड्डू राजा को भी लेना पड़ा। कहते हैं कि कालीधार में स्थित बाला सुन्दरी मन्दिर का निर्माण भी किसी व्यापारी ने भडवाल राजाओं की अनुमति से ही किया।

भडवाल राजाओं में राजा पृथ्वी पाल डुग्गर के इतिहास में बहुत ही चर्चित रहा है। वह 1756 में भड्डू का राजा बना। बसोहली का राजा अमृतपाल भी उस का ही समकालीन था। राजा पृथ्वीपाल जम्मू नरेश रणजीत देव का दामाद और कृपापात्र भी था।

राजा पृथ्वीपाल के शासनकाल में भड्डू में कवि दतु (देवदत) पैदा हुआ जिसने हिन्दी में काव्य सृजन करके वीर विलास, ब्रजराज, पंचासिका भूप-वियोग, अमृत-वियोग, रघुचन्द्रिका, कृष्ण महिमन स्तोत्र, तथा कमलनेत्र हिन्दी सहित्य को भेंट किये। कवि दतु को डोगरी का भी आदि कवि माना जाता है। उसका एक डोगरी गीत-'किल्लेए बतना छोड़ि दिता' डोगरी की पहली साहित्यिक रचना मानी जाती है। इसके साथ ही भड्डू के कवियों की एक लम्बी पंक्ति खड़ी हो जाती है जिन्न में उल्लेखनीय नाम:-शिवराम और त्रिलोचन आदि हैं। किन्तु ये दोनों कवि राजा पृथ्वी पाल के परवर्ती हैं।

राजा पृथ्वीपाल का देहान्त अनुमानत: 1820 में हुआ और उसके देहावसान के बाद उसका पुत्र जयसिंह भड्डू का राजा बना। किन्तु उसके राजसिंहासन पर बैठने के पूर्व ही डुग्गर की रियासतों की स्वायतत्ता समाप्त हो रही थी और उन पर पंजाब के

महाराजा रणजीत सिंह का दबाव बढ़ रहा था। जम्मू के राजा गुलाबसिंह ने इस क्षेत्र की सभी पहाड़ी रियासतों को अपने अधीन करने का जो अभियान चलाया था उस से भड्डू भी नहीं बच सका। 1832 के लगभग राजा जयसिंह के देहान्त के बाद जैसे ही राजा अवतार सिंह भड्डू का राजा बना गुलाब सिंह ने बन्दरालता के जागीरदार राजा सुचेत सिंह को भड्डू पर अधिकार करने का आदेश दिया।

सुचेत सिंह की सेना जैसे ही भड्डू की ओर बढ़ी राजा अवतार सिंह ने पड़ोसी राजाओं से सैनिक सहायता माँगी किन्तु उसे जब किसी ने भी सहायता न दी तो वह अकेले ही लड़ा और पराजित हुआ। 1834 में राजा सुचेत सिंह ने भड्डू पर अधिकार कर लिया।

राजा गुलाब सिंह ने भड्डू के राजा अवतार सिंह को विद्रोही माना और उसे भड्डू से निष्कासित कर दिया। राजा अपने परिवार के साथ कांगड़ा जिला के अन्तर्गत त्रिलोकपुर चला गया। मार्च 1846 की संधि के अन्तर्गत गुलाब सिंह जब जम्मू कश्मीर का राजा बना तो उसने भड्डू का विलय ज़म्मू कश्मीर रियासत में कर दिया और भड्डू के राजा की तीन हज़ार रुपये वार्षिक पेन्शन निश्चित की। विलय के बाद भड्डू को कुछ समय के लिए जिला केन्द्र भी बनाया गया किन्तु बाद में जसरोटा में नया जिला खुलने के बाद भुड्डू केवल तहसील ही रह गया। बाद में यहाँ से तहसील कार्यालय भी उठा लिया गया।

राजा अवतार सिंह के बाद उसके बेटे ऊमीद सिंह को राजा का पद मिला। उस के देहान्त के बाद बजराज सिंह को राजा का पद मिला। भड्डू का यह राज परिवार आज भी त्रिलोकपुर कांगड़ा में रहता है।

सौमन्तक (सुमरता)

सौमन्तक भी बल्लपुर से विघटित एक अति छोटा और अठारह गाँवों तक परिसीमित राज्य था, जिस का संस्थापक राजा मानशक्य का छोटा भाई राजा सोमपाल था। उसने इस राज्य की स्थापना डाक्टर सुखेदव सिंह चाड़क के अनुसार नवमी शताब्दी के अन्तिम चरण में की थी।

इस राज्य के पूर्व में भड्डू, उत्तर में बल्लपुर और बन्दरालता पश्चिम में मनकोट तथा दक्षिण में जसरोटा राज्य थे। सौमन्तकों का उल्लेख चम्बा के दो ताम्रपत्रों में भी मिलता है जिन के अनुसार 1053 में कीरों और दुर्गर जाति से मिल कर इन्होंने चम्बा पर आक्रमण किया था।

सौमन्तक को सुमरता नाम से भी अभिहित किया जाता है। इस राज्य के राजवंश के लोग सुम्बरिया कहलाते हैं। ये लोग निडर और युद्ध प्रिय रहे हैं और यही कारण है

कि इन की लड़ाईयां निकटवर्ती राज्यों के साथ होती रहती थी।

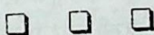
सौमन्तक राज्य की राजधानी थड़ा कलेयाल थी। यहीं इन का एक सुदृढ़ दुर्ग था जिसे यह अजेय समझते थे। इन्होंने दुर्ग से दो किलोमीटर नीचे बल्लपुर में स्थित हरिहर मन्दिर की अनुकृति पर एक शिव मन्दिर भी बनवाया जो आकृति में बहुत छोटा है। इस मन्दिर के पार्श्व में एक और मन्दिर है जो अर्वाचीन लगता है।

सौमन्तक के राजाओं की वंशावली उपलब्ध नहीं है। कहते हैं कि इस वंश के लोगों ने इस क्षेत्र में पैंतीस पीढ़ी राज्य किया।

सौमन्तक राजाओं के शासनकाल की सब से बड़ी घटना बुआ भागा के बलिदान की है जिस के विषय में कहते हैं कि उसने राजा द्वारा बढ़ाये गये मालिया के विरोध में अपनी नन्ही बच्ची को गोद में लेकर आत्मदाह किया।

सन् 1825 में मियां गुलाब सिंह ने सुमरता का किला हासिल करने के लिए इस राज्य पर आक्रमण किया तो सुमरता के लोगों ने बड़ी वीरता से गुलाब सिंह का सामना किया। अन्ततः लोमहर्षित लड़ाई के बाद ही गुलाबसिंह किले पर अधिकार करने में सफल हुआ।

गुलाब सिंह ने सुमरता पर अधिकार करने के बाद स्थानीय राजा को निष्कासित कर के इस क्षेत्र का विलय अपने राज्य के साथ किया।



भद्रावकाश

भद्रवाह को राजतरंगिणी में भद्रावकाश, वासुकिपुराण में भद्राश्रम के नाम से अभिहित किया गया है। भद्रवाह क्षेत्र की अधिष्ठातृ देवी भद्रकाली है और सम्भवतः उसी देवी के नाम पर इस स्थान का नाम भद्रावकाश या भद्राश्रम विख्यात हुआ।

भद्रवाह लोक परम्परा के अनुसार महाभारत युगीन राज्य है। इस की प्राचीन राजधानी दुग्ग नगर थी। भद्रवाह राजाओं की वंशावली में जोब नाथ और मेघनाथ के नाम मिलते हैं जिन के समय के बारे में कहा जाता है कि वे पांडवों के समकालीन थे। किन्तु इन राजाओं के वंशजों का कोई भी विवरण नहीं मिलता है।

भद्रवाह का प्रामाणित इतिहास दसवीं शताब्दी से ही मिलता है जब कि बल्लपुर के एक राजकुमार राधिकपाल ने इस क्षेत्र के कुछ भाग को जीत कर बल्लपुर राज्य में सम्मिलित किया था। डॉ॰ सुखदेव सिंह चाड़क के मतानुसार राधिका के हमले से पूर्व इस क्षेत्र में भी डुग्गर के अन्य क्षेत्रों की भाँति राणा प्रणाली प्रचलित थी जिन के राज्य छोटे-छोटे थे और आठ-दस या इस से भी कम गांवों तक सीमित थे।

राधिकपाल को ही बल्लपुर के राजा भोजपाल ने भद्रवाह का शासक बनाया किन्तु राधिकपाल की स्थिति बल्लपुर के अधीनस्थ राजा की थी। इस प्रकार भद्रवाह कई शताब्दियों तक बल्लपुर का करदाता राज्य रहा।

यह राज्य सुरक्षा की दृष्टि से बहुत ही सुरक्षित था। इस के उत्तर में किश्तवाढ़ राज्य, पूर्व में चम्बा राज्य, दक्षिण में बसोहली और पश्चिम में हिमता (चनैनी) राज्य था। यह राज्य चारों ओर से ऊंचे-ऊंचे पहाड़ों से घिरा हुआ था। अतः इस क्षेत्र में विदेशी आक्रमण बहुत कम हुए। केवल पड़ोसी राज्यों के साथ इस का टकराव चलता था जिन में चम्बा, बसोहली और किश्तवाढ़ उल्लेखनीय थे।

भद्रवाह की घाटी प्राकृतिक सौंदर्य के कारण भी अनुपम थी अतः इलाके के शान्त वातावरण में राधिकपाल के वंशजों ने निर्भ्रान्त होकर राज्य किया।

राधिकपाल के वंशजों ने लगभग अठारहवीं शताब्दी के अन्त तक इस क्षेत्र में राज्य किया किन्तु उन की वंशावली में जो नाम मिलते हैं वे इस काल अवधि के लिए कम हैं। डॉ॰ सुखदेव सिंह चाड़क ने भद्रवाह के राजाओं की जो सूची दी है उस में राजा नागपाल से पूर्व के राजाओं के नाम धूरीपाल, कलसपाल, इच्छा पाल, रणसिंह पाल, धर्मपाल, विक्रमपाल, विश्वम्भरपाल, थनपाल हैं। किन्तु ठाकुर काहन सिंह की सूची में राजा नागपाल से पूर्व के जिन आठ राजाओं के नाम हैं वे कुछ अलग से हैं जैसेः-

भद्रपाल, पृथ्वीपाल, अजयपाल, केलासपाल, कृष्णपाल, मदनपाल, नागपाल तथा विश्वम्भरपाल। दन्तकथाओं में भद्रपाल को भद्रवाह राज्य का संस्थापक कहा जाता है।

भद्रवाह के जिन राजाओं के शासनकाल का ब्योरा ऐतिहासिक ग्रंथों में उपलब्ध है उन का विवरण इस प्रकार है:-

राजा नागपाल—यह राजा मुगल सम्राट अकबर (1557-1605) का समकालीन था। इस राजा के विषय में भद्रवाह में कई दन्तकथाएँ प्रचलित हैं जिन में कहा गया है कि इस के पिता के जब कोई सन्तान न हुई तो उसने बासुकि नाग से मन्नत माँगी। उस के घर एक लड़का ऐसा पैदा हुआ जिसकी पीठ पर नाग का निशान था। राजा ने उस का नाम नागपाल रखा। अपने पिता की मृत्यु के बाद नागपाल भद्रवाह का राजा बना।

सन् 1585 के लगभग राजा नागपाल मुगल सम्राट् को उपहार भेंट करने उस के दरबार में गया। वहाँ उस ने झुक कर सम्राट का अभिवादन नहीं किया। एक दरबारी ने इसे सम्राट् का अपमान समझा और नागपाल की गर्दन में हाथ डालकर उसे झुकाने का प्रयास किया। किन्तु तभी नागपाल की पगड़ी से एक नाग प्रगट हुआ और उसने दरबारी को फुँकारा। दरबारी डर कर पीछे हट गया। मुगल सम्राट अकबर ने इसे एक चमत्कार समझा। उसने राजा को कई कीमती वस्त्र उपहार में दिये। राजा यह उपहार लेकर भद्रवाह आ गया। उसने वस्त्र जिन्हें भद्रवाही में पट्ट कहते हैं नाग देवता को समर्पित किये। राजा ने उस घटना की स्मृति में एक उत्सव का आयोजन किया जिसे 'पट्ट मेला' कहा गया। यह मेला परम्परागत ढंग से आज भी भद्रवाह में आयोजित होता है।

राजा नागपाल ने दुग्ग नगर के स्थान पर भद्रवाह को अपने राज्य की राजधानी बनाया। नागपाल को थनपाल भी कहते थे। डॉ॰ चाड़क ने उस की मृत्यु का समय 1620 अनुमानित किया है।

राजा भक्त पाल—राजा नागपाल के देहान्त के बाद 1620 के लगभग भक्तपाल भद्रवाह की राजगद्दी पर बैठा। कई इतिहासकारों के अनुसार भक्तपाल राजा नागपाल का छोटा बेटा था और कई उसे नागपाल का पोता और विश्वम्भर पाल का पुत्र मानते हैं।

उसके शासनकाल में पूर्व शासक 'राणाओं' ने राजा भक्त पाल के विरुद्ध-विद्रोह करके अपनी शक्ति को पुनः प्राप्त करने का यत्न किया, किन्तु राजा ने बड़ी सख्ती से उन का विद्रोह दबा दिया। इसी राजा के शासनकाल में बल्लपुर के राजा भूपतपाल ने भद्रवाह पर 1628 के लगभग आक्रमण किया और उसने भद्रवाह के राजा को अपना 'करदाता' राजा बनाया।

राजा ध्रुवपाल—इस राजा के शासनकाल से सम्बधित घटनाओं का विशेष उल्लेख किसी भी पुस्तक में नहीं मिलता। इस के समय के ताम्बे के पट्टे उपलब्ध हैं जिन में

एक 1691 का और दूसरा 1692 का बताया जाता है।

राजा अभयपाल–यह राजा 1691 में राजगद्दी पर बैठा और सोलह वर्ष तक राज सुख भोगने का बाद 1707 में इस का देहावसान हुआ। इसके शासनकाल में भद्रवाह में दुर्भिक्ष पड़ा और एक बहुत बड़ा तूफान आया जिस के कारण पुरानी राजधानी दुग्गनगर नष्ट हो गई।

राजा मेदिनीपाल–अभयपाल के बाद लगभग 1707 में मेदिनीपाल भद्रवाह का राजा बना। इस ने केवल तेरह वर्ष ही राज्य किया। भद्रवाह को नव-रूप देने का श्रेय राजा मेदिनी पाल को मिलता है। राजा ने अपने लिए नया महल भी बनवाया। इस राजा की मृत्यु 1730 में हुई।

राजा सम्पत पाल–सम्पत पाल 1730 को राजगद्दी पर बैठा उसने चालीस वर्ष राज्य किया और 1770 में उस का देहान्त हुआ। इस राजा के शासनकाल में अहमदशाह दुरानी ने पंजाब और कश्मीर पर आक्रमण किये। उस की सहायता जम्मू नरेश रणजीत देव ने की जिसके कारण दुरानी ने जम्मू के राजा को बहुत महत्व दिया और उसे पहाड़ी-रियासतों का मुखिया माना। महाराजा रणजीतदेव ने अपना प्रभाव पहाड़ी रियासतों में बढ़ाया। उसने किश्तवाड़ और चम्बा के इलावा भद्रवाह को भी अपने अधीन किया। इस प्रकार राजा सम्पत पाल के समय में भद्रवाह एक अधीनस्थ राज्य बना।

राजा फतहपाल–यह राजा 1770 में भद्रवाह की राजगद्दी पर बैठा। इस राजा के शासनकाल में जम्मू के कमजोर शासक वृजराजदेव ने भद्रवाह को चम्बा के अधीन किया। परिणामस्वरूप 1783 में चम्बा के राजा राजसिंह ने भद्रवाह के किले पर अधिकार कर लिया। इस के बाद राजा फतहपाल चम्बा राज्य के अधीन एक नाम-मात्र का राजा ही रहा। 1790 में इस राजा के देहान्त हुआ।

राजा दयापाल–1790 में दयापाल भद्रवाह की गद्दी पर जब बैठा तब चम्बा के राजा जयसिंह ने कई पड़ोसी रियासतों पर आक्रमण कर के उन्हें अपने अधीन कर लिया था। उसे दयापाल की निष्ठा पर विश्वास नहीं था, अतः उसने दयापाल के स्थान पर उसके चाचा भूपचन्द को गद्दी पर बैठाया। जयसिंह भूपचन्द से एक संधि पर हस्ताक्षर करवाना चाहता था जिसके अन्तर्गत भद्रवाह को चम्बा का हिस्सा घोषित करना था। भूपचन्द ने इस संधिपत्र को स्वीकार नहीं किया। परिणामस्वरूप जयसिंह ने भूपचन्द को गद्दी से हटा कर दयापाल को दोबारा गद्दी पर बैठा दिया।

किश्तवाड़ के राजा ने चम्बा और भद्रवाह के शासकों में मन-मुटाव देखा तो उसने कश्मीर के गवर्नर की सहायता से भद्रवाह पर हमला करने के लिए वजीर लखपत राय को भेजा। चम्बा के राजा को जब यह समाचार मिला कि किश्तवाड़ की सेना

भद्रवाह की ओर बढ़ रही है तो उस ने वजीर नत्थू को भद्रवाह की सुरक्षा के लिए भेजा। बसनोटा के स्थान पर दोनों सेनाओं में टकराव हुआ जिस में चम्बा की सेना पराजित होकर पीछे हट गई। किश्तवाड़ की सेना ने भद्रवाह पर अधिकार कर लिया। बाद में एक संधि के अन्तर्गत किश्तवाड़ की सेना ने बीस हज़ार रुपये लड़ाई के हर्जाना के रूप में लिए और वह भद्रवाह से हट गई। इस घटना के बाद दयापाल को चम्बा के राजा ने शीघ्र ही गद्दी से हटा दिया। वह दीनानगर चला गया और वहीं उस की मृत्यु हुई।

राजा पहाड़चन्द–दयापाल के गद्दी छोड़ने के बाद भूपचन्द का बेटा पहाड़चन्द 1810 के लगभग भद्रवाह की गद्दी पर बैठा। उसने जैसे ही प्रशासन सम्भाला, प्रशिक्षित सेना गठित की और चम्बा के राजा को वार्षिक कर देना बन्द कर दिया। चम्बा के राजा ने अपने मंत्री नत्थू को सेना देकर भद्रवाह के राजा को अपने अधीन करने के लिए भेजा। किन्तु पहाड़ चन्द की सेना ने नत्थु को पराजित कर के वहाँ से भगा दिया।

वज़ीर नत्थु ने पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह से सहायता माँगी। महाराजा ने इस शर्त पर सहायता देना स्वीकार किया कि चम्बा का राजा उसे रिहलु का किला और इलाका सौंप दे। चम्बा के राजा ने रिहलु का इलाका और किला महाराजा रणजीत सिंह को सौंप दिया। नत्थु वजीर सिक्ख फौज को अपने साथ लेकर जब भद्रवाह की ओर पुन: आया तो पहाड़चन्द ने यह समझ लिया कि इतनी बड़ी सेना के साथ टक्कर लेना उचित नहीं है। अत: उस ने रत्नगढ़ का किला नष्ट किया और भाग कर पंजाब चला गया और फिर वही अमृतसर में उस की मृत्यु हुई।

राजा पहाड़ सिंह कें चले जाने के बाद 1821 में चम्बा के राजा ने भद्रवाह को पूर्णत: अपने अधिकार में ले लिया। चम्बा के राजा ने नत्थु वजीर को ही भद्रवाह का हाकिम नियुक्त किया।

सन् 1833 में वजीर जोरावर सिंह ने जो गुलाब सिंह की ओर से किश्तवाड़ का हाकिम नियुक्त था, भद्रवाह पर हमला किया। किन्तु चम्बा के वजीर ने इस हमले को असफल कर के जोरावर सिंह को पीछे धकेल दिया।

1845 में चम्बा के राजा ने प्राकिम चन्द को भद्रवाह का नया हाकिम नियुक्त किया। उसके समय में डोगरा सेना भद्रवाह को अपने अधिकार में लेने में सफल हो गई।

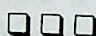
मार्च 1846 को अमृतसर में अंग्रेजी सरकार और महाराजा के मध्य जो संधि हुई उस के अन्तर्गत भद्रवाह का विलय महाराजा गुलाब सिंह ने जम्मू कश्मीर राज्य में कर दिया।

जंम्मू कश्मीर के महाराजा रणवीर सिंह ने भद्रवाह का क्षेत्र अपने तीसरे पुत्र राजा अमर सिंह को जागीर के रूप में दिया। किन्तु राजा अमर सिंह का पुत्र हरि सिंह जब

जम्मू कश्मीर का महाराजा बना तो उस ने इस क्षेत्र का विलय जम्मू व कश्मीर रियासत में पुनः कर दिया।

अब भद्रवाह जम्मू कश्मीर राज्य की मात्र तहसील का मुख्यालय है।

भद्रवाह के पालवंशीय राजे नागपूजक थे, अतः उन्होंने भद्रवाह में नाग देवताओं के कई मन्दिर बनवाये जिन में भद्रवाह में स्थित वासुकि नाग मन्दिर और गाठा में नाग का मन्दिर प्रसिद्ध है। इन मन्दिरों में वासुकि नाग की काले पत्थर की जो मूर्तियें प्रतिष्ठित हैं वे तक्षणों कला का सर्वोत्कृष्ट नमूना मानी जाती है। पाल राजाओं ने नाग देवताओं के अतिरिक्त शिव और शक्ति के भी कई स्थान प्रतिष्ठित किये जिन में भद्रदेवी और महादेव के मन्दिर उल्लेखनीय हैं। ये राजा धर्मभीरु थे, अतः शाँतिपूर्वक रहते थे। इन के शासनकाल में प्रजा सुखी थी और भद्रवाह में सुख और समृद्धि थी। इन राजाओं को भवन बनाने का भी शौक था। इन के भवनों में काष्ठ का प्रयोग बहुत हुआ है।



मनकोट राज्य

मनकोट राज्य का संस्थापक मानकदेव नाम का एक सामंत था। उसने सन् 1300 के लगभग इस नये राज्य की स्थापना की। राजदर्शनी तथा तारीख डोगरा देश के अनुसार मानकदेव बबौर से स्थानान्तरित होकर मनकोट आया था। इन ऐतिहासिक ग्रंथों से यह स्पष्ट होता है कि मनकोट बब्बापुर राज्य का ही नया नाम था। मानकदेव ने सुरक्षा की दृष्टि से अपनी राजधानी बब्बापुर से मनकोट में बदली थी।

राजतरंगिणी में बब्बापुर का उल्लेख कश्मीर के राजा कलश (1087 ई०) और सुस्सल (1112-20) के सन्दर्भ में हुआ है जिस से यह विदित होता है कि बब्बापुर डुग्गर का प्राचीनतम राज्य था अथवा यह डुग्गर की पुरानी राजधानी थी। ऐतिहासिक पुस्तकों में बब्वापुर के राजाओं के नाम यथाक्रम कीर्तिधर, वज्रधर और उमाधर वर्णित हैं जिन का शासनकाल 1080 से लेकर 1130 के बीच का है। बब्बापुर में डुग्गर की उन्नत वास्तुकला का प्रतीक वे पाँच मन्दिरों के अवशेष हैं जिन के विषय में कहा जाता है कि उन का निर्माण समय दसवीं से बारहवीं शताब्दी के बीच हुआ है।

लोक परम्परानुसार आततायियों द्वारा बब्बापुर को जला दिये जाने के बाद इस राज्य की राजधानी बदली गई। कभी बब्बापुर बहुत बड़ा राज्य रहा होगा किन्तु मानकदेव के समय में इस राज्य के अन्तर्गत केवल सोलह ही गाँव थे। इस राज्य की सीमा पूर्व में तलहन नाले से आरम्भ होती थी तथा पश्चिम में मानसर झील तक परिव्याप्त थी।

मानकदेव के वंशज मनकोटिया कहलाये। मनकोटिया राजाओं की जो वंशावली राजदर्शनी में दी गई है वह इस प्रकार हैः-

1. मानकदेव
2. उदय देव
3. नागरदेव
4. उत्तमदेव
5. हरिश्चन्द्र देव
6. अमलदेव
7. कैलाश देव
8. भूमदेव
9. सरहरदेव
10. प्रताप देव
11. अर्जुन देव
12. शीतलदेव
13. ठुठादेव
14. त्रिढ़ी सिंह
15. अजमलदेव
16. दलेलदेव
17. चतुरदेव

इस वंशावली में राजा महिपतदेव का उल्लेख नहीं है। यह राजा शीतलदेव का उत्तराधिकारी था और इसने अपने शासनकाल में चित्रकला को बहुत प्रोत्साहन दिया। इस के समय में बने कई चित्र अब विश्वविख्यात चित्र-प्रदर्शनियों में प्रदर्शित हो चुके हैं।

मनकोट के राजाओं का उल्लेख कई ऐतिहासिक ग्रंथों में उपलब्ध है। तारीख डोगरा देश के अनुसार 1588-89 में जब तेरह पर्वतीय क्षेत्र के राजाओं ने अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया तो उस में मन कोट के राजा प्रताप देव ने भी भाग लिया। इसी पुस्तक के अनुसार राजा शीतल देव ने मनकोट के सोलह गाँवों में सोलह पंचायतें स्थापित करने के बाद एक केन्द्रीय पंचायत बनाई। राजा प्रतापदेव के समय में हिमायुं का भाई मिर्ज़ा कामरान मनकोट में शरणागत हुआ और उसने मनकोट में रहने के लिए महल बनवाने का काम भी आरम्भ किया किन्तु बाद में राजा को संदेहास्पद व्यक्ति मान कर इस राज्य से चला गया।

मनकोट में दन्तकथाओं के अनुसार शेरशाह सूरी के वंशज़ों ने मुगलों से पराजित होने के बाद शरण ली और म्होरगढ़ का दुर्ग अपनी सुरक्षा के लिए बनवाया।

मनकोट का राजा त्रिढ़ी सिंह एक ओर अपनी वीरता के लिए दिल्ली दरबार तक प्रसिद्ध था दूसरी ओर एक अन्यायी और क्रूर राजा होने के कारण अपनी प्रजा द्वारा लांछित भी हुआ। त्रिढ़ी सिंह का उत्तराधिकारी राजा अज़मतदेव बड़ा ही दूरदर्शी था। वह जम्मू के राजा रणजीतदेव का समकालीन था। उसने कांगड़ा युद्ध अभियान में रणजीतदेव की सेना का साथ दिया था। राजा अज़मतदेव की मृत्यु घोड़े से गिरने के कारण हुई। उसके बाद उस का पुत्र दलेलसिंह मन कोट का शासक बना। उसकी मृत्यु के बाद मन कोट की गद्दी पर राज़ा छतर सिंह बैठा।

राजा छतर सिंह को सिंहासन पर बैठे अभी कुछ ही वर्ष हुए थे कि राजा गुलाब सिंह को महाराजा रणजीत सिंह ने जम्मू का राजतिलक दे दिया। गुलाब सिंह ने राजा बनते ही आस-पास के छोटे-छोटे राज्यों को जीत कर उनका विलय अपने या अपने भाईयों के राज्य में करना आरम्भ किया। 1825 को गुलाब सिंह ने बन्दरालता के राजा सुचेत सिंह को जो महराजा का भाई था, मनकोट पर आक्रमण करने का आदेश दिया। राजा सुचेत सिंह ने अपने सेनापति राय केसरी सिंह को मनकोट पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया। मनकोट के राजा छतर सिंह ने राय केसरी सिंह से लड़ाई नहीं की। परिणामस्वरूप राय केसरी सिंह ने मनकोट पर उसी समय अधिकार कर लिया।

मनकोट के राजा छतर सिंह ने राज्य छीन लिए जाने के बाद मनकोट छोड़ दिया और वह जिला कांगड़ा के अन्तर्गत एक गाँव सालगरी में चला गया। बाद में महाराजा

रणजीत सिंह ने उसे पाँच हज़ार रुपये वार्षिक आय की जागीर कांगड़ा क्षेत्र में ही प्रदान की, राजा छतर सिंह के पुत्र राजा पूर्वसिंह ने मनकोट को पुनः प्राप्त करने के लिए भरसक प्रयास किया। उसने ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की कि उसे उसके पूर्वजों का राज्य लौटा दिया जाये। किन्तु अंग्रेज़ों ने उसके प्रार्थना पत्र को स्वीकार नहीं किया। 1844 में राजा सुचेत सिंह की मृत्यु के बाद गुलाब सिंह ने मनकोट का विलय जम्मू राज्य के साथ कर दिया।

मनकोट के राज्य में चाहे सोलह ही गाँव थे और उन को बहुत कम राजस्व मिलता था फिर भी उन्होंने मनकोट के चहुँमुखी विकास के लिए अर्पूव प्रयास किया। इस छोटे से राज्य की रक्षा के लिए उन्होंने चार किले निर्मित किये जिन में मनकोट, बाड़ीगढ़ और म्होरगढ़ के किले बहुत ही सुदृढ़ थे तथा स्थापत्य कला की दृष्टि से मुगल शैली से प्रभावित थे। उन के शासनकाल में स्थान-स्थान पर शिलालेख भी उत्कीर्ण किये गये जिन में एक शिलालेख पुरानी टाकरी में था जो मनकोट दुर्ग के मुख्यद्वार पर लगाया गया था। एक शिलालेख हनुमान की बड़ी मूर्ति के साथ आज भी उत्कीर्ण है जिस की लिपि पुरानी है। तालाब की दीवार में लगा शिलालेख डोगरी लिपि में है।

मनकोट के राजाओं ने पौराणिक और लौकिक देवी देवताओं के भी दर्जनों मन्दिर बनवाये। उन का महल मनकोट में स्थित था जो सम्भवतः तीन मंजिल का था। मनकोट के शासक चित्रकला के भी संरक्षक थे।

रामकोट—राजा सुचेत सिंह ने मनकोट पर अधिकार करने के बाद इस का नाम बदल कर रामकोट रखा। राजा सुचेत सिंह के समय में राव केसरी सिंह रामकोट का प्रशासक रहा और उसने अपना ध्यान शान्ति स्थापना की ओर ही दिया। राजा सुचेत सिंह के देहावसान के बाद रामकोट का वैभव उजड़ने लगा और वह देखते ही देखते खंडरातों में बदल गया।

महाराजा रणवीर सिंह ने इस नगर को एक बार पुनः पुनर्जीवन दिया। उन्होंने अपनी बड़ी बेटी के विवाह के अवसर पर रामकोट के सात गाँव एक जागीर के रूप में अपने दामाद रघुनाथ सिंह को दिये और पाँच गाँव उन्होंने अपनी बेटी को दिए। महाराजा ने रघुनाथ सिंह को राजा की उपाधि भी प्रदान की। राजा रघुनाथ सिंह ने अपने रहने के लिए रामकोट में नये महल बनाये और वह अपने परिवार के साथ रहने लगा। राजा रघुनाथ सिंह ने महाराजा रणवीर सिंह की दूसरी बेटी के इलावा तीन और विवाह किए। इस प्रकार उस की पाँच रानियां थी। राजा रघुनाथ सिंह के चार पुत्र थे जिन के नाम लक्ष्मण सिंह, संतदेव सिंह, शिवदेव सिंह और हरदेव सिंह थे। राजा रघुनाथ सिंह के देहान्त के बाद उस का बेटा लक्ष्मण सिंह राम कोट का राजा बना किन्तु वह शराब का

अतिव्यसनी था, अतः 42 वर्ष की अल्पायु में उस का देहान्त हो गया। उस का उत्तराधिकारी राजकुमार चैन सिंह बना।

अप्रैल 1948 को जम्मू कश्मीर में जागीरदारी प्रथा का अन्त कर दिया गया। परिणामस्वरूप रामकोट जागीर का विलय जम्मू व कश्मीर राज्य में हो गया। राजकुमार चैन सिंह रामकोट छोड़ कर अम्ब होशियारपुर चला गया वहाँ उस की पैतृक जागीर थी। आज रामकोट के अतीत का इतिहास वहाँ के भग्नावशेषों में ही अन्तर्निहित है।



1. दन्तकथाओं में कहा जाता है कि बब्बापुर की स्थापना पांडव वंशीय राजा बभ्रुवाहन ने की थी। उसने अपने नाम पर इस नये राज्य का नाम बब्बापुर रखा।

हिमता राज्य

हिमता डुग्गर का एक प्राचीन राज्य रहा है। कहते हैं कि इस का प्राचीन नाम हिमतल था जो बाद में बिगड़ते-बिगड़ते हिमता या हियुंता हो गया। किसी समय यह एक विस्तृत मध्यपर्वतीय राज्य था। इस की दक्षिणी सीमा कोटली और उत्तरी सीमा पीरपंचाल पर्वत श्रृंखला थी। किन्तु बाद में यह राज्य सिमटता गया। उन्नीसवीं शताब्दी में इस का रूप केवल एक जागीर का रह गया जिस का क्षेत्रफल केवल 97 वर्ग मील था। और इस के अन्तर्गत केवल 48 गाँव थे। इस की वार्षिक आय मात्र पचास हज़ार रुपये वार्षिक थी।

लोक परम्परा के अनुसार आज से बारह सौ वर्ष पूर्व इस क्षेत्र में 'राणा' प्रणाली का ही शासन था। राणा बहुत ही क्रूर थे, अतः स्थानीय लोग उन से बहुत दुःखी थे। इस इलाके में जो लोग रहते थे उन में मेघ कबीले के लोग अधिक संख्या में थे। उन्होंने भी अपना अलग राज्य स्थापित कर लिया था। जिस का सरदार भी 'मेघ' कबीले का था। किन्तु मेघ कबीले के सरदार को राणा बहुत तंग करते थे। वे उसके इलाके में घुस कर पशुओं को हाँक कर ले जाते थे और जन तथा धन की भी हानि करते थे। अन्ततः तंग आकर मेघ सरदार ने विलासपुर के चन्देल राजा वीर चन्द से सहायता माँगी। राजा वीरचन्द ने मेघ सरदार की सहायता के लिए अपने भाई गम्भीर चन्द को भेजा। गम्भीर चन्द ने मेघ कबीले के लोगों की सहायता से अत्याचारी राणाओं को इस क्षेत्र से भगा दिया। मेघ कबीले के सरदार ने राणाओं से मुक्ति पाने के बाद गम्भीरचन्द को ही इस क्षेत्र का राजा स्वीकार किया। इस प्रकार नवमीं शताब्दी में राजा गम्भीर राय ने इस राज्य की स्थापना की। उसने तवी नदी के तट पर 'चक्क' गाँव को अपनी राजधानी बनाया। बारहवीं शताब्दी के लगभग गम्भीर राय के वंशज चंदेल राजाओं ने अपनी जाति के नाम पर लद्दा पहाड़ के नीचे एक सीढ़ीनुमा मैदान में एक नये नगर की नींव रखी जिस का नामकरण उन्होंने चन्देल नगरी किया। बाद में 'चन्देल नगरी' का ही नाम बदलते-बदलते चनैनी पड़ा। चनैनी के नामकरण के बाद हिमता या हियुंता राज्य का नाम भी चनैनी राज्य पड़ गया। चनैनी राज्य का पुराना नाम हियुंता था अतः इस राज्य के राजवंश के लोगों को हिन्ताल कहा जाने लगा। चनैनी राज्य के शासकों की वंशावली में जो नाम मिलते हैं उन का क्रम इस प्रकार है:-

1.	गम्भीर चन्द	21.	सुशील चन्द	41.	शमशेरचन्द
2.	अमर चन्द	22.	हमीर चन्द	42.	किशोरचन्द
3.	संसारचन्द	23.	भूमिचन्द	43.	तेगचन्द
4.	अमीर चन्द	24.	त्रिलोक चन्द	44.	झगड़चन्द
5.	पूर्व चन्द	25.	दीपचन्द	45.	दयालचन्द
6.	पुपचन्द	26.	गुणगारचन्द	46.	गजेन्द्रचन्द
7.	नरसिंहपाल	27.	अजयचन्द	47.	किदारचन्द
8.	अगमपाल	28.	गन्नेचन्द	48.	रामचन्द
9.	सिद्धपाल	29.	अमीरचन्द		
10.	हठीपाल	30.	मदनचन्द		
11.	ज्ञानपाल	31.	अगमचन्द		
12.	अभयपाल	32.	समीरचन्द		
13.	शशिपाल	33.	मीरचन्द		
14.	धर्मपाल	34.	रामचन्द (पहला)		
15.	देवीपाल	35.	अनुरोध चन्द		
16.	दुयोधनपाल	36.	गड़मल चन्द		
17.	युद्धपाल	37.	सहनचन्द		
18.	हरिचन्द	38.	जयचन्द		
19.	बज्रचन्द	39.	गुग्गाचन्द		
20.	भागचन्द	40.	भोपालचन्द		

चनैनी के राजाओं की वंशावली में राजा मीरचन्द से पहले के राजाओं में से किसी का भी उल्लेख किसी ऐतिहासिक पुस्तक में नहीं मिलता। डोगरी लोक गीतों, लोक गाथाओं, दन्तकथाओं में भी इन की कहीं कोई चर्चा नहीं है। इस वंशावली से यह आभास भी मिलता है कि गम्भीर चन्द की छठी पीढ़ी के बाद इस क्षेत्र पर पालवंशीय राज़ाओं ने अधिकार कर लिया होगा क्योंकि इस वंशावली में ग्यारह राजा पालवंशीय हैं।

चनैनी के जिन राजाओं के शासन काल के विषय में कहीं से कोई जानकारी मिलती है उन का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:–

राजा रामचन्द (प्रथम)–चनैनी के इतिहास में राजा रामचन्द का नाम बड़े सम्मान से लिया जाता है। राजा रामचन्द चनैनी का पहला राजा था जिसने 'सुद्ध महादेव' तीर्थ स्थान का विकास किया। इस स्थान के पौराणिक महत्व को देखते हुए यहाँ कई नये मन्दिर और सराय बनवाईं और यात्रियों की सुविधा के लिए चनैनी से सुद्ध महादेव तक मन्दिरों की एक लम्बी श्रृंखला खड़ी की।

राजा रामचन्द का शासन काल 1570 से 1620 तक अनुमानित है। डॉ॰ सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार राजा रामचन्द भारत सम्राट अकबर का समकालीन था। दन्तकथाओं में कहा जाता है कि 'विनिसंग' तीर्थ का विकास उस के शासन काल में हुआ था। वहाँ एक चट्टान पर जो शिलालेख उत्कीर्ण है, वह राजा रामचन्द के समय का बताया जाता है।

राजा रामचन्द के बाद चनैनी की राजगद्दी पर अनुरोधचन्द, गड़मलचन्द, सहनचन्द, जयचन्द, गुग्गा चन्द और भोपालचन्द क्रम से बैठे। किन्तु उन के शासन काल में कोई उल्लेखनीय ऐतिहासिक घटना घटित न हुई। केवल भोपालचन्द ने अपने राज्य की सीमा को बढ़ाने का यत्न किया जिस में उसे आंशिक सफलता ही मिली। शेष राजाओं ने चनैनी में शान्तिपूर्वक राज्य किया।

राजा शमशेर चन्द–राजा भोपाल चन्द के देहान्त के बाद शमशेर चन्द अनुमानतः 1760 में राजगद्दी पर बैठा। वह जम्मू नरेश रणजीत देव का समकालीन था। उसी के शासनकाल में अहमद शाह दुरानी ने महाराजा रणजीत देव की सहायता से कश्मीर पर अधिकार किया और वहाँ सुखजीवन को मुख्य प्रशासक (गर्वनर) नियुक्त किया। 1764 को सुखजीवन ने अहमद शाह दुरानी के विरुद्ध-विद्रोह किया और स्वयं कश्मीर का शासक बन बैठा। अहमद शाह दुरानी ने जम्मू के राजा रणजीत देव और चनैनी के राजा शमशेर चन्द को इस विद्रोह का दमन करने के लिये कश्मीर भेजा। राजा रणजीत देव और राजा शमशेर चन्द ने इस विद्रोह को बड़ी कठोरता से दबा दिया। वे सुखजीवन को बन्दी बनाने में भी सफल रहे।

अहमद शाह दुरानी ने राजा शमशेर चन्द पर प्रसन्न हो कर उसे कश्मीर में एक जागीर प्रदान की जो उन के वंशजों के पास 1819 तक बनी रही।

राजा शमशेर चन्द जम्मू की सेना के साथ कांगड़ा-युद्ध-अभियान में भी सम्मिलित हुआ। जब वह कांगड़ा में था तो नूरपुर के राजा पृथ्वी सिंह ने किसी से सुना कि शमशेर चन्द के पास जो तलवार है, वह चामत्कारिक है, तो उसने छल से वह तलवार प्राप्त करने के लिए शमशेर चन्द का अनुसरण किया। एक दिन जन्द्राह के निकट एक मन्दिर में राजा शमशेर चन्द पूजा कर रहा था कि राजा पृथ्वी सिंह ने उस पर घातक हमला करके उस का वध कर दिया। वह तलवार अपने साथ ले गया। इस घटना के बाद चनैनी और नूरपुर के राजाओं के सम्बन्ध बिगड़ गये। चनैनी राजवंश के लोग नूरपुर के राजवंश के लोगों का सामाजिक बहिष्कार करने लगे और यह बहिष्कार आज तक प्रचलित है। शमशेर चन्द के देहान्त के बाद उसका बेटा किशोर चन्द गद्दी पर बैठा। उस की मृत्यु के बाद तेगचन्द राजा बना। तेग चन्द के घर एक ही लड़की पैदा हुई। जब तेग चन्द मर गया

तो उस की लड़की ने राजगद्दी पर अपना दावा पेश किया। 'मियां विस्सु' ने उस का समर्थन किया। किन्तु झगड़ चन्द के पुत्र दयालचन्द ने राजगद्दी पर अपना अधिकार जतलाया। इस बात पर दोनों दलों में झगड़ा हो गया जिस में मियां बस्सु मारा गया। मियां बस्सु की मौत के बाद दयालचेन्द चनैनी की राजगद्दी पर बैठा।

राजा दयालचन्द—राजा दयालचन्द पंजाब केसरी महाराजा रणजीत सिंह का समकालीन था। वह एक वीर योद्धा और महत्वाकांक्षी राजा था। उसने लड़-झगड़ कर राज्य हासिल किया था, अतः राजवंश के कुछ लोग उस पर प्रसन्न नहीं थे। उन्हीं के उकसाने पर भूति के राजा ने चनैनी के 'चोरगल्ला' किले पर हमला बोल दिया, और इस का परिणाम यह निकला कि चनैनी राज्य का यह क्षेत्र चनैनी के हाथ से निकल गया। महाराजा रणजीत सिंह ने भी राजा दयालचन्द की मार्तण्ड की जागीर अपने हाथ में ले ली। इस से राजा को जो डेढ़ लाख रुपये का राजस्व प्राप्त होता था, वह भी बन्द हो गया।

सन् 1823 ई० में दयालचन्द को और भी बुरे दिन देखने पड़े। बन्दरालता जागीर का शासक राजा सुचेत सिंह तीर्थ-यात्रा के बहाने सुद्ध-महादेव में आया तो उसने चनैनी राज्य के मरोठी गाँव पर अधिकार कर लिया। राजा दयाल चन्द ने प्रतिकार किया तो राजा सुचेत सिंह ने सिक्ख सेना की सहायता से चनैनी पर हमला करके राजा के महल जला कर चनैनी पर अधिकार कर लिया। राजा दयालचन्द ने अपना परिवार शिवगढ़ जैसे सुरक्षित दुर्ग में भेजा और स्वयं लाहौर चला गया। वहाँ वह महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में उपस्थित हुआ और चनैनी राज्य लौटाने की प्रार्थना की। महराजा ने उस की प्रार्थना स्वीकार की और जम्मू के राजा गुलाबसिंह के नाम फरमान भेजा कि वह राजा दयालचन्द को चनैनी का राज्य पुनः सौंप दे। राजा दयालचन्द फरमान लेकर गुलाबसिंह के पास जम्मू आ गया। गुलाबसिंह ने उसे दो महीने जम्मू में ही ठहराया और बाद में वह उसे उधमपुर में ले आया। उधमपुर में कामेश्वर मन्दिर में बैठ कर राजा गुलाब सिंह ने राजा दयालचन्द से एक संधि की। इस सन्धि के अन्तर्गत चनैनी का बटोत और उधमपुर का इलाका गुलाब के हिस्से में आया। रुधार का इलाका ध्यान सिंह को मिला कोटली और नगोलटा का इलाका सुचेत के हिस्से आया और जो शेष बचा राजा दयाल चन्द को मिला। इस नई संधि के अन्तर्गत चनैनी का राज्य का दर्जा समाप्त कर दिया गया और इसे केवल 'जागीर' स्वीकार किया गया।

इस संधि के बाद राजा दयाल चन्द की मृत्यु 1853 में हुई। राजा दयाल चन्द के देहान्त के बाद उस का ज्येष्ठ पुत्र गजेन्द्रचन्द चनैनी जागीर का राजा बना। उसने 27 वर्ष राज्य किया और अन्त में 1880 में उस का देहान्त हुआ। उस के बाद बद्री चन्द चनैनी का राजा बना किन्तु वह दो साल के बाद ही मर गया। वह निःसन्तान था, अतः उसका

अल्प व्यस्क भाई केदार चन्द राजगद्दी पर बैठा।

राजा केदार चन्द—राजा केदारचन्द जब राजगद्दी पर बैठा तो उस समय उस की आयु बारह वर्ष की थी। अतः जागीर का प्रशासन चलाने के लिए एक समिति का गठन किया गया। राजा केदार चन्द देखने में अति सुन्दर था। महाराजा प्रताप सिंह के छोटे भाई रामसिंह की एक बेटी थी। राजा रामसिंह ने केदार चन्द को अपना दामाद बनाया। केदारचन्द का विवाह 1894 में हुआ और इस से चनैनी के सम्बन्ध जम्मू के राजदरबार से पुनः जुड़ गये।

केदारचन्द चाहे जागीरदार था किन्तु उसे मेजिस्ट्रेट प्रथम श्रेणी के अधिकार प्राप्त थे। वह अपनी जागीर में प्रथम श्रेणी का मुन्सिफ भी था। जागीर में सभी प्रशासनिक कार्य उसी की आज्ञा से होते थे।

राजा केदारचन्द के तीन पुत्र रामचन्द, जयचन्द और तीर्थचन्द थे। उस की एक बेटी भी थ। जिस का विवाह उसने रामकोट के जागीरदार लक्ष्मण सिंह से किया।

राजा केदारचन्द ने अपने रहने के लिए चनैनी में नया महल भी बनवाया। उसका शासनकाल चनैनी के लोगों के लिए शांतिदायक रहा।

राजा रामचन्द—केदारचन्द के देहावसान के बाद उस का ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द चनैनी की राजगद्दी पर बैठा। वह पढ़ा लिखा था और उस की पढ़ाई का विशेष प्रबन्ध महाराजा प्रताप सिंह ने शिक्षक नियुक्त करके किया था। अतः जब वह राजा बना तो जम्मू कश्मीर सरकार ने उसके अधिकार और बढ़ा दिये। उसे जिला मैजिस्ट्रेट और जिला स्तरीय न्यायाधीश के अधिकार दिये गए। उसके निर्णय की अपील केवल हाईकोर्ट ही सुनता था। किन्तु राजस्व सम्बन्धी उस का निर्णय अन्तिम माना जाता था। उसने प्रशासन का काम चलाने के लिए एक वजीर भी नियुक्त किया था।

राजा रामचन्द के शासनकाल में जागीर की कुल आय 65,800 रुपये वार्षिक तथा व्यय 54000.00 रुपये था। उस की जागीर में केवल 47 गाँव ही सम्मिलित थे। जागीर की कुल जनसंख्या 1941 की जनगणना के अनुसार 11,796 थी। पूरी जागीर में, तीन स्कूल थे जिन में एक मिडल स्कूल चनैनी था।

चनैनी आन्दोलन—राजा रामचन्द के शासन काल में सब से बड़ी घटना यह घटी कि उस की प्रजा ने उस के विरुद्ध आन्दोलन चलाया जिस की चर्चा पूरे राष्ट्र में हुई। यह एक प्रकार से भारत में पहला ऐसा आन्दोलन था जो राजा के शोषण के विरुद्ध था। इस आन्दोलन के भड़कने का कारण यह था कि चनैनी के राजा रामचन्द ने अपनी आय बढ़ाने के लिए पहले तो चनैनी में अपनी दुकानें खोलीं और लोगों को आदेश दिया कि वे आवश्यक वस्तुएँ उसी की दुकानों से खरीदें। इस से चनैनी के व्यापारी और

दुकानदार राजा के विरुद्ध हो गये। राजा ने अपनी जागीर में अपनी पनचक्कियाँ चलाई जिस से कई लोगों का व्यवसाय समाप्त हो गया और वे भूखे मरने लगे।

चनैनी क्षेत्र में सरसों की फसल अच्छी होती थी। व्यापारियों को सरसों के क्रय-विक्रय से बहुत लाभ होता था। राजा राम चन्द ने एक आदेश निकाला जिस में किसानों को कहा गया था कि वे सरसों व्यापारियों को न बेचकर केवल उसे बेचे। राजा के कर्मचारी सस्ते भाव सरसों खरीदने लगे। इससे किसानों को बहुत हानि पहुँची। वे भी राजा से नाराज हो गये। राजा ने किसानों की उपजाऊ ज़मीनों को शक्ति से अपने अधिकार में लेने का यत्न किया। उसने कुंदगाँव की एक मृत महिला की ज़मीन भी हड़पी। इस से प्रजा राजा के विरुद्ध भड़क उठी।

चनैनी की जागीर में आधे से भी अधिक कृषक गैर मरुसी थे। वे राजा के खेतों में काम करते थे। राजा दूसरे तीसरे साल उन को बेदखल कर देता था, इस से वे लोग बेकार घूमते-फिरते थे। इन में अधिकांश संख्या हरिजनों की थी। राजा की आर्थिक नीतियों से जिन-जिन लोगों को हानि पहुँची वे सभी संगठित हो गए और उन्होंने राजा के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ दिया।

इस आन्दोलन का संचालन पहले 1937 में 'युवक सभा' ने किया। बाद में हिन्दू महा-सभा ने भी इस का नेतृत्व किया। किन्तु इस संस्था के नेताओं के राजा के प्रति नरम रवैया के कारण जनता इस संस्था से भी विमुख हो गई। चनैनी के आन्दोलनकारियों ने इंडियन नेशनल कांग्रेस के नेताओं से सम्पर्क स्थापित किया और उनसे प्रार्थना की कि वे अपनी एक शाखा चनैनी में खोल कर आन्दोलन का नेतृत्व करें। कांग्रेस के नेताओं ने उन्हें नेशनल कान्फ्रेंस से सम्पर्क स्थापित करने की सलाह दी। परिणामस्वरूप नेशनल कान्फ्रेस ने अपनी एक शाखा चनैनी में खोल कर आन्दोलन को सक्रिय किया।

नेशनल कान्फ्रेंस ने 1945 में दीनू भाई पंत को अपनी संस्था की ओर से संगठन कर्ता बनाकर चनैनी भेजा। दीनू भाई पंत ने क्रांतिकारी गीत लिख कर जनाक्रोश को और भी भड़काया इससे यह आन्दोलन गाँव-गाँव में फैल गया। इस आन्दोलन को जिन स्थानीय नेताओं ने संचालित किया उन में वर्णन योग्य नाम हैं-चौधरी दयाराम, दीना नाथ कैला, बद्रीनाथ महाजन, रामसरन, लालचन्द, फकीर चन्द, बैजनाथ, वैदराज, मुहम्मद शफी, विश्वानाथ, ठाकुर केसरी चन्द, दयाराम, उमरदीन, परसराम इत्यादि। सुद्ध महादेव में 'नरातु' नामक एक महिला ने इस आन्दोलन को सक्रिय बनाने के लिए महिला सेना का गठन किया।

चनैनी के राजा ने आन्दोलन का दमन करने के लिए कई लोगों को कैद किया और कईयों को जागीर से निष्कासित कर दिया। राष्ट्रीय पत्र-पत्रिकाओं में इस आन्दोलन

के समाचार जब प्रकाशित होने लगे तो राष्ट्रीय नेता भी इस ओर उन्मुख हुए। जय प्रकाश नारायण और अरुणा आसफ अली ने उधमपुर में जन सभाओं का आयोजन करके आन्दोलन कारियों को पूर्ण समर्थन देने का आश्वासन दिया।

सन् 1946 में चनैनी के लोग राजा के विरुद्ध इतने अधिक भड़क उठे कि उन्होंने एक 'फरियादी जत्थे' का गठन किया और निर्णय लिया कि वे अब न्याय प्राप्त करने के लिए दिल्ली की ओर प्रस्थान करेंगे। सैकड़ों की संख्या में जब इस जत्थे के लोग नारे लगाते और क्रांति के गीत-गाते उधमपुर के निकट विरु नदी के निकट पहुँचे तो जम्मू कश्मीर सरकार की पुलिस ने उन्हें घेरे में ले लिया। पुलिस ने आन्दोलनकारियों के नेताओं को बन्दी बनाया और उन्हें अपने साथ ले गई। किन्तु आन्दोलन फिर भी दमित न हुआ।

15 अगस्त 1947 को देश स्वतन्त्र हुआ और 27 अक्तूबर 1947 को जम्मू कश्मीर राज्य का विलय भारत के साथ हुआ। नेश्नल कान्फ्रेंस के नेता शेख मुहम्मद अब्दुला रियासत जम्मू कश्मीर के नये प्रधानमंत्री बने। उन की सरकार ने जागीरदारी-प्रथा के उन्मूलन का निर्णय लिया जिस के अन्तर्गत अप्रैल 1948 को चनैनी की जागीर का विलय जम्मू व कश्मीर राज्य के साथ हो गया। इस विलय के बाद चनैनी के राजा रामचन्द ने चनैनी को छोड़ दिया और वह अपना परिवार लेकर योगेन्द्र नगर (हिमाचल-प्रदेश) चला गया। किन्तु वह शीघ्र ही वहाँ से वापिस लौट आया और चनैनी के निकट ही मोटर शैड में रहने लगा यहीं उस की मृत्यु हुई।

विलय के बाद चनैनी जागीर पहले नियाबत बनी किन्तु बाद में इसे तहसील का दर्जा दिया गया। अब चनैनी जिला उधमपुर की एक तहसील है।

चनैनी के राजाओं ने अपने शासनकाल में इस क्षेत्र को एक पावन तीर्थ के रूप में विकसित करने का भरसक प्रयास किया। उन्होंने शुद्ध महादेव स्थान पर शिवमंदिर का निर्माण करवाया। पाप नाशिनी बावली की प्राचीरों में सुन्दर और कलात्मक पत्थर की मूर्तियें जुड़ाई। गौशाला, हरिद्वार, विनिसंग आदि स्थानों में आर्य शिखर शैली के मन्दिर निर्मित करवाये। मान-तलाई में भी मन्दिर बनवाये और इस पूरे क्षेत्र को शिवमय बनाया। उन्होंने शिवगढ़ लड्डुन और चोरगली में दुर्ग बनवाये और अपने राज्य की रक्षा के लिए कई सैनिक निरीक्षण चौकियां स्थापित कीं।

इन राजाओं क़ी रुचि लोक कलाओं मे भी थी। इन्होंने काष्ठ-कला को प्रश्रय दिया और अपने रहने के लिये सिरगढ़, शिवगढ़, कुद्ध, लम्पैड़ी और मोटर शड्ड में कलात्मक लकड़ी के महल बनवाये जिन्हें लोक-भाषा में बंगलु कहते थे। इन्होंने लोक संगीत और लोक नृत्यों को भी संरक्षण दिया। ये स्वयं भी लोक नृत्यों में भाग लेते थे

और लोक संगीत के पारखी थे।

चनैनी के राजाओं ने शिव मन्दिरों के लिए जिन पाषाण मूर्तियों की स्थापना की, कला की दृष्टि से वे बेजोड़ हैं। सुद्ध महादेव के मन्दिर में प्रतिष्ठित शिवपार्वती की युग्म-प्रतिमा कला के क्षेत्र में अद्वितीय है।



1. दन्तकथाओं में कहा जाता है कि पौराणिक काल में भी चनैनी एक अलग राज्य था और इस का शासक हिमालय राजा था। उस राजा की एक कन्या थी जिस का नाम गौरी था। वह शिवभक्त थी। शिव-आराधना करने वह प्रतिदिन गौरीकुंड जाती थी। उस इलाके में एक दैत्य रहता था जिस का नाम शुद्धान्त था। वह गौरी से विवाह करना चाहता था। एक बार उसने गौरी से अभद्र व्यवहार किया। गौरी ने शिव को स्मरण किया। शिव ने प्रकट हो कर उसे दैत्य का संहार अपने त्रिशूल से किया। कहते हैं कि वही त्रिशूल अब शुद्ध-महादेव के मन्दिर के प्रांगण में गढ़ा है। चनैनी के राजा रामचन्द प्रथम ने यह देखने के लिए कि यह त्रिशूल कितना गहरा है, खुदाई का काम आरम्भ करवाया। किन्तु दो दिन के बाद उसे एक स्वप्न आया और उसके बाद उसने खुदाई का काम बन्द करवा दिया।

2. इसी त्रिशूल में ब्राह्मी लिपि में तीन पंक्तियां अंकित है जिन में विभुनाग और गणपति नाग के नाम उत्कीर्ण हैं। कई विद्वानों का मत है कि किसी समय इस क्षेत्र में नाग राजाओं का राज्य भी रहा है?

3. 'शुद्ध-' का उल्लेख पद्म पुराण के पाताल खंड में भी हुआ है। उस में इस क्षेत्र की परिगणना मद्रदेश के अन्तर्गत की गई है। इससे पता चलता है कि प्राचीन समय में यह क्षेत्र मद्रदेश का एक भाग था।

4. चनैनी के चन्देल वंशीय राजा चन्द्रवंशीय माने गये हैं।

5. कल्हूर, कुमाऊँ तथा चनैनी के राजकुल एक ही वंशवृक्ष की शाखाएँ कही जाती हैं।

6. डॉ॰ सुखदेव सिंह चाड़क के मतानुसार चनैनी के राजाओं ने 45 पीढ़ी, प्रेम प्यारी के एक लेख के अनुसार जो दैनिक कश्मीर टाईम्ज़ में जनवरी 1993 को प्रकाशित हुआ, 52 पीढ़ी और चनैनी राज-परिवार के एक सदस्य दिनेश चन्द के अनुसार 51 पीढ़ी राज्य किया।

7. दिनेश चन्द हिन्ताल के अनुसार चनैनी के राजवंश ने इस क्षेत्र में 1271 वर्ष राज किया।

8. चनैनी आन्दोलन में जिन अस्थानीय नेताओं ने भाग लिया उन में उल्लेखनीय है:-लाला जगननाथ वकील, सरदार वुद्धिसिंह, नज़ीर समनानी, काशीनाथ एम्मा, मोतीराम बैगड़ा आदि।

9. चनैनी का राजमहल 1960 के बाद आग लगने से ध्वस्त हो गया।

जसरोटा

जसरोटा डुग्गर का एक शक्तिशाली राज्य था। मूलरूप में यह राज्य उज्झ नदी से लेकर रावी नदी तक परिव्याप्त था। किन्तु बाद में इस राज्य का विघटन हुआ जिसके कारण यह राज्य सिमट गया। इस राज्य की लम्बाई तीस किलोमीटर के लगभग थी।

इस राज्य के उत्तर में कारीधार का पहाड़ था जो इस की सीमा मनकोट और बसोहली के साथ जोड़ता था। इस के दक्षिण में पंजाब के मैदान, पश्चिम में साम्बा का छोटा राज्य, और पूर्व में नूरपुर राज्य था। इस राज्य की राजधानी जसरोटा थी। जसरोटा उज्झ नदी के तट पर एक पहाड़ी पर बसा अति सुन्दर नगर था। इस नगर का संस्थापक राजा जसदेव था। राजा जसदेव का शासन काल 1020 से 1053 तक माना जाता है।

तारीख डोगरा देश के अनुसार राजा जसदेव ने जसरोटा नगर अपने छोटे भाई करणदेव को जागीर के रूप में दिया। कर्ण देव ने इस नगर के आस-पास के गाँवों पर अधिकार करके एक अलग राज्य की नींव डाली जिसे जसरोटा राज्य के नाम से अभिहित किया गया।

राजा कर्ण देव के वंशजों ने लगभग आठ सौ वर्ष राज्य किया। इस राज्य के राजाओं की जो वंशावली उपलब्ध है उसमें निम्न सताईस राजाओं का उल्लेख है:-

1. राजा कर्णदेव
2. राजा वीरम देव
3. राजा कालूदेव
4. राजा आमलदेव
5. राजा बोलारदेव
6. राजा कलश देव
7. राजा प्रताप देव
8. राजा जतारदेव
9. राजा अतरदेव
10. राजा सुलतान देव
11. राजा सगत देव
12. राजा दौलतदेव
13. राजा दौलत देव
14. राजा विभुदेव
15. राजा भोजदेव
16. राजा फतेह देव
17. राजा तेजदेव
18. राजा शिवदेव
19. राजा जगदेव
20. राजा सुखदेव
21. राजा ध्रुवदेव
22. राजा किरतदेव
23. राजा रत्न देव
24. राजा भागसिंह
25. राजा अजायब सिंह
26. राजा लालदेव
27. राजा भूरिसिंह।

जसरोटा राज्य के अधिकांश राजाओ के शासनकाल की घटनाओं की जानकारी ऐतिहासिक ग्रंथों में नहीं मिलती है। तारीख डोगरा देश में यह उल्लेख अवश्य मिलता

है कि जसरोटा के राजा कालूदेव को दिल्ली के सुलतान ने बुलाया था। राय कालू का देहान्त 1143 में हुआ। उस के बाद राजा प्रताप देव के शासन काल में जसरोटा का विघटन हुआ और 1250 के लगभग राजा के छोटे भाई संग्राम देव ने लड़-झगड़ कर थैंम (लखनपुर) की जागीर अपने लिए प्राप्त की। इस से यह राज्य क्षेत्रफल की दृष्टि से सिमट गया। जसरोटा राज्य के सुलतान देव को भी दिल्ली के सुलतानों ने उस की वीरता पर प्रसन्न होकर उसे सम्मानित किया। सुलतान देव के बाद सगत देव और दौलतदेव जसरोटा के शासक बने किन्तु उनके शासन काल का समय शांतिमय रहा।

डुग्गर के इतिहास में जसरोटा के जिन राजाओं का उल्लेख युद्ध और लड़ाईयों के सन्दर्भ में हुआ है उन में उल्लेखनीय नाम राजा विभुदेव का है।

राजा विभुदेव–राजा विभुदेव अनुमानतः 1570 में जसरोटा की राजगद्दी पर बैठा। वह एक अदम्य उत्साही, वीर योद्धा और युद्ध-पटु था। उसने अपने शासनकाल में एक ऐसी सेना का गठन किया जो लड़ाई में शत्रु पर भयंकर आक्रमण करने की क्षमता रखती थी। उसने जसरोटा के दुर्ग का भी पुनरुद्धार किया और अपने राज्य की सुरक्षा के लिए सैन्य निरीक्षण चौकियां कायम कीं।

उस के शासनकाल में रावी नदी के इस पार और उस पार के पहाड़ी राजाओं ने भारत सम्राट् अकबर के विरुद्ध कांगड़ा के राजा विधिचन्द के नेतृत्व में 1589-90 में विद्रोह किया जिसमें 13 राजाओं ने भाग लिया। जसरोटा के राजा विभुदेव ने भी इस में भाग लिया किन्तु अकबर के सेनापति जैन खान कोका ने इस विद्रोह का दमन बड़ी कठोरता से किया। अन्ततः मुगल सेना और पहाड़ी राजाओं में सन्धि हुई। तेरह पहाड़ी राजा अकबर के दरबार में उपस्थित हुए। उन्होंने अकबर को बहुमूल्य उपहार भेंट किये और मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली। उन तेरह राजाओं में जसरोटा का राजा विभुदेव भी था।

मुगल दरबार से वापिस लौटने के बाद विभुदेव ने अपनी सेना का पुनर्गठन किया। रावी के पूर्व-पश्चिम की रियासतों के राजाओं से गुप्त मंत्रणा करने के बाद सन् 1596 में मुगल-सम्राट अकबर के विरुद्ध पुनः विद्रोह किया। इस बार इस विद्रोह का नेतृत्व राजा विभुदेव ने किया। मुंगल सेना को जैसे ही विद्रोह की सूचना मिली उसने जम्मू पर आक्रमण कर दिया। इस बार मुगल सेना का नेतृत्व शेख फरीद ने किया। शेख फरीद ने अल्पकाल में ही जम्मू, रामगढ़ आदि रियासतों पर अधिकार करने के बाद साम्बा की ओर प्रस्थान किया। साम्बा में मुगल सेनापति के सन्मुख लखनपुर के राजा बलभद्र ने आत्मसमर्पण किया। मुगल सेना ने जसरोटा के दुर्ग को अपने अधिकार में करने के लिए जैसे ही आगे प्रस्थान किया, जसरोटा की सेना मुगलसेना पर टूट पड़ी।

जसरोटा की सेना ने पहाड़ियों पर चढ़ कर मुगल सेना पर इतनी तीव्र वाण वर्षा की कि उस सेना को मोर्चों से बाहर निकलना कठिन हो गया। अन्ततः घमासान लड़ाई के बाद मुगल सेना नें जसरोटा के बाहरी दुर्ग पर अधिकार कर लिया। मुगल सेना जसरोटा नगर के भीतर भी घुसी और उसने नगर को बहुत क्षति पहुँचाई। अकबरनामा के अनुसार जसरोटा पर मुगल सेना इस उद्देश्य से अधिकार करना चाहती थी कि विद्रोहियों के नेता जसरोटा के राजा विभुदेव को शक्तिहीन कर दिया जाये ताकि भविष्य में कोई पहाड़ का राजा मुगल साम्राज्य से टक्कर लेने का साहस न कर सके। मुगल सेना अपने लक्ष्य में सफल रही। जसरोटा के राजा विभुदेव ने मुगलों की अधीनता स्वीकार कर ली। मुगलों ने जसरोटा का परगना मुहम्मद खान तुर्कमान के अधीन कर दिया। इस पराजय के कुछ ही वर्षों के बाद 1600 में राजा विभुदेव का देहान्त हो गया।

राजा विभुदेव कें बाद जसरोटा की राजगद्दी पर भोजदेव फतेह देव, तेजदेव, शिवदेव, सुखदेव बैठे। किन्तु ये सभी नाम मात्र के ही राजा थे। वास्तव में सत्ता मुगल-प्रशासक के हाथ में रही। सुखदेव के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र ध्रुवदेव जसरोटा की राजगद्दी पर बैठा।

राजा ध्रुवदेव—राजा ध्रुवदेव का जन्म 1680 में हुआ। वह जब तीस वर्ष का था तो उस का राज्याभिषेक 1710 में हुआ। उसने जसरोटा के खोये हुए गौरव को पुनः प्राप्त करने के लिए बहुत प्रयास किया। उसने ध्वस्त जसरोटा के स्थान पर उज्झ की पहाड़ी के ऊपर एक नया जसरोटा आबाद किया जो संरचना की दृष्टि से जम्मू की ही अनुकृति लगता था। जिस प्रकार जम्मू का प्रवेश द्वार गुम्मट था, वैसा ही जसरोटा के लिए ध्रुवदेव ने दिल्ली दरवाज़ा बनवाया। जिस प्रकार जम्मू सीढ़ीनुमा शहर था वैसे ही उसने जसरोटा को भी सीढ़ी नुमा नगर बनाया। उसके समय में जसरोटा में नये महल बने। दरबारियों ने नई हवेलियां बनाईं। व्याापरियों और दुकानदारों ने दिल्ली दरवाजा से लेकर महल तक दुकानों का लम्बा बाज़ार खड़ा किया। राजा ने अपने इष्ट देवता भगवान शंकर का भी एक विशाल मन्दिर बनवाया और पानी संचय करने के लिए दो बड़े-बड़े तालाब खुदवाये।

राजा ध्रुवदेव बाहु के राजा कृपाल देव का करदाता राजा था। अतः उस का राज्य बाहु राजा के अधीन था। एक बार वाहु के राजा का एक सामंत मियां नाथ अपने राजा से रुष्ट होकर जसरोटा आ गया। उसने जसरोटा के राजा को उकसाया कि वह वाहु के राजा कृपालदेव की अधीनता स्वीकार करने से इन्कार कर दे। जसरोटा के राजा ध्रुवदेव ने वैसा ही किया। उस ने राजा कृपालदेव को वार्षिक कर नहीं भेजा। राजा कृपाल देव ने जसरोटा पर आक्रमण कर दिया। हीरानगर के निकट झांडी स्थान पर दोनों राज्यों की सेनाओं में जम कर लड़ाई हुई। इस लड़ाई में बाहु राज्य की सेना के कई सेनानायक मरे।

जसरोटा की सेना का नेतृत्व मियां नाथ ने किया। वह भी इस लड़ाई में मारा गया। दोनों ओर की सेनाओं को भारी क्षति उठानी पड़ी। इस लड़ाई का परिणाम यह निकला कि बाहुराज्य बहुत ही कमज़ोर हो गया और जसरोटा राज्य बाहु की अधीनता से मुक्त हो गया। राजा ध्रुव देव ने बीस वर्ष राज्य किया और 1730 में उस का देहान्त हुआ।

राजा किरतदेव—राजा किरतदेव को राजा कृपाल देव के नाम से भी अभिहित किया जाता है। वह जसरोटा की राजगद्दी पर 1730 में बैठा और 36 वर्ष राज्य करने के बाद सन् 1766 में गोलोकवास हुआ। राजा किरतदेव ने बाहु के राजा की बजाय जम्मू के महाराजा रणजीत देव की अधीनता स्वीकार की। उसने राजा ध्रुव देव के जसरोटा निर्माण के अधूरे काम को पूरा किया। उसने जम्मू के भी कई सामंतों को जसरोटा में अपनी-अपनी हवेलियां बनाने का अनुरोध किया। महाराजा रणजीत देव के दोनों भाईयों ने जसरोटा में अपने महल खड़े किये और वे वहाँ रहने के लिए भी आने लगे। जम्मू का राजकुमार वृजराज देव भी अपने बाप महाराजा रणजीत देव से रूठ कर जसरोटा हो आया। राजा किरतदेव ने जम्मू के साथ अपने सम्बन्ध सुदृढ़ करने के लिए अपने कबीले के लोगों को जम्मू दरबार में सेवार्थ भेजा।

राजा रत्न देव—राजा किरतदेव के बाद उस का बेटा रत्नदेव सन् 1766 में जसरोटा की गद्दी पर बैठा। राजा रत्नदेव एक कुशल सेनानायक था। जम्मू के महाराजा रणजीत देव ने कांगड़ा के राजा घुंमड चन्द कटोच के विरुद्ध राजकुमार वृजराज देव के नेतृत्व में डोगरा सेना भेजी तो उस में रत्न देव भी सम्मिलित हुआ। रत्नदेव के शासनकाल में सिक्ख मिसलों के सरदारों ने पहाड़ी रियासतों पर आक्रमण शुरू कर दिये थे। रत्नदेव ने जसरोटा को उन के आक्रमण से बचाने के लिए जम्मू राज्य के साथ अपने गूढ़-सम्बन्ध बनाये।

राजा रत्न देव की मृत्यु 1780 में हुई।

राजा भाग सिंह—राजा रत्नसिंह की मृत्यु के बाद 1780 में राजा भाग सिंह सिंहासनारूढ़ हुआ। उस ने केवल दस वर्ष ही राज्य किया। उस के शासन काल में सिक्ख मिसलों के सरदारों ने पहाड़ी राज्यों पर कई आक्रमण किये और उन के कोष को लूटा। राजा भागसिंह के शासनकाल में सिक्ख मिसलों के सरदारों के आक्रमण का कोई विवरण नहीं मिलता।

राजा भागसिंह ने केवल दस वर्ष ही राज्य किया और 1790 में उस की मृत्यु हुई।

राजा अजायब देव—सन् 1790 में अजायबदेव जसरोटा का राजा बना। उस के शासनकाल में सिक्ख मिसलों के सरदारों ने जम्मू के अतिरिक्त अन्य पहाड़ी राज्यों पर कई आक्रमण किये और उन्हें अपने अधीन किया।

सन् 1808 में पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह ने पठानकोट को अपने अधिकार में लेने के बाद जसरोटा की ओर प्रस्थान किया। जसरोटा का राजा अजायबदेव खालसा सेना का मुकाबला न कर सका अत: उसने पंजाब के महाराजा की अधीनता स्वीकार कर ली। महाराजा रणजीत सिंह ने राजा अजायब सिंह से आठ हज़ार रुपये नजराना के रूप में वसूल किये और उसे अपने अधीन राजा मान लिया। सन् 1812 में राजा अजायबदेव का जब देहान्त हुआ तो जसरोटा पूरी तरह खालसा दरबार के अधीन आ चुका था।

राजा लालदेव–राजा अजायबदेव का देहान्त 1812 में हुआ तो उसके पुत्र लालदेव ने जसरोटा की राजगद्दी पर अपना अधिकार जतलाया। महाराजा ने लालदेव से 1812 में एक लाख रुपये नज़राना वसूल किया और जसरोटा में स्वयं आकर उस का राज्याभिषेक किया। लालदेव जसरोटा का नाम-मात्र ही राजा था। वास्तविक सत्ता खालसा दरबार के हाथ में ही थी।

लालदेव के समय में ही जम्मू राज्य का भी पतन हुआ। जम्मू के राजा जीतसिंह ने महाराजा रणजीत सिंह को सत्ता सौंप दी और स्वयं राजपाठ से अलग हो गया।

1822 में राजा जीत सिंह और गुलाब सिंह के भाईयों में जब इकरारनामा हुआ तो उस समय लालदेव जम्मू में ही था और उस ने गवाह के रूप में उस इकरारनामे पर हस्ताक्षर किये। सिक्खों के बढ़ते हुए प्रभाव को देखकर राजा लालदेव अपने जीवन काल में ही समझ गया कि अब उस का राज्य भी थोड़े समय के लिए है।

राजा भूरिसिंह–डॉ॰ सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार राजा लालदेव के देहावसान के बाद उसका बड़ा बेटा रणधीर सिंह राजगद्दी पर बैठा। उस का कोई पुत्र नहीं था। अत: उस की मृत्यु के बाद उस का भाई भूरिसिंह अनुमानत: 1825 में जसरोटा का राजा बना। उस के राजगद्दी पर बैठने के बाद मियां गुलाबसिंह और उस के भाईयों मियां ध्यानसिंह और मियां सुचेत सिंह ने लाहौर दरबार में अपना बहुत प्रभाव बढ़ाया। महाराजा रणजीत सिंह, मियां ध्यानसिंह के पुत्र मियां हीरासिंह पर भी बहुत ही कृपालु था। अत: 1834 में पंजाब के महाराजा ने राजा भूरिसिंह को जसरोटा से निष्कासित करके जसरोटा मियां हीरासिंह को प्रदान किया।

राजा हीरासिंह–राजा हीरासिंह पंजाब केसरी महाराजा रणजीत सिंह के वजीर राजा ध्यानसिंह का बेटा और जम्मू के राजा गुलाबसिंह का भतीजा था। वह अपने पिता के साथ लाहौर में ही रहता था और खालसा दरबार में आता जाता रहता था। वह बहुत ही रूपवान था, अत: महाराजा रणजीत सिंह उसे बहुत चाहते थे। उन्होंने जम्मू के डोगरा भाईयों की सेवाओं पर प्रसन्न होकर उन्हें जम्मू, पुंछ, बन्दरालता आदि की जागीरें देकर तुष्ट किया। बाद में 1822 में महाराजा ने मियां गुलाबसिंह को जम्मू का राजा भी बना दिया।

सन् 1834 में महाराजा ने हीरासिंह पर अति प्रसन्न होकर उसे जसरोटा की जागीर दे दी। हीरा सिंह ने जसरोटा का राजा बनते ही अपने रहने के लिए जसरोटा में एक शानदार महल निर्मित करवाया। उसने जसरोटा से पन्द्रह किलोमीटर दूर एक नगर अपने नाम पर बसाया जिसे आज हीरा नगर कहते हैं। उसने हीरा नगर के निकट जसमेरगढ़ दुर्ग की मुरम्मत भी करवाई। राजा हीरासिंह के समय जसरोटा की वार्षिक आय 4, 62,115 रुपये थी।

महाराजा रणजीत सिंह की मृत्यु के बाद लाहौर दरबार में बहुत उथल-पुथल मची। महाराजा के उत्तराधिकारियों और सामंतों में भी टकराव पैदा हो गया। इसी एक टकराव में राजा ध्यान सिंह का लाहौर में कतल हो गया। दरबारियों ने राजा हीरासिंह को बाप के स्थान पर खालसा सरकार का प्रधानमंत्री बनाया। किन्तु एक षड्यंत्र में 21 दिसम्बर 1844 को राजा हीरासिंह भी अपने साथियों के साथ मारा गया। वह अपने जीवन काल में कुछ ही दिनों के लिए जसरोटा आया। वह यहां का शासक होते हुए भी यहाँ रह नहीं सका। उस के देहान्त के बाद राजा गुलाब सिंह ने जसरोटा जागीर का विलय जम्मू राज्य के साथ कर दिया।

सन् 1845 में खालसा सरकार को धन की बहुत आवश्यकता पड़ी। सरकार ने धन इकट्ठा करने के लिए जम्मू और जसरोटा पर आक्रमण करने की योजना बनाई। खालसा सरकार के अधिकारियों को सन्देह था कि राजा हीरासिंह का अमूल्य खजाना जसरोटा में है, अत: सेना ने जनवरी 1845 को जसरोटा पर हल्ला बोल दिया। महाराजा गुलाब सिंह को सिक्ख सेना के प्रस्थान की पहले ही भनक पड़ चुकी थी अत: उन्होंने जसरोटा का कोष जसरोटा से निकाल कर पहाड़ी क्षेत्र में भेज दिया और सिक्ख सेना के हाथ विशेष कुछ न लगा। इस अभियान में सिक्ख सेना का नेतृत्व शामसिंह अटारी वाला तथा रत्नसिंह मान ने किया। गुलाबसिंह ने बड़ी चतुरता से राजा हीरासिंह के दीवान बचना को अपने पक्ष में लेकर हीरा सिंह के खजाना की रक्षा की। सिक्खों ने कुछ समय तक जसरोटा पर अपना अधिकार जमाये रखा किन्तु बाद में जब लाहौर दरबार और गुलाब सिंह में समझौता हो गया तो लाहौर दरबार ने जसरोटा गुलाब सिंह को सौंप दिया।

सन् 1846 में अमृतसर संधि के अन्तर्गत जब गुलाबसिंह जम्मू व कश्मीर रियासत के गठन के बाद इस का महाराजा बना तो उसने इस नगर को बजारत का दर्जा दिया जिसे महाराजा रणवीर सिंह ने भी अपने शासनकाल में कायम रखा।

महाराजा प्रताप सिंह के शासनकाल में जसरोटा के स्थान पर कठुआ को जिला का मुख्यालय बनाया गया। जैसे ही सरकारी कार्यालय 1923 के बाद जसरोटा से कठुआ में स्थानान्तरित होना शुरू हुए, जसरोटा नगर उजड़ने लगा। 1947 में इस नगर में कुछेक घर ही बचे थे। किन्तु उसके बाद यह पूरी तरह से निर्जन हो गया।

जसरोटा के राजाओं का हमें कोई भी लिपिबद्ध इतिहास नहीं मिलता, अतः राजाओं के विषय में सूचनाएँ इकट्ठी करने के लिए समकालीन राज्यों के इतिहास पर ही निर्भर रहना पड़ता है। ऐतिहासिक ग्रंथों में भी जसरोटा के इतिहास से सम्बन्धित घटनाएँ बहुत कम मिलती हैं।

जसरोटा के इतिहास के बाह्य साक्ष्य इस क्षेत्र में बिखरे पड़े महलों, दुर्गों और हवेलियों के खण्डहर हैं। इन खंडहरों का यदि स्थापत्य कला की दृष्टि से अध्ययन करें तो लगता है कि जसरोटा में वास्तुकला का रूप बहुत ही उन्नत रहा होगा। इन खंडित महलों में जो भित्ति चित्र उपलब्ध हैं वे इस बात के साक्षी हैं कि जसरोटा के राजाओं ने ललित कलाओं को समुचित संरक्षण दिया। जसरोटा गाँव में पुजारियों के घर में जो भित्ति चित्र आज भी सुरक्षित हैं उनके अध्ययन से लगता है कि कभी जसरोटा की अपनी अलग कलम रही होगी।

जसरोटा में अवस्थित शिव और शक्ति के मन्दिर इस बात के द्योतक हैं कि यहाँ शैव और शाक्त धर्म का प्रचार रहा होगा।

थैन (लखनपुर)

थैन डुग्गर का एक अति छोटा राज्य था जो रावी नदी से लेकर उज्झ नदी के मध्यवर्ती भूभाग में परिव्याप्त था। प्रायः वर्तमान कठुआ तहसील का अधिकांश भाग इस राज्य की सीमा के अन्तर्गत था। इस राज्य का क्षेत्रफल अनुमानतः पच्चास वर्ग किलोमीटर था।

थैन का इलाका जसरोटा के राजा कलसदेव के शासन काल में जसरोटा राज्य का ही एक अंग था। किन्तु 1325 में जब कलस देव का देहावसान हो गया तो उत्तराधिकार के प्रश्न पर उस के दोनों बेटों प्रताप देव और संग्राम देव ने राजगद्दी पर अपना-अपना अधिकार जताया। पड़ोसी राजाओं ने उन दोनों भाईयों के मध्य पैदा हुए झगड़े को दूर करने के लिए जसरोटा राज्य का विभाजन किया। इस विभाजन के अन्तर्गत जसरोटा का शासक प्रताप देव और नये विघटित राज्य थैन का शासक संग्राम देव बना। राजा संग्राम देव ने सबसे पहले रावी नदी के तट पर नूरपुर राज्य पर दृष्टि रखने के लिए उस के सामने थैन दुर्ग का निर्माण करवाया और फिर वह वही से अपने शासन का प्रशासन

---

1. जसरोटा राजवंश के लोगों को 'जसरोटिया' कहा जाता है। ये लोग अब जिला कठुआ के अतिरिक्त जम्मू प्रान्त के विभिन्न स्थानों में आबाद हैं। कई लोग रियासत से बाहर चले गए हैं और वहाँ आबाद हो चुके हैं।

2. जसरोटा नगर के खंडहर लगभग तीन वर्ग किलोमीटर क्षेत्र में फैले हैं।

3. जसरोटा का उल्लेख अकबरनामा में भी पहाड़ी राजाओं के विद्रोह के सन्दर्भ में हुआ है।

4. जसरोटा के अन्तिम राजा भूरिसिंह का परिवार ज़सरोटा से निष्कासन के बाद तहसील जम्मू के निकट नगरोटा के पास खानपुर में आबाद हुआ।

5. जसरोटा नगर को एक बार मुगल सेना ने और दो बार खालसा सेना ने जलाया।

6. जसरोटा का फैलाव तहसील कठुआ और हीरा नगर तक था।

चलाने लगा। कुछ वर्षों के बाद उस ने रावी के पार बसे पठानिया शासकों की गतिविधि पर दृष्टि रखने के लिए लखनपुर स्थान पर भी एक दुर्ग निर्मित किया और फिर लखनपुर को अपने राज्य का केन्द्र स्थान समझ कर उसे अपनी राजधानी बना लिया। राजा संग्राम देव के वंशज लखनपुरिये कहलाये।

राजा संग्राम देव के वंशजों का न तो क्रमबद्ध इतिहास उपलब्ध है और न ही इस वंश के राजाओं की वंशावली प्राप्त हुई है। केवल दन्तकथाओं से ही पता चलता है कि संग्रामदेव के चार बेटे थे जिन में बड़े बेटे का नाम सिद्धदेव या सिद्धू था। वह एक वीर योद्धा था। उसे दिल्ली के सुलतान ने 'राव' की उपाधि से विभूषित किया था। सिद्धू के एक भाई का नाम बैरमदेव और दूसरे का नाम बम्वदेव या बम्बा था। बैरमदेव ने बरवाल गाँव बसाया और बम्बा ने बमियाल गाँव बसाया।

लखनपुर राज्य का उल्लेख मुगल सम्राट् अकबर के सन्दर्भ में भी हुआ है। अकबरनामा के अनुसार 1588-89 में जिन पहाड़ी राजाओं ने अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया था उन में बलभद्र नाम का राजा लखनपुर का था। एक अन्य ऐतिहासिक पुस्तक में यह उल्लेख मिलता है कि 1595-96 में पहाड़ी राजाओं ने जब पुनः विद्रोह किया तो उस विद्रोह का दमन करने के लिए अकबर ने शेख फरीद को भेजा। लखनपुर के राजा ने साम्बा स्थान में शेख-फरीद के आगे आत्मसमर्पण किया। मुगल सेनापति ने लखनपुर का परगना मुहम्मद खान तुर्कुमान को प्रदान किया और रावी नदी को पार कर के पठानकोट की ओर प्रस्थान किया। मुगलों के इस आक्रमण के बाद लखनपुर की स्वायत्तता समाप्त हो गई और लखनपुर राज्य सीधा मुगल-साम्राज्य के अधीन आ गया।

मुगल शासक जब कमजोर पड़े तो लखनपुर पर बसोहली के राजा ने अधिकार कर लिया। किन्तु 1785 में नूरपुर के राजा पृथ्वी चन्द ने बसोहली के राजा से यह क्षेत्र छीन कर अपने राज्य में मिला लिया। 1846 तक यह क्षेत्र नूरपुर का ही एक भाग रहा।

मार्च 1846 में ब्रिटिश सरकार और महाराजा गुलाबसिंह के मध्य जो सन्धि हुई थी उस के अन्तर्गत चम्बा का इलाका गुलाब सिंह को मिला था। किन्तु अंग्रेजों ने बाद में चम्बा अपने पास रखा और उसके बदले में लखनपुर और पंजग्राई का इलाका महाराजा गुलाब सिंह को दिया। इस प्रकार 1846 से लखनपुर जम्मू कश्मीर रियासत का एक भाग है। अब यह इलाका तहसील कठुआ के अन्तर्गत आता है।

साम्बा

एक राज्य के रूप में साम्बा का उल्लेख ऐतिहासिक पुस्तकों में कम मिलता है। दिल्ली के सुलतानो द्वारा साम्बा राज्य के राजा अथवा सामंत को दिल्ली बुलाने अथवा साम्बा के राजा को अपना करदाता बनाने का उल्लेख दन्तकथों में मिलता है किन्तु

मुगलों के समय में भी जिन पहाड़ी राजाओं ने अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया था, उन की सूची में भी साम्बा के राजा का कोई वर्णन नहीं है। अकबरनामा में केवल इतना उल्लेख मिलता है कि मुगल सेनापति शेखफरीद जम्मू और रामगढ़ के विद्रोह का दमन करने के बाद जब साम्बा पहुंचा तो वहाँ जसरोटा और लखनपुर के राजाओं ने आत्म समर्पण किया। इस से स्पष्ट है कि मुगलों के समय साम्बा एक अलग राज्य नहीं था। यह या तो जसरोटा राज्य के अन्तर्गत था या किसी अन्य पहाड़ी राज्य का एक भाग था।

किन्तु लोकपरम्परा के अनुसार साम्बा भी एक अलग स्वतन्त्र राज्य था और इस राज्य का संस्थापक लखनपुर के राजा सिद्ध का सब से छोटा बेटा मल्लूदेव था। दन्तकथा के अनुसार मल्लूदेव ने साम्बा के गोहतर क़बीले में विवाह किया। उन दिनों इसी कबीले का साम्बा के इलाके पर आधिपत्य था। मल्लूदेव विवाह के बाद साम्बा में ही रहने लगा। एक बार दिल्ली के सुलतान क़ी सेना की टुकड़ी साम्बा की ओर आई। मल्लूदेव ने उस टुकड़ी की सहायता से गोहतर कबीले के मुखिया को साम्बा से भगा दिया और स्वयं इस क्षेत्र का अधिपति बन गया।

मल्लूदेव ने साम्बा को अपनी राजधानी बनाया। उस के बाईस बेटे हुए। उन्होंने साम्बा के ईर्द-गिर्द बाईस मंडियां आबाद की। मल्लूदेव के वंशज समियाल कहलाये। मल्लूदेव के वंशजों की वंशावली प्राप्त नहीं है। लगता है कि मल्लूदेव के बाद उसके उत्तराधिकारियों ने न तो अपने राज्य के विस्तार का प्रयास किया और न ही इस क्षेत्र के विकास के लिये कोई उल्लेखनीय काम किया।

साम्बा का उल्लेख पंजाब के इतिहास में महाराजा रणजीत सिंह के सन्दर्भ में मिलता है। महाराजा रणजीत सिंह ने 1822 में राजा सुचेत सिंह को बन्दरालता और साम्बा के क्षेत्र की जागीर प्रदान की। राजा सुचेत सिंह ने साम्बा में अपने रहने के लिए एक महल बनवाया। 1844 में जब राजा सुचेत सिंह की एक षड्यंत्र में हत्या की गई तो साम्बा महल में रहने वाली उस की रानियाँ और दासियें बसन्तर नदी के तट पर चिता बना कर सती हो गई।

राजा सुचेत सिंह की मृत्यु के बाद महाराजा गुलाब सिंह ने साम्बा क्षेत्र का विलय जम्मू राज्य में किया। आज साम्बा जिला जम्मू के अन्तर्गत एक तहसील है।



1. *एक अन्य दन्तकथा के अनुसार साम्बा नगर की स्थापना यादव वंशीय युवराज 'साम्भ' ने की। साम्भ द्वारा संस्थापित साम्भेशवर मन्दिर आज भी साम्बा के निकट स्थित है।*

बन्दरालता

बन्दरालता डुग्गर की एक छोटी सी पर्वतीय रियासत थी। इस रियासत के पूर्व में बिलावर और बसोहली, पश्चिम में उधमपुर, दक्षिण पूर्व में जम्मू, उत्तर में भद्रवाह तथा दक्षिण में साम्बा स्थित था। क्षेत्रफल की दृष्टि से यह वर्तमान तहसील रामनगर से बहुत छोटी थी।

लोक परम्परानुसार पहले इस क्षेत्र में राणा शासन प्रणाली प्रचलित थी। ये राणा सम्भवतः हूण और कुषाण सरदारों के वंशज थे। प्रत्येक राणा का आधिपत्य आठ-दस गाँवों-तक ही परिसीमित होता था। राणा स्वभाव से बड़े नृशंस होते थे। वे छोटी बातों पर अपनी प्रजा को प्रताड़ित करते थे और अमानुषिक दंड देते थे। उन की क्रूरता के कारण उन की प्रजा उन से दुःखी रहती थी।

बन्दरालता क्षेत्र की जनता ने उन से तंग आकर चम्बा के राजा को इस क्षेत्र पर अधिकार करने का निमंत्रण भेजा। चम्बा के राजा ने अपने भाई बह्तरदेव को इस क्षेत्र पर अधिकार करने के लिए सैनिक दल के साथ भेजा। बहतरदेव की एक स्थानीय सामंत 'घुरु' ने बहुत सहायता की। बह्तरदेव ने अल्पकाल में ही स्थानीय राणाओं को लड़ाई में पराजित करके इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। बहतरदेव ने इस विजित इलाके में अपना राज्य स्थापित किया। उसने इस राज्य का नाम अपने नाम पर 'बृहतरालता' रखा जो बाद में बिगड़ता-बिगड़ता 'बन्दरालता' बन गया। इतिहासकारों के अनुसार बहतरदेव ने इस नये राज्य की स्थापना 11 वीं शताब्दी में की। बाद में बृहतरदेव के वंशजों को बन्दराल कहा गया।

बन्दरालों ने इस क्षेत्र में ग्यारहवीं शताब्दी से लेकर अठारहवीं शताब्दी तक राज्य किया। बन्दराल राजाओं की संख्या चालीस बताई जाती है किन्तु उन की जो वंशावली उपलब्ध है उसमें केवल निम्न उन्नीस राजाओं का ही उल्लेख मिलता है:-

1. राजा बृहतर
2. राजा भोजदेव
3. राजा सुलतानदेव
4. राजा केवराय
5. राजा प्रताप देव
6. राजा हुकमदेव
7. राजा भीलमदेव

8. राजा जोगदेव
9. राजा नाह्रदेव
10. राजा लक्ष्मण देव
11. राजा तरुवर देव
12. राजा छतर साल (छत्रसाल)
13. राता कैलाशपत
14. राजा (दीवान) इन्द्रदेव
15. राजा राजपत
16. राजा भगवंत सिंह
17. राजा जगत सिंह
18. राजा भूपदेव
19. राजा चन्दन हरदेव या चन्दन धरदेव

बन्दरालता के राजाओं के शासनकाल की घटनाओं का विशेष विवरण किसी भी ऐतिहासिक ग्रंथ में नहीं मिलता है। इन के विषय में जो भी जानकारी मिलती है वह मौखिक है तथा डोगरी लोक गीतों में अन्तर्निहित है।

जम्मू नरेश महाराजा रणजीत देव के सन्दर्भ में यह उल्लेख मिलता है कि बन्दरालता का राजा शेष पहाड़ी राजाओं की भांति जम्मू दरबार के अधीन करदाता राजा था और उसने कांगड़ा युद्ध-अभियान में राजकुमार ब्रजराज की सहायता के लिये अपने पुत्र मियां जैसिंह को भेजा था।

बन्दराल राजाओं के महल 'झिंगली चौरी' में स्थित थे और उन के अवशेष आज भी उपलब्ध हैं। इन राजाओं के समय का एक पुराना शिव मन्दिर महल के निकट ही अवस्थित है। वास्तुकला की दृष्टि से यह मन्दिर डुग्गर के अन्य शिव मन्दिरों से भिन्न है।

बन्दराल वंश के अन्तिम राजा चन्द्रधर देव को पंजाब केसरी महाराजा रणजीत सिंह ने सन् 1822 में राजगद्दी से हटा दिया और बन्दरालता का राज्य गुलाबसिंह के छोटे भाई राजा सुचेत सिंह को एक जागीर के रूप में सौंप दिया। बन्दरालता का राजपरिवार इस नये परिवर्तन के बाद बन्दरालता छोड़ कर अम्बाला के अन्तर्गत शाहज़ाद पुर गाँव चला गया। राजा चन्द्रधर देव के दो पुत्र किशन सिंह और जवाहर सिंह थे। वे वहीं बस गए और पुनः लौट कर बन्दरालता नहीं आये।

राजा सुचेत सिंह

राजा सुचेत सिंह मियां किशोरसिंह का छोटा पुत्र और राजा गुलाब सिंह का छोटा भाई था। वह भी अपने बड़े भाई की भाँति वीर योद्धा और योग्य सेना नायक था। पंजाब

केसरी महाराजा रणजीत सिंह की उसने अटक, कच्छ तथा हज़ारा क्षेत्रों को जीतने में बहुत सहायता की, अतः महाराजा भी उस पर अति प्रसन्न थे। सोलह जून 1822 को महाराजा ने उसे बन्दरालता, साम्बा और सुमरिता का इलाका जागीर में देकर उसे राजा की पदवी भी प्रदान की।

सुचेत सिंह ने बन्दरालता का राजा बनते ही बन्दरालता के राज्य का नाम बदलकर रामनगर कर दिया। वैसे बन्दरालता शासकों के समय भी रामनगर कस्बे को 'नग्गर' कहते थे। राजा सुचेत सिंह ने इसी नगर के पूर्व में स्थित एक पहाड़ी पर अपने रहने के लिए भव्य महल निर्मित किया। यह महल कला तथा शिल्प की दृष्टि से डुग्गर की वास्तुकला का उत्कृष्ट नमूना है।

राजा सुचेत सिंह ने रामनगर के चौगान में एक दुर्ग भी निर्मित करवाया। यह दुर्ग मुगल वास्तुकला से प्रभावित लगता है। इस दुर्ग के भीतर राजा ने कई कमरे बनाये जिन में युद्ध-सामग्री संकलित थी।

राजा सुचेत सिंह को मन्दिर बनवाने का भी बहुत शौक था। उसने अपने महल के निकट एक नृसिंह का मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर आर्य-शिखर शैली का है। इस के अतिरिक्त राजा ने शीतला का मन्दिर भी बनाया जो आज भी लोगों की आस्था और श्रद्धा का केन्द्र है।

राजा ने रामनगर को नया रूप देने के लिए इस कस्बे का चहुँमुखी विकास किया। उसने बाहर से बुनकर बुलाये जिस से 'ऊनी कम्बल' की रामनगर एक मंडी बन गया। राजा सुचेत सिंह ने अपने राज्य में शांति और व्यवस्था बनाये रखने के लिए एक प्रशिक्षित सेना भी गठित की और सैनिकों को सीमावर्ती क्षेत्रों में सीमा की रक्षा के लिए नियुक्त किया। उसने एक किला बसन्तगढ़ में भी बनवाया।

सुचेत सिंह एक महत्वाकांक्षी राजा था। वह अपने राज्य की सीमा को बढ़ा कर एक विस्तृत राज्य की स्थापना करना चाहता था। उसने अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए सब से पहले हिमता (चनैनी) राज्य के एक गाँव मरोठी पर अधिकार कर लिया। हिमता के राजा ने सुचेत सिंह को चेतावनी दी तो सुचेत सिंह ने हिमता के राजा पर हमला बोल दिया और चनैनी में स्थित उसका महल फूंक दिया।

हिमता का राजा दयालचन्द इस घटना के बाद लाहौर भागा और उसने पंजाब केसरी से न्याय की याचना की। पंजाब केसरी ने राजा गुलाब सिंह को राजा दयालचन्द और राजा सुचेत सिंह के मध्य सुलह करने का आदेश दिया। राजा गुलाब सिंह ने हिमता राज्य का कुछ भाग राजा सुचेत सिंह को दिया और कुछ भाग अपने पास रख कर शेष इलाका राजा दयालचन्द को दिया। इससे हिमता राज्य सिमट गया।

राजा सुचेत सिंह ने राजा गुलाब सिंह के आदेश पर मनकोट को जीतने के लिए अपने सेनापति राय केसरी सिंह को भेजा। उस समय मनकोट में राजा छतर सिंह का राज्य था। राजा छतर सिंह ने रायकेसरी की सेना का प्रतिरोध नहीं किया और राजा गुलाब सिंह की अधीनता स्वीकार कर ली। किन्तु राय केसरी सिंह ने उसे मनकोट छोड़ देने के लिए विवश किया। राजा छतर सिंह ने मनकोट सेनापति को सौंपा और स्वयं अपना परिवार लेकर वह 1825 को मनकोट से चला गया।

राजा सुचेत सिंह ने रामनगर में अपने पाँव जमा लेने के बाद अपनी जागीर के उन लोगों को अति कठोर और अमानवीय दंड दिये जिन पर उसे बागी होने का सन्देह था। वह अपनी प्रजा से मालिया भी बड़ी सख्ती से वसूल करता था। मालिया की शरह 2/5 थी।

राजा सुचेत सिंह रामनगर का जागीरदार बनने के बाद भी लाहौर दरबार में आता जाता रहता था। 27 जून 1939 को महाराजा रणजीत सिंह के देहावसान के बाद लाहौर दरबार में जो षडयंत्र रचे गये उनमें एक का शिकार वह भी बना।

ऐसा हुआ कि 16 सितम्बर 1843 को पंजाब का अल्पव्यस्क राजा दिलीप सिंह सिंहासनारूढ़ हुआ तो उस का प्रधान मंत्री राजा ध्यानसिंह का बड़ा बेटा राजा हीरासिंह बना। किन्तु कई सिक्ख सरदार डोगरा परिवार को पसंद नहीं करते थे। वे इन में फूट डाल कर इन्हें एक दूसरे के विरुद्ध करना चाहते थे। अत: दिलीपसिंह के मामा जवाहर सिंह ने राजा सुचेत सिंह को सन्देश भेजा कि वह लाहौर आए। सिक्ख सेना और सरदार उसे लाहौर का प्रधान मंत्री बनते हुए देखना चाहते हैं। सुचेत सिंह मंत्री बनने का स्वप्न पहले से ही ले रहा था। अत: अपने हितचिन्तकों के मना करने के बावजूद भी वह लाहौर चला गया और वहाँ एक संघर्ष में अपने ही भतीजे राजा हीरासिंह से लड़ता हुआ 26 मार्च 1844 को मारा गया।

राजा सुचेत सिंह की दो रानियां तथा तीस दासियां रामनगर में और तीन रानियां और बत्तीस दासियें साम्बा में सती हुई।

राजा सुचेत सिंह का अपना कोई पुत्र नहीं था। उसने राजा गुलाब सिंह के छोटे पुत्र मियां रणवीर सिंह को अपना दत्तक पुत्र बनाया था। मियां रणवीरसिंह के बड़े भाई मर गये थे। अत: रणवीर सिंह गुलाब सिंह के पास चला गया। गुलाब सिंह ने राजा सुचेत सिंह के देहावसान के बाद रामनगर जागीर का विलय जम्मू में कर दिया।

राजा रामसिंह

राजा रामसिंह महाराजा रणवीर सिंह के मंझले पुत्र थे और उन का जन्म जून 1816 को रानी सिब्बा के गर्भ से हुआ। महाराजा ने इन का मुंडन संस्कार 1816 को बड़े

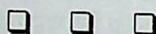
हर्षोल्लास से किया। महाराजा रणवीर सिंह ने इन्हें छोटी आयु में ही रामनगर की जागीर प्रदान की जिस की वार्षिक आय सवा लाख रुपये थी। राजा रामसिंह का पहला विवाह कांगड़ा के अन्तर्गत तिलोकपुर के भडवाल राजा की राजकुमारी के साथ मई 1875 को हुआ। इन्होंने दूसरा विवाह कटोच परिवार में किया।

महाराजा रणवीर सिंह की मृत्यु के बाद महाराज प्रताप सिंह के दरबार में इन्हें उच्च स्थान प्राप्त था और ये जम्मू व कश्मीर राज्य के सेनापति भी रहे।

राजा रामसिंह जम्मू के अतिरिक्त अपनी जागीर रामनगर में भी प्रायः अपने परिवार के साथ रहने आते थे। इन्होंने रामनगर में राजा सुचेत सिंह के महल के नीचे शीशमहल और दीवानखाना बनाने के अतिरिक्त एक और महल बनवाया जिसे आज नया महल कहते हैं। इनके द्वारा निर्मित शीशमहल वास्तुकला की उत्कृष्ट कृति समझी जाती है। इस महल के भित्ति चित्र कला प्रेमियों के लिए एक विशेष आकर्षण हैं। इन्होंने रामनगर में नागर शैली का एक शिव मन्दिर भी बनवाया।

राजा रामसिंह ने अपने शासनकाल में रामनगर में डाकखाना और तारघर खुलवाया इस से संचार व्यवस्था में बहुत सुधार हुआ।

राम नगर जिला उधमपुर के अन्तर्गत अब एक तहसील है।



भीमगढ़

भीमगढ़ राज्य की संस्थापना भीमादेव नामक एक लोकनायक ने आठवीं शताब्दी के लगभग की। भीमादेव की मूर्तियां सैकड़ों की संख्या में सलाल से लेकर दुग्धघर (दुद्धर) उपनदी तक उपलब्ध है। अनुमान है कि यही क्षेत्र भीमगढ़ के राज्य के अन्तर्गत रहा होगा। ऐतिहासिक ग्रंथों में केवल इतना ही उल्लेख मिलता है कि सन 1195 में उदयपुर के राणा वंश के एक राणा रसपाल ने इस क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। उसने अपने नाम पर चन्द्रभागा नदी के तट पर एक नगर बसाया जिसका नाम 'रियासी' रखा। बाद में यही नगर रसपाल सिंह के वंशजों की राजधानी बना। रसपाल के वंशज रियासी में रहने के कारण 'रसियाल' कहलाये।

रसियाल राजाओं का राज्य केवल ग्यारह गाँवों तक ही सीमित था। इस राज्य के उत्तर में सलाल, दक्षिण में अखनूर, पूर्व में क्रिमची तथा पश्चिम में पौनी भारख का इलाका था। रसियाल राजाओं की न तो वंशावली ही उपलब्ध है और न ही इन के द्वारा निर्मित कोई स्मारक ही इस क्षेत्र में मिला है। केवल कुछ बावलियों के नाम रसियाल राजाओं के साथ जोड़े जाते हैं। रसियाल राजाओं की शासन व्यवस्था का भी कोई विवरण नहीं मिलता। दन्तकथाओं में केवल इतना ही कहा जाता है कि उन्होंने पंचायत व्यवस्था स्थापित की और वे अपनी प्रजा के प्रति अति कृपालु रहे।

जम्मू के राजा हरिदेव (1652-92) ने अपने शासनकाल में अपना राज्य विस्तार करने के लिए रियासी पर आक्रमण किया तो रसियाल जम्मू की सेना का मुकाबला नहीं कर सके और राज परिवार के लोग इस क्षेत्र से पलायन करके कहीं दूसरे स्थान पर चले गए। राजा हरिदेव ने रियासी और अखनूर का इलाका अपने पुत्र मिंया जसवंत देव को जागीर के रूप में दिया। इस प्रकार रियासी में भी जम्मू के राजवंश का अधिकार हो गया। जम्मू के जिन जम्बाल राजाओं ने रियासी पर शासन किया, उन का संक्षिप्त विवरण इस प्रकार है:-

राजा जसबन्त देव

जसबन्त देव जम्मू के राजा हरिदेव का तीसरा पुत्र था। वह देखने में अति सुन्दर, योग्य, वीर और दूरदर्शी था। राजा हरिदेव उसे बहुत ही चाहता था। वह अपना उत्तराधिकारी भी उसे ही बनाना चाहता था लेकिन वंश परम्परानुसार ऐसा सम्भव नहीं था। अतः उसने जसबन्तदेव को जम्मू राज्य को छोड़कर चन्द्रभागा नदी का निकटवर्ती इलाका सौंपा। रियासी और अखनूर का क्षेत्र जसबन्त देव के अधीन रहा। जसबन्त देव ने अरनास, गूह्ल

और गुलाबगढ़ का क्षेत्र, जीत कर अपने राज्य में सम्मिलित कर लिया। इस प्रकार जसबन्त देव ने अपने राज्य का विस्तार रामगढ़ से लेकर गुलाबगढ़ तक किया।

राजा जसबन्त देव रियासी जागीर का शासक तो बन गया किन्तु उसने अपना मुख्यालय जम्मू में ही रखा। वह अपनी जागीर में कभी-कभी ही आता था। उसने जागीर का प्रशासन चलाने के लिए दीवान और कर्मचारी नियुक्त किये थे। राजा जसबन्त देव की मृत्यु अनुमानतः 1723 में हुई।

मियां रत्नदेव

राजा जसबन्त देव के देहावसान के बाद उस के राज्य का बंटवारा दो भागों में हुआ। एक भाग रियासी का था जिस पर मियां रत्नदेव ने आधिपत्य स्थापित किया और दूसरा भाग अखनूर का था जिस पर मियां चन्दनदेव ने अधिकार कर लिया।

मियां रत्नदेव और मियां चन्दनदेव दोनों सगे भाई थे। इन के तीन और सगे भाई थे जिन के नाम-अज़मंतदेव, मलागर देव और ईश्वरदेव थे। ये पाँचों भाई बलौरिया रानी के गर्भ से पैदा हुए थे। राजा चन्दनदेव ने दूसरा विवाह शामाचक्क में लंगेह वंश में किया था। दूसरी पत्नी से भी दो पुत्र थे जिन के नाम मुबारकदेव और घुमानदेव थे। ये सभी जम्मू में रहते थे।

मियां रत्नदेव अदम्य साहसी और युद्ध विद्या में बहुत निपुण था। अतः जम्मू पर जब महाराजा रणजीत देव सिंहासनारूढ़ हुए तो उन्होंने रत्नदेव को अपना सेनापति और चन्दनदेव को अपना उपसेनापति बनाया। जम्मू के महाराजा के सेनापति बनने के कारण मिंया रत्नदेव अपनी जागीर रियासी में बहुत कम जाता था। और उस की जागीर का प्रबन्ध भी उस का दीवान चलाता था। मियां रत्नदेव के समय का कोई महल स्मारक अथवा किला रियासी में उपलब्ध नहीं है, अतः स्पष्ट है कि उस की रूचि रियासी जागीर से प्राप्त होने वाले राजस्व में ही थी, प्रशासन अथवा प्रजा की भलाई में नहीं थी।

वैसे एक वीर योद्धा के रूप में मियां रत्नदेव ने मुगल गर्वनर ज़कारिया खान को जिस ने जम्मू पर हमला करने की योजना बनाई थी, पलौड़ा के निकट हराया। इसी प्रकार मुगल सेना ने जब जम्मू पर पुनः हमला किया तो रत्नदेव ने इस सेना को भी मीरा साहब से ही खदेड़ दिया। मियां रत्नेदव के विषय में कहा जाता है कि उसने अहमद शाह दुरानी के एक फ़ौजी सरदार हाज़ी नवाजखान को भी दरिया चन्द्रभागा के निकट लड़ाई में पछाड़ कर भागने पर विवश करदिया था। मियां रत्नदेव समाज सुधारक भी था। उसने पठान सैनिकों द्वारा अपहृत हिन्दू महिलाओं को मुक्त करवा कर उन्हें तवी नदी में स्नान करवाया और उन के हाथ से बना अन्न पंडितों, पुरोहितों और दरबारियों को परोस कर उन्हें 'शुद्ध' घोषित किया।

मियां मान सिंह

रत्नदेव के देहावसान के बाद उस का बड़ा बेटा मियां मान या मियां मान सिंह रियासी जागीर का शासक बना। वह अपने पिता की भांति न तो वीर योद्धा था और न ही कुशल प्रशासक। वह भी अपना अधिकांश समय जम्मू में ही व्यतीत करता था। उसके विषय में कहा जाता है कि वह जम्मू के राजा वृजराज देव के पक्ष में नहीं था। उसने रियासी के विकास के प्रति कोई विशेष ध्यान नहीं दिया।

मियां जंगबहादुर सिंह

मियां मानसिंह की मृत्यु के बाद मियां जंग बहादुर जब रियासी का जागीरदार बना तब जम्मू में राजा जीत सिंह सिंहासनारूढ़ हो चुका था। किन्तु वह युवा-अवस्था में ही स्वर्ग सिधार गया अत: रियासी जागीर की ओर वह विशेष ध्यान दे ही न सका।

मियां दीवान सिंह

मियां दीवान सिंह जब रियासी का जागीरदार बना तब जम्मू की राजनीति में बहुत बदलाव आ चुका था। राजा जीत सिंह का दरबार दो शिविरों में विभाजित हो चुका था। एक शिविर का नेतृत्व मियां मोटा करता था। वह जम्मू दरबार का मुख्य प्रशासक था। दूसरे शिविर का नेतृत्व राजा जीत सिंह की रानी बन्दराली करती थी। रानी बन्दराली बहुत ही योग्य, कूटनीतिज्ञ और कुशल-प्रशासनिक थी। वह मियां मोटा को पसंद नहीं करती थी। उसने मियां दीवान सिंह को अपने साथ मिलाकर मियां मोटा की हत्या का षड्यंत्र रचा।

मियां दीवानसिंह ने रानी के उकसाने पर मियां मोटा की हत्या अगस्त 1813 को मुबारक मंडी जम्मू में करवा दी।

उन दिनों जम्मू पंजाब केसरी महाराजा रणजीत सिंह के अधीन था। गुलाब सिंह और उसके भाई महाराजा की सेना में थे। मियां मोटा गुलाब सिंह का चाचा था, महाराजा रणजीत सिंह ने गुलाब सिंह और उसके भाईयों को तुष्ट करने के लिये मियां दीवानसिंह को लाहौर में बुलाकर बन्दी बना लिया।

मियां भूपसिंह का विद्रोह

महाराजा रणजीत सिंह ने मियां दीवानसिंह को बन्दी बना लेने के बाद जम्मू में मियां गुलाब सिंह को आदेश भेजा कि वह तत्काल रियासी की जागीर अपने अधिकार

---

1. गाँवों के नाम एक डोगरी गीत के अनुसार इस प्रकार थे– जेड़ी, जन्हेड़ी, बन्हाल, बिड्डा, जुह्डा होर सलाल, भब्बर, भौन पनासा, बाड़ी, रियासी, बस्से, खलकत, साढ़ी।

में कर ले। गुलाब सिंह ने आदेश मिलते ही एक सैनिक दस्ता अपने साथ लिया और रियासी पर अधिकार करने के लिए प्रस्थान किया। गुलाब सिंह की सेना को रियासी की ओंर बढ़ने से रोक़ने के लिए मियां भूपसिंह ने बहुत प्रयास किया। उसने गुलाबसिंह की सेना पर घात लगा कर आक्रमण भी किया किन्तु गुलाब सिंह ने उसके प्रयास को असफल कर दिया और रियासी पर वि० सम्वत 1874 (1815-16) को अधिकार कर लिया।

मियां भूपसिंह मियां दीवानसिंह का बड़ा पुत्र था। वह रियासी की जागीर को छोड़ने को तैयार नहीं था। किन्तु शक्तिहीन होने के कारण वह गुलाबसिंह से टक्कर न ले सका और पराजित होने के बाद लाहौर चला गया। उसने लाहौर के दरबारियों से सांठ-गांठ करके अपने पिता मियां दीवान सिंह को बन्दीगृह से मुक्त करा लिया। लाहौर से बाप-बेटा रियासी आ गए। रियासी में उन्होंने विश्वस्त साथी संगठित किये और गुलाबसिंह के विरुद्ध मिथ्या प्रचार करके लोगों को अपने पक्ष में कर लिया। एक दिन मियां भूपसिंह और दीवानसिंह ने अपने सहयोगियों के समर्थन से भीमगढ़ दुर्ग को घेर लिया।

भूपदेव ने इस किले के किलेदार नामदर को अपने पक्ष में कर लिया था। उसके साथ स्थानीय दो सौ के लगभग लोग थे। उसे सफलता की पूरी आशा थी। किन्तु जोरावर सिंह कल्हुरिया ने भूपदेव के इस प्रयास को भी असफल कर दिया। जोरावर सिंह ने तो किलेदार नामदार को बुर्ज से पटक कर नीचे फैंक दिया जिससे उस की मृत्यु हो गई।

गुलाब सिंह ने रियासी जागीर का प्रशासन चलानें के लिए दीवान अमीं चन्द को नियुक्त किया था। दीवान को जब जम्मू में भूपदेव के विद्रोह की सूचना मिली तो उसने डन्साल, चनास और अन्य गाँवों से सैनिक इकट्ठे करके रियासी की ओर प्रस्थान किया। धारकोट (अग्हार जित्तो) के निकट पूरो और मानकु भी अपने आदमी साथ लेकर दीवान के साथ चल पड़े। भूपदेव ने दीवान के साथ जब बहुत बड़ा सैन्य दल देखा तो वह पहाड़ों की ओर भाग गया। मियां भूपदेव ने इससे पहले भी मियां डीडो के साथ मिलकर रियासी क्षेत्र में उपद्रव करवाया था किन्तु उस में भी उसे विशेष सफलता न मिली।

मियां गुलाबसिंह

मियां गुलाबसिंह को रियासी की जागीर महाराजा रणजीत देव ने 1817 को प्रदान की थी। गुलाब सिंह को महाराजा की ओर से यह दूसरी जागीर प्रदान की गई थी। इससे पहले वह 'रामगढ़' की जागीर प्राप्त कर चुका था।

रियासी की जागीर मिलने के बाद गुलाबसिंह बहुत ही महत्वाकांक्षी हो गया। उसने भूपसिंह के विद्रोह का दमन करने के बाद पूरी रियासी जागीर का चक्कर लगाया और स्थानीय लोगों से उपहार स्वीकार किये।

गुलाबसिंह सलाल की ओर भी गया जहाँ भूपसिंह के साथी और सहयोगी रहते थे। उसने सब से पहले भूपदेव के एक साथी मुकद्दम मनोरजू को पकड़ कर उसे एक वृक्ष से बांधा और बाद में उस की हत्या कर दी। इसी प्रकार गुलाबसिंह ने सलाल क्षेत्र के एक और सरदार सूरता भागीयाल (सूरतसिंह) की भी अमानुषिक ढंग से हत्या की। इससे गुलाबसिंह का आंतक पूरे क्षेत्र में छा गया और विद्रोहियों ने भी उस की अधीनता स्वीकार कर ली। गुलाबसिंह ने रियासी जागीर का मुख्य प्रशासक जोरावर सिंह कल्हुरिया को नियुक्त किया। इस के अतिरिक्त उसने खस सरदारों को अपने अंकुश में रखने के लिए भरथल के पुरो द्रोहड़ा को खसाली के इलाके का प्रशासक नियुक्त किया।

गुलाबसिंह ने जब पूरे रियासी क्षेत्र पर अपना पाँव जमा लिया तो मियां भूपसिंह हताश और निराश होकर रियासी से चला गया। किन्तु उसे खालसा सैनिकों ने पकड़ लिया और लाहौर में महाराजा रणजीत सिंह के दरबार में भेज दिया। महाराजा ने उसे विद्रोह करने के लिए अपराधी मानकर आजीवन कारावास का दंड दिया। किन्तु 1839 में महाराजा रणजीत सिंह ने उस को बन्दीगृह से मुक्त कर दिया। महाराजा ने भूपदेव को आजीविका के लिए पठानकोट के निकट कुछ गाँव जागीर के रूप में भी दिये। किन्तु भूपदेव लाहौर में ही एक हवेली में रहने लगा और सम्भवतः वहीं उस की मृत्यु हुई।

मियां गुलाब सिंह को 1822 में पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह ने जम्मू का राजा घोषित करके उसे जम्मू क्षेत्र सौंप दिया तो गुलाब सिंह ने रियासी का विलय जम्मू के साथ कर दिया। 1846 में गुलाबसिंह जब जम्मू व कश्मीर राज्य का महाराजा बना तो उसने रियासी को बजारत (जिला) का दर्जा दिया। सन् 1947 तक रियासी जम्मू प्रान्त में एक जिला का मुख्यालय रहा। 1947 के बाद रियासी से जिला का मुख्यालय उठा लिया गया और इसे केवल तहसील का दर्जा मिला।

डोगरा राजाओं ने भी रियासी क्षेत्र में भीमगढ़, सलाल और ध्यानगढ़ में मुगल और राजस्थानी स्थापत्य कला के आधार पर सुदृढ़ दुर्ग निर्मित करवाये। इन में ध्यानगढ़ का दुर्ग अजेय समझा जाता था और डोगरा राजाओं का कोष इसी में सुरक्षित रहता था। रियासी में स्थित भीमगढ़ का किला जम्मू प्रान्त के प्रसिद्ध दुर्गों में एक माना गया है। श्री माता वैष्णो देवी स्थापना बोर्ड ने 1990 में इस का पुनरुद्धार करके इसे पर्यटकों के लिए खोल दिया है। सलाल का दुर्ग आकृति में छोटा था किन्तु सुरक्षा की दृष्टि से इस का महत्व अत्याधिक रहा है।

रियासी में राजा गुलाबसिंह ने भीमगढ़ दुर्ग के पश्चिम में महल का निर्माण भी किया। यह महल वास्तुकला की दृष्टि से विशेष महत्व का तो नहीं था किन्तु इस महल के भित्ति चित्र दर्शनीय थे। यह महल दो भागों में विभाजित था। मर्दाना महल में राज परिवार के लोग रहते थे और जनाना महल रनवास कहलाता था। इस महल में एक बड़ा हाल था। महाराजा प्रताप सिंह का जन्म इसी महल में हुआ था। अब यह महल ध्वस्त हो चुका है।

रियासी के निकट भब्बर गाँव में बन्दा वीर बैरागी की समाधि भी है। यहाँ उस योद्धा के अवशेष सुरक्षित हैं। बन्दा वैरागी ने सन् 1713 से लेकर 1715 तक इस स्थान में साधना की थी।

डोगरा राजाओं के समय रियासी को विशेष महत्व दिया जाता था किन्तु लोकतांत्रिक सरकार की स्थापना के बाद यह क्षेत्र उपेक्षित ही रहा।



भूति

भूति उधमपुर के उत्तर में स्थित पहाड़ों में स्थित एक छोटा सा पहाड़ी राज्य था जिस की स्थापना ग्यारहवीं शताब्दी में कश्मीर के एक सेना-नायक सोमपत ने की। स्थानीय दन्तकथाओं के अनुसार सोमपत श्रीनगर के रैणाबाड़ी मुहल्ले का रहने वाला था वह कश्मीर से पलायन करके इस पहाड़ी क्षेत्र में आया उसने पंचारी क्षेत्र के कुछ गाँवों पर अधिकार करने के बाद भूति गाँव को अपनी राजधानी बनाया। भूति गाँव पंचारी से दस किलोमीटर दूर स्थित है और आज इस स्थान को पुरानी भूति कहते हैं।

राजा सोमपत के वंशजों की चौतीस पीढ़ियों ने इस क्षेत्र में राज्य किया। सोमपत के वंशज भूति राज्य के शासक होने की वजह से भतियाल राजा कहलाये। इन राजाओं की वंशावली उपलब्ध नहीं है। मौखिक परम्परा में जो नाम वर्णित किये गये वे हैं:-

1. सोमपत
2. दयादाता
3. मानदाता
4. विजयपाल
5. श्रीपवार
6. अस्थानपवार
7. दलपान-सुत
8. पतराज-सुत
9. उज्जैन
10. विलोचन
11. त्रिलोचन
12. तिमिर
13. नाहर
14. नन्द
15. ठेठ श्री
16. जेट
17. नभ
18. अवतार सिंह
19. नीलसिंह
20. जयपान
21. करतार सिंह
22. तख्तसिंह
23. पहाड़ सिंह
24. उदय सिंह
25. दान सिंह
26. मानसिंह
27. छतर सिंह
28. अभय सिंह
29. बहादुर सिंह
30. जयसिंह
31. हिम्मत सिंह
32. राजा प्रताप सिंह

---

1. तहसील रियासी में सब से प्राचीन भग्नावशेष पौनी के निकट धनुआं गाँव की पहाड़ियों पर उपलब्ध हैं जिन के विषय में कहा जाता है कि वे स्यालकोट के राजा सालवाहन के समय के हैं। लोक परम्परानुसार धनुवां का पुराना नाम धनीपुर था और वह पुराने समय में इस क्षेत्र की राजधानी थी।

इन की वंशावली के दो नाम छूट गये हैं और वे किसी भी ऐतिहासिक पुस्तक में उपलब्ध नहीं हैं।

ऐतिहासिक ग्रंथों में भूति राज्य के राजाओं का उल्लेख बहुत ही कम हुआ है। हिमता के इतिहास में यह उल्लेख मिलता है कि लांदर क्षेत्र के अधिकार के प्रश्न पर भूति और हिमता के राज्यों में टकराव होता रहता था। अन्ततः भूति के राजाओं ने दिन प्रतिदिन की लड़ाईयों से तंग आकर 'भूति' गाँव को छोड़ दिया और 'क्रिमची' को अपनी राजधानी बनाया।

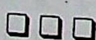
क्रिमची में वीरु नदी के तट पर भतियाल राजाओं के शासन से भी पूर्व पाँच मन्दिरों का समूह था इन राजाओं ने इन मन्दिरों का उद्धार किया और अपनी सुरक्षा के लिए क्रिमची में स्थित पहाड़ी शिखर पर एक दुर्ग निर्मित किया और उसके भीतर आपदकाल में रहने के लिए अपने महल बनाये।

जम्मू के इतिहास में क्रिमची के राजा बहादुर सिंह का उल्लेख जम्मू नरेश रणजीत देव के अधीनस्थ राजाओं के साथ हुआ है। उसने अपनी बड़ी कन्या का विवाह बिलावर के राजा भूपेन्द्रपाल के साथ किया था।

जम्मू के महाराजा रणजीत देव ने बलबालता के अड़योतरा कबीले के लोगों के विद्रोह का दमन करने के लिए जब अपने भाई घनसारदेव को बलबालता क्षेत्र में भेजा तो क्रिमची के राजकुमार जयसिंह ने अड़योतरा कबीले के लोगों की सहायता की और मियां घनसार देव के पाँव बलबालता में नहीं जमने दिये।

किन्तु 1834 में पंजाब केसरी महाराजा रणजीत सिंह ने जम्मू के राजा गुलाब सिंह को भूति राज्य पर अधिकार करने को कहा तो गुलाबसिंह ने इस राज्य के अन्तिम राजा हिम्मत सिंह को राजगद्दी से हटा दिया और भूति का विलय जम्मू के साथ कर दिया। गुलाब सिंह ने भूति के राजा हिम्मत सिंह को आजीविका के लिए जम्मू के निकट मल्हाड़ी की छोटी सी जागीर दी।

इस वंश का अन्तिम राजा प्रताप सिंह था जिस के तीन बेटे और एक लड़की थी। उसने अपनी लड़की का विवाह महाराजा प्रताप सिंह के छोटे भाई अमर सिंह से किया। उस की कोख से हरि सिंह ने जन्म लिया। हरि सिंह 1926 में जब जम्मू कश्मीर का महाराजा बना तो उसने अपने मामा को क्रिमची के कुछ गाँव जागीर के रूप में दिये। इस के बाद भूति का राजवंश पुनः क्रिमची में आ गया और यहां रहने लगा। सन् 1947 के बाद जब नये भूमि-सुधार लागू हुए तो भूति के राजाओं की यह जागीर सदैव के लिए समाप्त हो गई।



चौदहवां अध्याय

गढ़ अम्बारायण (अखनूर)

गढ़ अम्बारायण राज्य की स्थापना राय जगदेव पवार नामक एक सेनापति ने अपनी कुल देवी 'अम्बा' के नाम से की। अम्बारायण का शब्दार्थ है– अम्बा का घर। राय जगदेव ने अपना राज्य अम्बा के नाम समर्पित किया और स्वयं उस का प्रतिनिधि बन कर राज्य किया।

राय जगदेव के विषय में कहा जाता है कि वह धारा रियासत का सेनापति था। वह किसी कारण अपने राजा से रुष्ट होकर धारा से पहाड़ों की ओर आया। उसे चन्द्रभागा का यह तटीय क्षेत्र बहुत पसंद आया। उसने स्थानीय 'राणा' को लड़ाई में पराजित करके इस क्षेत्र से भगा दिया और स्वयं इस क्षेत्र का शासक बन गया। डॉ॰ सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार राय जगदेव ने 1094 ई॰ में इस नये राज्य की स्थापना की। उस के वंशजों ने यहाँ 39 पीढ़ी तक सज्य किया। जिस की समय-अवधि लगभग छह सौ वर्ष है।

गढ़ अम्बायण के राजाओं की वंशावली उपलब्ध है और उसमें क्रमानुसार राजाओं के नाम इस प्रकार हैं:–

1. राजा जगदेव (1094–1151)
2. राजा कलानन्द
3. राजा भोगचन्द
4. राजा सर्वज्ञान
5. राजा ध्यान
6. राजा पावा
7. राजा गर्वसेन
8. राजा महिपत
9. राजा भूपत
10. राजा हिम्मत राय
11. राजा सम्मत राय
12. राजा प्रीतम राय
13. राजा बसन्तराय
14. राजा तेजराय
15. राजा गुप्तराय
16. राजा गोविन्द राय

20. राय पृथ्मी
21. राय कुटदेव
22. राय मतल
23. राय दोदा
24. राय आलम
25. राय भखम
26. राय भवानी
27. राय बरी
28. राय तोका
29. राय भरु
30. राय सबदर
31. राय गुंचा
32. राय चमेली
33. राय रघुपत
34. राय छत्रसाल

17. राजा छलक राय	35. राय धीरज
18. राजा बाजराय	36. राय पोरु
19. राजा सुन्दरपाल राय	37. राय झंगड़ सिंह
	38. राय किशोरा

प्रारम्भ में इस राज्य के अन्तर्गत 85 गाँव थे। प्रशासन की दृष्टि से यह राज्य 6 भागों में विभाजित था। जिन के नाम सोहल, बरदाल, गंडारवां, सुंगल लैहड़, मांडा (अखनूर) और पियाना थे।

यह राज्य लगभग पच्चीस किलोमीटर लम्बा और दस से बारह किलोमीटर चौड़ा था। इस के पूर्व में चन्द्रभागा नदी सीमा बांधती थी, पश्चिम में मवालीखण्ड थी तथा उत्तर में पौनी तवी प्रवाहित थी।

गढ़ अम्बायण राज्य का नाम बदलता रहा। पहले इसे अम्बारायण और बाद में केवल अम्बारा ही कहा जाने लगा। इस राजवंश के लोगों को अम्बारायन कहा जाता है।

गढ़ अम्बारायण के राजाओं के विषय में विशेष विवरण किसी भी ऐतिहासिक ग्रंथ में उपलब्ध नहीं है। इन के विषय में जो भी जानकारी मिलती है, वह दन्तकथाओं पर आधारित है जिन में कहा जाता है कि इस रियासत के राजाओं का टकराव पड़ोसी राजाओं से होता रहता था जिन में कई बार ये जीत जाते थे और कई बार इन्हें पीछे हटना पड़ता था। इसी प्रकार एक बार रामगढ़ के राजा जयसिंह ने अपने भाई विजय सिंह के साथ मिलकर गढ़-अम्बारायण पर जोरदार आक्रमण किया। गढ़-अम्बारायण की सेना ने अपने राज्य को बचाने के लिए बहुत यत्न किया। वे रामगढ़ के शासक की सेना के साथ एक मास तक लड़ते रहे। अन्त में पराजित हुए। किन्तु उन्होंने रामगढ़ के राजा जयसिंह और उसके भाई विजय सिंह को लड़ाई में हताहत कर दिया। इस लड़ाई के बाद गढ़-अम्बारायण पर रामगढ़ के राजा का अधिकार हो गया। रामगढ़ के नये राजा महि प्रकाश ने गढ़ अम्बारायण के राजपरिवार को वहां से निष्कासित कर दिया और वह परिवार बजवात में जा बसा।

गढ़ अम्बारायण राजाओं के महलों और किलों के अवशेष अब भी गढ़ में बिखरे पड़े हैं। जो इस बात की गवाही देते हैं कि कभी यह एक समृद्ध राज्य था। आज भी यहाँ तीन शिलालेख एक पुराने वृक्ष के नीचे पड़े हैं जिन की लिपि के बारे में विवाद है। गढ़ अम्बारायण के निकट ही भभड़वा गाँव में खुदाई में पुरातत्व महत्व की वस्तुएँ मिली हैं जिन के विषय में विद्वानों का विचार है कि यह स्थान अति प्राचीन हैं।

रामगढ़

रामगढ़ का इलाका जम्मू के राजा कपूरदेव ने अपने छठे पुत्र भोजदेव को 1590 के लगभग एक जागीर के रूप में दिया। बाद में भोजदेव के वंशजों ने इसे एक राज्य के

रूप में उभारने का प्रयास किया। रामगढ़ वर्तमान अखनूर नगर से लगभग पन्द्रह किलोमीटर पश्चिम में चन्द्रभागा नदी के तट पर बसा एक गाँव था।

मियां भोजदेव ने रामगढ़ जागीर का प्रबन्ध सम्भालते ही यहाँ एक दुर्ग बनवाया और दुर्ग के निकट ही उसने अपने रहने के लिए महल बनवाये। इस राजवंश के लोगों को बाद में रामगढ़िया कहा गया।

रामगढ़ के राजाओं की वंशावली से पता चलता है कि भोजदेव के बाद उसका बेटा प्रतापदेव इस क्षेत्र का जागीरदार बना। प्रतापदेव ने इस क्षेत्र के विकास के लिए बहुत यत्न किये। उसका उत्तराधिकारी मियां विश्वम्भर देव बना। विश्वम्भर देव के शासनकाल में महत्वपूर्ण घटना यह घटी कि उस के बेटों ने काहन नामक एक ब्राह्मण से ऋण लेकर उसे लौटाया नहीं। उन्होंने ब्राह्मण को इतना आतंकित किया कि उसने आत्महत्या कर ली। काहना के साथ ही उस की पत्नी और बेटी भी सती हो गई। इस घटना का जनता पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ा। रामगढ़ जागीर के लोग जागीरदार और उसके पुत्रों के विरुद्ध भड़क उठे। इस का परिणाम यह निकला कि मियां विश्वम्भर देव के तीनों बेटों को रामगढ़ छोड़ने पर विवश होना पड़ा और वे बाहु के राजा की सेना में भर्ती हो गए।

मियां विश्म्भर के बाद उसका ज्येष्ठ पुत्र मियां समदु रामगढ़ का जागीरदार बना। मियां समदु के दो बेटे जयसिंह और विजय सिंह हुए। मियां समदु के देहान्त के बाद मियां जयसिंह रामगढ़ का जागीरदार बना।

जयसिंह ने रामगढ़ का जागीरदार बनते ही गढ़ अम्बारायण राज्य पर आक्रमण करने की योजना बनाई। उसने मियां सिद्ध मनालिया को सेनापति नियुक्त किया और अपने भाई विजय सिंह को अपना वजीर बनाने के बाद गढ़ अम्बारायण पर हमला कर दिया। गढ़-अम्बारायण के लोग बड़ी वीरता से लड़े। इस लड़ाई में गढ़-अम्बारायण रामगढ़ियों के हाथ तो आ गया किन्तु मियां जयसिंह और उसका भाई विजय सिंह लड़ाई में मारे गए। मियां जयसिंह के मरने के बाद मियां महि प्रकाश रामगढ़ का जागीरदार बना। मियां महि प्रकाश ने रामगढ़ और अम्बारायण का एकीकरण करने के बाद एक नई राजधानी बनाई जिस का नाम उसने गढ़ रखा। गढ़ में उसने एक पहाड़ी शिखर पर दुर्ग बनवाया और फिर वह अपने परिवार के साथ उसी में रहने लगा।

मियां महि प्रकाश के शासनकाल में अम्बारायण के पराजित राजा विजयपाल ने अपने आदमियों को संगठित करके एक बार पुनः गढ़ अम्बारायण प्राप्त करने का यत्न किया किन्तु महि प्रकाश ने लड़ाई में अपने प्राणों की बलि देकर विजय पाल को सफल नहीं होने दिया। महि प्रकाश के बाद उस का बेटा बुद्धि सिंह रामगढ़ का जगीरदार बना।

राजा बुद्धिसिंह ने अपने पिता की मृत्यु का बदला लेने के लिए यह प्रतिज्ञा की कि वह तब तक खाना नहीं खायेगा जब तक वह अम्बारायण कबीले के किसी व्यक्ति की हत्या अपनी तलवार से नहीं कर ले। उसने अपनी इस प्रतिज्ञा को पूरा करने के लिए अम्बारायण-कबीले के दर्जनों लोगों की हत्या कर दी। इस से पूरे क्षेत्र में आंतक छा गया। अम्बारायण कबीले के लोग अपना घर गाँव छोड़ कर दूसरे सुरक्षित स्थानों की ओर भागने लगे। कईयों ने अपने प्राण बचाने के लिए दूसरी जातियाँ अपना लीं। किन्तु बुद्धि सिंह का क्रोध फिर भी शान्त न हुआ। जब अम्बारायण कबीले के लोग वहां से भाग गए तो उस ने अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने के लिए उनके आम के वृक्ष काटना शुरू किये। इस से यह क्षेत्र आम के वृक्षों से रहित हो गया।

बुद्धि सिंह के विषय में कहा जाता है कि वह न केवल क्रूर राजा ही था अपितु मूर्ख और अदूरदर्शी भी था। वह निरापराध लोगों को भी फाँसी पर लटका देता था और अपराधियों को छोड़ देता था। उस की मूर्खता की कई कहानियाँ इस क्षेत्र में आज भी प्रचलित हैं।

रामगढ़ के जिन जागीरदारों ने इस क्षेत्र में शासन किया उन का क्रमानुसार ब्योरा इस प्रकार है:-

1. मियां भोजदेव
2. मियां प्रताप देव
3. मियां विश्वम्भर देव
4. मियां समदु
5. मियां जयसिंह
6. मियां महि प्रकाश
7. मियां बुद्धिसिंह

रामगढ़ के इन जागीरदारों में से कईयों ने अपने नाम के साथ राजा शब्द का प्रयोग भी किया है, यथा राजा महि प्रकाश, राजा बुद्धि सिंह आदि। बुद्धिसिंह के समय में ही रामगढ़ पर मियां चन्दनदेव ने अधिकार किया।

मियां चन्दन देव

मियां चन्दन देव राजा जसबन्तदेव का बेटा था। वह जम्मू नरेश रणजीत देव की सेना में उपसेनापति था। उसने अपने जीवन काल में कई लड़ाईयां लड़ी थीं और उस की बहादुरी की चर्चा दूर-दूर तक फैल चुकी थी। महाराजा रणजीत देव को बन्दी बना लेने के बाद लाहौर के मुगल गवर्नर ने जब जम्मू पर हमला किया तो मियां चन्दन देव ने

अपने बड़े भाई रत्नदेव के साथ मिल कर जम्मू के निकट 'पलौड़ा गांव' में मुगल सेना के छक्के छुड़ा दिये और अन्ततः मुगल सेना को मैदान छोड़कर भागना पड़ा।

मियां चन्दन देव की बहादुरी की प्रशंसा जब दिल्ली दरबार में पहुंची तो मुगल बादशाह ने उसे अपने दरबार में बुलाया। चन्दनदेव जब दिल्ली दरबार में पेश हुआ तो मुगल बादशाह ने उसे खड़ी-खड़ियाली के विद्रोही राजा का दमन करने का काम सौंपा। मियां चन्दनदेव ने अपने साथ सेना ली और विद्रोही राजा को बड़ी कूटनीति से बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया। दिल्ली के मुगल बादशाह ने मियां चन्दन देव पर प्रसन्न होकर उसे रामगढ़ की जागीर प्रदान कर दी।

रामगढ़ में उन दिनों राजा बुद्धिसिंह राज्य करता था। वह गढ़ में रहता था। उस का दुर्ग दुर्जेय माना जाता था। अतः बुद्धिसिंह को हराना सरल भी नहीं था। मुगल बादशाह का आदेश मानने को वह तैयार भी नहीं था। वह अपने आपको स्वतन्त्र शासक मानता था।

अन्त में चन्दनदेव ने गढ़ अम्बारायण के लोगों के सहयोग से चन्द्रभागा नदी को पार किया और गढ़ पर आक्रमण कर दिया। बुद्धि सिंह के सेनापति सिद्ध मनालिया ने चन्दनदेव की सेना के साथ छह दिन तक लड़ाई की और अन्त में लड़ते हुए जब वह मारा गया तो चन्दनदेव ने रामगढ़ पर अधिकार कर लिया। इस लड़ाई में बुद्धिसिंह ने आत्मसमर्पण नहीं किया। वह अपने साथ बचे हुए सैनिकों को लेकर कालीधार पहाड़ पर चढ़ गया और वहां उसने एक नया मोर्चा खोल लिया। मियां चन्दनदेव और बुद्धि सिंह के मध्य छह महीने तक लड़ाई चलती रही। मियां चन्दनदेव ने जब राजा बुद्धिसिंह के कप्पागला मोर्चे पर अधिकार करि लिया तो राजा बुद्धि सिंह वहाँ से भागकर दौलतानगर चला आया और चन्दनदेव के साथ लड़ने के लिए नई नीति तैयार करने लगा। उसने दौलता नगर को अपनी राजधानी बनाया और राज्य करने लगा।

बुद्धि सिंह ने दौलतानगर में एक छोटी सी सेना संगठित की और खोये हुए क्षेत्र पर पुनः अधिकार करने के लिए बार-बार हमले किये। इस से चन्दनदेव और बुद्धि सिंह में दिन प्रतिदिन टकराव होने लगा। इन लड़ाईयों का परिणाम बहुत ही भयंकर निकला। फसल उजड़ने लगी। दोनों पक्षों के सैकड़ों सिपाही मारे गए।

अन्ततः एक ऐसी ही लड़ाई में जो सम्भवतः 1755 में लड़ी गई बुद्धि सिंह और चन्दन देव मारे गये। इस से लड़ाई का अन्त हो गया और रामगढ़ क्षेत्र में शांति स्थापित हो गई।

चन्दनदेव के बाद उस का पुत्र राजा तेग सिंह रामगढ़ क्षेत्र का राजा बना।

राजा तेग सिंह

तेग सिंह अनुमानतः 1755 में रामगढ़ का राजा बना। जब वह राजगद्दी पर बैठा उस समय उस की आयु केवल बारह वर्ष की थी। जब तक वह व्यस्क न हुआ उस की माँ ने प्रशासन चलाने में उस की सहायता की।

राजा तेग बहादुर ने 1762 में गढ़ के स्थान पर अखनूर को अपनी राजधानी बनाया। उसने चन्द्रभागा नदी के तट पर एक सुदृढ़ दुर्ग बनवाया और अपने रहने के लिए महल भी बनवाये। उसने अखनूर नगर का चहुँमुखी विकास किया। उसके साथ गढ़ से जो लोग आये थे उन्हें रहने के लिए उसने ज़मीन दी। देखते ही देखते उस के समय में अखनूर एक गाँव से कस्बा बन गया।

राजा तेग सिंह बहुत ही योग्य दूरदर्शी तथा प्रजा पालक राजा था। उस ने दुर्भिक्ष के दिनों अपने महल के निर्माण का काम आरम्भ करवा कर सैंकड़ों लोगों को आजीविका दी। उसने कबीले के लोगों से अपने सम्बन्ध और सुदृढ़ किये और उन्हें अपने पक्ष में किया।

राजा तेग सिंह का सम्मान जम्मू नरेश रणजीत देव भी करता था। वह उसे अपना मित्र, सलाहकार और हितचिंतक मानता था। उसने इसे अपना दीवान नियुक्त किया था। तेग सिंह अधिक समय जम्मू में ही गुजारता था और रणजीत देव की प्रशासन चलाने में सहायता करता था।

महाराजा रणजीत देव के दो बेटे बृजराजदेव और दलेलदेव थे। बृजराज देव बड़ा था किन्तु रणजीत देव अपनी छोटी रानी के बहकावे में आकर छोटे बेटे को अपना उत्तराधिकारी बनाना चाहता था। राजा तेग सिंह ने रणजीत देव को समझाया कि वह ऐसा न करे। इस से जम्बाल कबीले की वंशानुगत परम्परा टूट जायेगी। रणजीत सिंह की छोटी रानी को जब यह पता चला कि उस के बेटे को उत्तराधिकारी बनाने में तेग सिंह अवरोध खड़े कर रहा है, तो उसने तेग सिंह के खाने में विष डलवा कर उसे मारने की चेष्टा की किन्तु एक साधु के प्रयास से वह बच गया। किन्तु एक बार दलेल देव उसे फुसला कर आखेट खेलने के बहाने लखनपुर की ओर ले गया। तेग सिंह जब सो रहा था तो दलेलदेव ने उसके पेट में छुरा घोंप कर उस की हत्या कर दी। यह घटना डॉ॰ सुखेदव सिंह के अनुसार 1776 के लगभग की है।

राजा आलमसिंह

राजा तेग सिंह की हत्या के बाद राजा आलमसिंह 1776 के लगभग अखनूर का राजा बना। उसने अपने पिता के वध का बदला लेने के लिए मियां मोटा से सांठ-गांठ की। मियां दलेलदेव और उसका बेटा भगवान सिंह जो वैष्णो देवी यात्रा पर गए थे, उन्हें

राजा आलमसिंह के आदमियों ने घेर कर मार डाला। इससे राजा आलमसिंह के सम्बन्ध दलेल देव के परिवार से बिगड़ गये। 1798 में दलेल देव का छोटा लड़का जीत सिंह जब जम्मू का राजा बना तो उस की रानी बन्दराली ने राजा आलमसिंह और मियां मोटा के विरुद्ध कई षड्यंत्र रचे जिसके परिणामस्वरूप पंजाब केसरी महाराजा रणजीत सिंह ने 1807 में अपने भाई साहब सिंह को अखनूर पर अधिकार करने का आदेश दिया। साहब सिंह ने अखनूर पर अधिकार करके इस का विलय खालसा राज्य के साथ कर दिया। महाराजा रणजीत सिंह ने राजा आलम सिंह को सोहल की एक छोटी जागीर दी जिस में केवल सोलह गाँव ही सम्मिलित थे।

राजा आलमसिंह के बाद उस का बेटा इतवार सिंह इस जागीर का जागीरदार बना। उस के देहान्त के बाद निहाल सिंह को राजा का पद मिला और उस की जागीर के गाँवों की संख्या 16 से बढ़ा कर 23 कर दी गई। महाराजा रणजीत सिंह ने 1822 में जब गुलाब सिंह को जम्मू का राजा बनाया तो अखनूर के राजा निहाल सिंह ने अपने खून से गुलाब सिंह को तिलक लगाया। बाद में यह परम्परा ही बन गई और जम्मू के डोगरा राजाओं को राजगद्दी पर बैठते समय अखनूर राजवंश के किसी व्यक्ति द्वारा तिलक लगाना आवश्यक समझा जाने लगा।

अखनूर के राजाओं के ऐतिहासिक स्मारक आज भी रामगढ़, गढ़, अखनूर और अम्बरायाण में बिखरे पड़े हैं। ये स्मारक डुग्गर की उन्नत वास्तुकला के प्रतीक माने जाते हैं।

राजा चन्दनदेव के वंश में जिन राजाओं ने रामगढ़ में राज्य किया उन के नाम इस प्रकार हैं:–

1. राजा चन्दनदेव
2. राजा तेग सिंह
3. राजा आलमसिंह
4. राजा इतवार सिंह
5. राजा निहाल सिंह

मियां गुलाब सिंह ने 1822 में जम्मू का राजा बनते ही रामगढ़ (अखनूर) का क्षेत्र अपने राज्य में मिला लिया और इस प्रकार इस राज्य का अस्तित्व समाप्त हो गया।

कलीठ

चन्द्रभागा नदी के पश्चिम में रामगढ़ के उतर पश्चिम में तेरहवीं शताब्दी में एक और राज्य का उदय हुआ जिसे इतिहासकारों ने कलीठ का नाम दिया है।

तारीख डोगरा देश के अनुसार कलीठ राज्य की स्थापना भाऊ कबीले के एक सरदार रामसरन देव ने की। कहा जाता है कि रामसरन देव कश्मीर से जम्मू आया था और उसने सहारन गाँव के आस-पास के इलाके को अपने अधिकार में कर लेने के बाद अपना राज्य स्थापित किया। उसके राज्य की राजधानी सहारन थी। इसी रामसरन देव के एक वंशज जबरदेव ने मनावर तवी के आस पास का इलाका जीत कर कलीठ राज्य की स्थापना की। जबरदेव् ने कलीठ में एक दुर्ग भी निर्मित किया और फिर इसी को अपनी राजधानी बनाया। लोक परम्परानुसार भाऊ जाति के इस सरदार ने पहले थक्कयाल जाति के ठाकुरों के घर विवाह किया। थक्कयाल ही पहले इस क्षेत्र के शासक थे। जबरदेव ने थक्कयालों को इस क्षेत्र से निष्कासित करके इस पर अधिकार कर लिया।

कलीठ राज्य सरमाला और बन्दराला दो भागों में बिभाजित था। इस राज्य में 84 गाँव सम्मिलित थे जिन में कोट मैहरा, जंगी आला, फ्हाड़ीआला, मथियाल, निक्कियां, मरचंगी, कालियां, खौड़, मलाड़, क्लीठ, खड़ाह आदि भाऊ कबीले के मुख्य केन्द्र थे।

इस छोटे से राज्य की पूर्वी सीमा ज्योड़ियां और मलाड़ के मध्य प्रवाहित मलाड़ खड्ड थी और पश्चिम में मनावर तवी थी।

कलीठ के राजाओं की वंशावली उपलब्ध है जो क्रमांक से इस प्रकार है:-

1. राय भ्राउर	2. राय भरथ	3. राय समझू
4. राय लोथड़ा	5. राय भागी	6. राय अंज
7. राय खम्भा	8. राय लद्दा	9. राय भरण
10. राय चमनदेव	11. राय जवरदेव	12. राय उदयदेव
13. राय मरदान	14. राय भूपाल	15. राय भोंडू
16. राय लाडम	17. राय संघर	18. राय तख्तमल
19. राय समेल	20. राय सुलक्षण	21. राय सेन
22. राय मानधाता	23. राय रूपचन्द	24. राय उद्धार सिंह
25. राय दया सिंह	26. राय घमंड सिंह	27. तथा राय लाज सिंह।

राय लाज सिंह के शासनकाल में पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह ने कलीठ पर आक्रमण करके इस दुर्ग पर अधिकार कर लिया। बाद में मियां गुलाब सिंह ने जम्मू का राजा बनने के बाद कलीठ का विलय जम्मू राज्य के साथ कर दिया।

सूर गढ़

चन्द्रभागा नदी के पश्चिमी तट पर बसे नौर क्षेत्र में जम्मू के राजा समैल देव के भाई लालदेव ने 1580 के लगभग एक अलग राज्य की स्थापना की। उसने चन्द्रभागा के ही तट पर एक सुरक्षित स्थान में अपने रहने के लिए एक किला बनवाया जिस का नाम

उसने सूरगढ़ रखा। यही सूरगढ़ उस के राज्य की राजधानी थी।

राजा लालदेव ने रामगढ़ का बहुत सा इलाका अपने राज्य में मिलाया और निरंकुश होकर शासन करने लगा।

सन् 1596 में पहाड़ी राजाओं ने मुगल सम्राट् अकबर के विरुद्ध विद्रोह किया तो उस में लालदेव ने भी हिस्सा लिया। मुगल सेना जैनखान कोका के नेतृत्व में जम्मू को रौंदने के बाद चन्द्रभागा नदी को पार करके सूरगढ़ की ओर बढ़ी। लालदेवं को जैसे ही मुगल सेना के आगमन की सूचना मिली, वह एक नाव में अपने परिवार के साथ बैठा और कहीं अज्ञात स्थान की ओर चला गया।

मुगल सेना ने सूरगढ़ को जला कर राख कर दिया। सूरगढ़ में राजा लालदेव के महलों के खंडहर आज भी द्रष्टव्य हैं।



बाहुस्थली

बाहुस्थली डुग्गर के प्राचीन राज्यों में से एक था। राजतरंगिणी की आठवीं तरंग में वर्णन मिलता है कि बाहुस्थली के राजा सुर ने अपनी कन्या का विवाह कश्मीर नरेश से किया था। राजदर्शनी के अनुसार पहले इस क्षेत्र में चाड़क कबीले के लोग रहते थे और इसी कबीले का यहाँ शासन था। उन दिनों जम्मू का क्षेत्र घने वृक्षों से आच्छादित था। गुम्मट पहाड़ी के शिखर पर एक दैत्य रहता था जो चाड़क कबीले के लोगों को बहुत कष्ट देता था। ज्योति प्रकाश और सर्व प्रकाश नामक दो भाईयों ने चाड़क कबीले के सरदार के अनुरोध पर दैत्य की हत्या की योजना बनाई। सब से पहले छोटा भाई सर्वप्रकाश दैत्य से लड़ने के लिए गुम्मट की पहाड़ी पर चढ़ा। उसने दैत्य को ललकारा। द्वन्द्व युद्ध में उस को ज़मीन पर पटका और जब वह मर गया तो वह उसका बाजू काट कर अपने साथ ले आया। जिस स्थान पर उसने दैत्य का बाजू रखा वही स्थान बाहुस्थली के नाम से प्रसिद्ध हुआ। बाहुस्थली में सब से पहले सर्व प्रकाश नें अपना राज्य स्थापित किया। और उस के वंशजों ने सोलह पीढ़ियों तक राज्य किया। राजदर्शनी में ज्योति प्रकाश की जो वंशावली दी है वह इस प्रकार है:-

1. ज्योति प्रकाश
2. कुल प्रकाश
3. रत्न प्रकाश
4. भूषण प्रकाश
5. ब्रह्म प्रकाश
6. जाम प्रकाश
7. किशोर इन्द्र
8. इन्द्र
9. राजेन्द्र
10. नरेन्द्र धर्मी
11. राजेन्द्र
12. हरइन्द्र
13. हरन-कोल
14. कोल वर्ण
15. धातु वर्ण
16. तेज वर्ण।

उपरोक्त राजाओं के नाम जम्मू राजाओं की वंशावली में भी मिलते हैं। लगता है कि जम्मू के राजा मालदेव से पहले जम्मू राज्य की राजधानी बाहुस्थली ही थी।

बाहुस्थली को ही मध्यकाल में बाहु या बाह्वा के नाम से अभिहित किया जाने लगा।

राजा मालदेव से लेकर राजा कपूरदेव के शासनकाल तक जम्मू राज्य की राजधानी केवल जम्मू में ही रही। किन्तु राजा कपूरदेव की मृत्यु के बाद राजगद्दी के प्रश्न पर कपूरदेव के वंशजों में विवाद खड़ा हो गया। कपूरदेव का ज्येष्ठ पुत्र जगदेव मुगल सेना

का साथ देते हुए दक्षिण में मारा गया था। अत: दरबारियों ने कपूरदेव के छोटे बेटे सामिलदेव को राजगद्दी पर बैठा दिया। किन्तु जगदेव के बेटे परसराम देव ने राजगद्दी पर अपना अधिकार जताया। जम्मू के दरबारियों ने उस के अधिकार को जब स्वीकार न किया तो उसने दिल्ली दरबार में न्याय के लिए प्रार्थना-पत्र दिया। दिल्ली सम्राट अकबर ने उसके प्रार्थना पत्र को स्वीकार करते हुए जम्मू राज्य का विभाजन कर दिया। एक राज्य जम्मू रहा और दूसरा बाहु राज्य स्थापित किया गया। जम्मू राज्य पहले की तरह सामिलदेव के अधिकार में रहा और बाहु राज्य जगदेव के पुत्र परसराम के अधिकार में रहा। तवी नदी इन दोनों राज्यों के मध्य सीमा मानी गई।

परसराम देव ने 1580 से लेकर 1610 तक राज्य किया। परसराम की मृत्यु के बाद उस का बड़ा बेटा कृष्णदेव बाहु की गद्दी पर बैठा। उसने 1610 से 1635 तक राज्य किया। उसके बाद अज़्मत देव बाहु का राजा बना जिसने 1635 से 1660 तक राज्य किया।

बाहु के इतिहास में राजा कृपाल देव का नाम बड़े आदर से लिया जाता है। वह 1660 में बाहु का राजा बना। राजा कृपालदेव के विषय में कहा जाता है कि वह बड़ा ही प्रजापालक, न्याय प्रिय, युद्ध-प्रिय, नीतिज्ञ औरं दूरदर्शी राजा था। उस के शासनकाल में बाहु और जसरोटा के मध्य झांड़ी गाँव में एक लोमहर्षित लड़ाई हुई जिस में दोनों पक्षों के सैकड़ों योद्धा हताहत हुए।

कृपाल देव के देहान्त के बाद उस का पुत्र अनन्त देव 1675 में बाहु का राजा बना। 1730 में उसने जम्मू पर आक्रमण करके उसे अपने अधिकार में लिया। उसकी इस सफलता का कारण यह था कि उन दिनों जम्मू का राजा रणजीत देव लाहौर में कैद था। जब वह कैद से मुक्त होकर आया तो उसने न केवल जम्मू पर ही अधिकार किया अपितु बाहु के राजा को भी उसने अपने अधीन किया। अनन्त देव के बाद उग्गरदेव और उसके बाद 1745 में रत्नदेव बाहु का राजा बना। उसके शासनकाल में सिक्खों ने बाहु पर इतने अधिक आक्रमण किये कि यह राज्य जर्जरित हो गया। रत्नदेव के बाद उसका चाचा बसन्त देव इस राज्य का राजा बना। वह आजीवन सिक्ख-आक्रमणकारियों के साथ लड़ता रहा। उसके बाद उस का बेटा शाहज़ाद देव और उसके बाद उसका बेटा गम्भीर देव बाहु का राजा बना। गम्भीर देव के शासन काल में बाहु पर अधिकार करने के लिए सिक्खों ने कई हमले किए। अन्तत: सिक्ख सेना के साथ लड़ता हुआ गम्बीर राय मारा गया और उसकी मृत्यु के साथ ही बाहु राज्य का अन्त हुआ।



काष्टवट (किश्तवाड़)

हिमालय के आन्तरिक भाग में स्थित काष्टवट (किश्तवाड़) का राज्य डुग्गर के प्राचीनतम राज्यों में से एक था। यह राज्य अपने मूलरूप में उत्तर में लद्दाख, पूर्व में पाडर और चम्बा, दक्षिण में भद्रवाह और चनैनी पश्चिम में कश्मीर से घिरा हुआ था। इस राज्य में किश्तवाड़ के अतिरिक्त नागसुन, डचिन, डोडा, सिराज, सरथल, सुरुर, कुन्तवाड़ा, बनिहाल और भुंजवाह का इलाका भी सम्मिलित था।

एक जनश्रुति के अनुसार कभी इस क्षेत्र में एक बहुत बड़ी झील थी जिस में काष्टवट का पूरा इलाका समाहित था। इस झील का नाम गोवर्धनसर था। ऋषिपाल नामक एक ऋषि ने उस झील के पानी का निकास किया जिसके बाद एक मैदान उभर आया। उस मैदान का आदि नाम लोहित मंडल पड़ा। बाद में ऋषिपाल ने वहाँ एक बस्ती बसाई और एक महाकाल का मन्दिर बनवाया। महाकाल मन्दिर के कारण इस क्षेत्र का नाम महाकाल गढ़ भी विख्यात हुआ। इसी के निकट एक और बस्ती आबाद हुई। उस का नाम समर्थगढ़ पड़ा। कभी इस क्षेत्र को महासमर गढ़ भी कहा जाता था। कहते हैं कि कश्यप ऋषि जब इस क्षेत्र में आये तो उन्होंने इस का नया नामकरण किया और इस इलाके का नाम सूरगढ़ रखा। सुरुघाटी के राजा ने जब इस इलाके पर अधिकार किया तो उसने इसका नाम भोट नगर रखा। इस प्रकार भिन्न-भिन्न समय में इस क्षेत्र के नाम भी भिन्न-भिन्न रहे। किन्तु जब इस इलाके में काष्ट के वट (वृक्ष) अधिक संख्या में उगने लगे तो लोगों ने इस इलाके को 'काष्टवट' नाम से अभिहित किया। यह नाम इतना प्रचलित हुआ कि इस का नाम काष्टवट ही प्रसिद्ध हो गया। काष्टवट से बिगड़ते-बिगड़ते इस क्षेत्र का नाम किश्तवाड़ पड़ा है।

आरम्भ में इस सुन्दर घाटी में डावर और रोटर कबीले के लोग बसे। उन के बाद गनाई कबीले के लोग आये। इन कबीलों ने स्थान-स्थान इस क्षेत्र में कई बस्तियां बसाईं और पशुचारन के लिए नई चरागाहें ढूंढी। इन के बाद पंजाब से पंचसासिये आये। इन कबीलों में कभी-कभी टकराव भी हो जाता था। जिस के कारण इन कबीलों के लोग स्थान बदलते रहते थे। अंत में राणाओं ने इन कबीलों को अपने बाहुबल से अपने अधीन करके यहाँ शासन व्यवस्था कायम की। इस पूरे क्षेत्र में जिन राणाओं का शासन था उस का विवरण ऐतिहासिक पुस्तकों में नहीं मिलता फिर भी जनश्रुतियों में उन राणाओं की उपलब्धियों का विवरण मिलता है। इन राणाओं में अधिकांश ठाकुर और राठी कबीलों में से थे। पंजसासियों ने भी इस क्षेत्र में अपनी शासन व्यवस्था स्थिर की किन्तु उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली।

उन्हीं दिनों गौड़ बंगाल के राजवंश सेन से सम्बन्धित एक वीर योद्धा काह्न सुकेत रियासत से घूमता-फिरता इस क्षेत्र में आया। उसे यह इलाका पसंद आ गया और उसने यहाँ अपना राज्य स्थापित करने की योजना बनाई। किन्तु उन दिनों वहाँ पंचसासी कबीले के लोगों का बड़ा दबदबा था। वे अपने साथ शस्त्र ले कर चलते थे। उन्हें हराना सहज नहीं था। काहन ने उस कबीले की एक महिला को अपने सम्पर्क में लिया और एक दिन जब वे लोग पूजा में व्यस्त थे तो उस ने उन पर हमला कर दिया। पंचसासिये निःशस्त्र थे, अतः सामना न कर सके और लड़ाई के मैदान से भाग गए। पंचसासी कबीले के इस क्षेत्र से भगाने के बाद काहन ने धीरे-धीरे अन्य राणाओं पर भी हमले किये। वे असंगठित थे, अतः उसने एक-एक को पराजित करके किश्तवाढ़ के बहुत बड़े क्षेत्र पर अधिकार कर लिया।

काह्न के तीन बेटे गन्धर्वसेन, मदनसेन और देवसेन थे। उसके देहान्त के बाद उसका बड़ा बेटा गन्धर्वसेन किश्तवाड़ का राजा बना। उसने अपने भाईयों को किश्तवाड़ के भिन्न-भिन्न इलाकों में जागीरें दी ताकि उस का राज्य इस क्षेत्र में सुदृढ़ हो।

किश्तवाड़ की वंशावली में जिन सेन वंशीय राजाओं के नाम उल्लेखित हैं उन के नाम क्रमानुसार 1. काह्नसेन 2. गन्धर्वसेन 3. मदनसेन 4. और ब्रह्मसेन हैं। इन के शासनकाल की अवधि ज्ञात नहीं है। अनुमानतः इन्होंने आठवीं से दसवीं शताब्दी तक किश्तवाड़ में राज्य किया। लगता है कि किश्तवाड़ के राजाओं की वंशावली में कई सेन राजाओं के नाम लुप्त हैं।

लोक परम्परा हिमाचल प्रदेश के अन्तर्गत मढ़ी सुचेत, क्योंथल और किश्तवाड़ के 'सेन' राजाओं को एक ही परिवार का मानती है।

सेन राजाओं के बाद किश्तवाड़ की वंशावली में देव वंश के राजाओं के नाम मिलते हैं। इन में पहला नाम उत्तमदेव का है। डॉ॰ सुखदेव सिंह चाड़क का मत है कि यह उत्तमदेव वही राजा उत्तम हो सकता है जिस का उल्लेख राजतरंगिणी में कश्मीर के राजा कलश (1087-88) के सन्दर्भ में हुआ है।

राजा उत्तमदेव के बाद वंशावली में देव वंशीय राजाओं के क्रमांकानुसार नाम 1. मातदेव 2. गंगादेव. 3. गौड़ देव 4. संघदेव 5. रक्षा देव 6. इन्द्रदेव 7. अवतार देव. 8. भोग देव 9. राय देव 10. गौर देव 11. उग्गर 12. बलभद्रदेव तथा 13. लक्ष्मण देव हैं।

सेन राजाओं की भाँति उपरोक्त राजाओं के विषय में भी बहुत कम जानकारी उपलब्ध है। मौलवी हशमादुल्ला के अनुसार राजा रायदेव के शासनकाल में राणा और ठाकुरों ने राजा के विरुद्ध विद्रोह किया। इस बार वे संगठित रहे जिसके कारण राजा को

किश्तवाड़ छोड़कर बन्दरकोट और सिंहघाट की ओर भागना पड़ा। उसने बड़े अन्तराल के बाद अपना खोया हुआ राज्य प्राप्त किया। इसी प्रकार राजा उग्गर देव के शासनकाल में उसके चचेरे भाई बलभद्र ने उसके विरुद्ध बगावत की जिसके कारण उग्गरदेव को किश्तवाड़ छोड़कर कश्मीर की ओर भागना पड़ा। वहाँ उसे कश्मीर के राजा ने रूपवन की जागीर दी। राजा उग्गरदेव के बाद सत्ता उसके चचेरे भाई के हाथ में आई और उसके मरने के बाद उसका बेटा लक्ष्मण देव राजा बना और लक्ष्मण देव के देहावसान के बाद संग्राम सिंह किश्तवाड़ का राजा बना।

राजा संग्राम सिंह–संग्राम सिंह किश्तवाड़ का पहला राजा था जिसने देव के स्थान पर अपने नाम के साथ 'सिंह' लगाया। वह सम्भवत: 1400 में राजगद्दी पर बैठा। उसने दूरवर्ती पहाड़ों में स्थापित छोटे-छोटे राणाओं और ठाकुरों पर एक के बाद एक आक्रमण करके उन के इलाके जीते और उन्हें किश्तवाड़ राज्य का हिस्सा बनाया।

संग्राम सिंह के बाद शंगार सिंह, भगनसिंह, देवासिंह, फिरोजसिंह, नारायण सिंह गद्दी पर बैठे किन्तु उन के विषय में जानकारी बहुत कम उपलब्ध है। नारायण सिंह के बाद सल्हण सिंह किश्तवाड़ का राजा बना। इस के विषय में प्रसिद्ध है कि यह धर्मात्मा प्रवृत्ति का राजा था। इस ने अपने शासनकाल में कई मन्दिर और धर्मशालाएँ बनाईं और ब्राह्मणों को भूमि दान दी।

राजा राय सिंह–यह राजा 1525 में राजगद्दी पर बैठा। इस के शासनकाल की सब से बड़ी घटना यह थी कि कश्मीर के हाकिम सुल्तान नाजुक (1541-52) ने मिर्जा हैदर को एक शक्तिशाली सेना के साथ 1547 में किश्तवाड़ पर हमला करने के लिए भेजा। कश्मीर की सेना मारवल दर्रा को पार करके काशीर खोल नाला के पास पहुँच गई। वहाँ से उसे एक तंग पहाड़ी मार्ग से गुजरना था। जब कश्मीर की सेना उस रास्ते से गुजरने लगी तो किश्तवाड़ की एक वीरांगना कोकी देवी जो कुल ग्राम की थी अपने हाथ में भाला पकड़ कर चट्टान की ओट में छुप कर शत्रु सैनिकों की प्रतीक्षा करने लगी। वह स्थान ही ऐसा था जहाँ की जानकारी दूसरे व्यक्ति तक नहीं पहुँचती थी। अत: जैसे ही शत्रु सेना के जवान एक-एक कर के पहाड़ चढ़ने लगे, कोकी देवी अपने भाले से उन का संहार करके उन्हें नदी में फैंकने लगी। इस प्रकार उसने कोका मीर सहित पच्चीस सैनिकों का वध अपने हाथों से किया। कश्मीर की सेना को जब यह पता चला कि उन के सैनिकों का वध हो रहा है तो वे वहाँ से भाग गए।

भागती हुई कश्मीरी सेना का वजीर नारायण पाडियार ने पीछा किया और शत्रु को बहुत क्षतिं पहुँचाई। इस के बाद हैदर मिर्जा ने किश्तवाड़ को जीतने का विचार छोड़ दिया और वह कश्मीर चला गया। जिस स्थान पर मुगल सेना का संहार हुआ था वह

स्थान बाद में 'मुगल मज़ार' के नाम से प्रसिद्ध हुआ।

इतिहासकार फरिश्ता ने कश्मीर से आई मुगलसेना की पराजय का कारण तूफान माना है और लिखा है कि अचानक तूफान आ जाने के कारण कश्मीर की सेना की पराजय हुई।

राजा जयसिंह ने 1525 से लेकर 1550 तक राज्य किया। उसके देहावसान के बाद विजय सिंह राजा बना जिसने बीस वर्ष राज्य किया। उसने सिराज का इलाका और स्थानीय राणाओं को पराजित करके उन को उस क्षेत्र से भगा दिया। 1570 में उसके विरोधी राणाओं ने एक षड्यन्त्र में उसकी हत्या कर दी। उस के देहान्त के बाद उसका बेटा बहादुर सिंह इस राज्य का राजा बना।

राजा बहादुर सिंह—इस राजा ने अनुमानतः 1570 को राजगद्दी प्राप्त की। इसे राजा बने हुए अभी दो ही वर्ष हुए थे कि कश्मीर के शासक अलीशाह चक ने किश्तवाड़ पर आक्रमण किया। बहादुर सिंह को विवश होकर कश्मीर के राजा की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। उसे अपनी लड़की शंकर देवी का विवाह अलीशाह चक के पोते याकूवशाह चक से इस आशय से किया कि कश्मीर और किश्तवाड़ के राजवंशों में वैमनस्य कम हो और वे एक दूसरे के निकट आयें। बहादुर सिंह का दामाद याकूब शाह चक 1586 में कश्मीर का शासक बना। उसके शासनकाल में मुगलों ने कश्मीर पर हमला किया। याकूब ने मुगलों का डट कर मुकाबला किया किन्तु अन्त में उन से परास्त हो कर किश्तवाड़ भाग गया। उसने किश्तवाड़ में सेना गठित की और मुगलों से दो वर्ष तक गोरिल्ला लड़ाई करता रहा। अन्त में मुगल सेनापति कासिम खान ने उस को पकड़ कर दिल्ली भेज दिया। यहाँ मुगल सम्राट अकबर ने उसे बन्दी बना कर रखा। याकूब की पत्नी शंकरी देवी किश्तवाड़ में अपने पिता के पास आ गई और यहाँ उसने अपने पति की स्मृति में कई धर्मार्थ कार्य किये जिन में नहरों का निर्माण विशेष रूप से उल्लेखनीय है।

बहादुरसिंह की मृत्यु अनुमानतः 1588 में हुई।

राजा प्रताप सिंह—प्रताप सिंह, भूप सिंह के नाम पर अनुमानतः 1588 में किश्तवाड़ की राजगद्दी पर बैठा। उसके शासनकाल में मुगल-सम्राट् जहांगीर ने 1606 के लगभग मुगल सेना किश्तवाड़ पर आक्रमण करने के लिए इस लिए भेजी कि चक वंश का एक उत्तराधिकारी गोहर कश्मीर से भाग कर किश्तवाड़ में आकर छुपा हुआ था। मुगल-सम्राट् ने किश्तवाड़ के राजा को जब गोहर को उसे सौंपने का फरमान भेजा तो राजा ने उस पर ध्यान ही नहीं दिया और गोहर को अपने संरक्षण में रखा। अन्ततः मुगलसेना जब सिंहपुर के निकट पहुँची तो किश्तवाड़ की सेना ने पहाड़ी शिखर से उस

पर इतने पत्थर बरसाये कि मुगल सेना का एक सेनानायक मिर्जा मुहम्मद खान कई सैनिकों के सहित वहीं मर गया। इस लड़ाई के बाद मुगल सेना वापिस लौट गई। जहाँगीर ने एक बार पुनः दिलवर खान के नेतृत्व में किश्तवाड़ को विनष्ट करने के लिए मुगल सेना भेजी जिस में दस हज़ार के लगभग सैनिक थे। मुगलसेना को आगे बढ़ने से रोकने के लिए भूपसिंह ने अपनी सेना को बन्दरकोट भेज दिया। वहाँ मुगलों और किश्तवाड़ के सैनिकों में भयंकर लड़ाई हुई। अन्ततः किश्तवाड़ की सेना नदी के पुल को तोड़ कर पीछे हट गई। मुगल सेना नदी पार न कर सकी। मुगल सेना इस बार वापिस नहीं लौटी। उसने ब्रिंज बाघ में अपना शिविर लगा लिया और वहां अपनी सुरक्षा के लिए एक किला भी बनाया। अन्त में मुगल सेना ने स्थानीय लोगों को अपने पक्ष में करके उन की सहायता से नदी पर झूला पुल बनवाया और चार महीनों के बाद नदी पार करके किश्तवाड़ पर आक्रमण कर दिया। किश्तवाड़ का राजा इस बार मुगल सेना का मुकाबला न कर सका और वह भाग कर भद्रवाह चला गया। मुगल सेना ने किश्तवाड़ नगर को बहुत क्षति पहुँचाई। मुगल सेना किश्तवाड़ में तीन महीने रही और उसके बाद कश्मीर चली गई। मुगल सेना के जाने के बाद भूपसिंह किश्तवाड़ वापिस लौट आया और फिर वहीं उस की 1616 में मृत्यु हुई।

राजा गौड़ सिंह–किश्तवाड़ की गद्दी पर जब 1616 में राजा गौड़ सिंह बैठा तब किश्तवाड़ का आर्थिक ढांचा टूट चुका था। मुगल दरबार की ओर से नियुक्त हाकम नसरुल्ला अरब किश्तवाड़ के लोगों पर अत्याचार कर रहा था और उन की सम्पत्ति को क्षति पहुँचा रहा था। उस से तंग आकर स्थानीय लोगों ने राजा गौड़ सिंह के नेतृत्व में उसके सेना शिविर पर हमला करके उस का और अन्य मुगल सैनिकों का वध कर दिया।

मुगल सम्राट् जहाँगीर को जब इस घटना का पता चला तो उसने कश्मीर के हाकिम दिलावर खान को सेना लेकर किश्तवाड़ पर आक्रमण करने के लिए भेजा। दिलावर खान ने अपनी सेना को तीन भागों में विभाजित किया और किश्तवाड़ को तीन ओर से घेर लिया। थोड़ी लड़ाई के बाद किश्तवाड़ के राजा गौड़ सिंह ने पराजय मान ली। दिलावर खान ने उसे बन्दी बनाकर मुगल दरबार में भेज दिया। वहाँ वह एक वर्ष रहा। वहाँ उसने मुगलों की अधीनता स्वीकार की और अपनी आय का 1/16 हिस्सा नज़राना के रूप में मुगलों को देना स्वीकार किया। जिन दिनों शाहजहाँ मुगल सम्राट् बना उसने गौड़ सिंह को मुक्त कर दिया। गौड़ सिंह ने किश्तवाड़ में लौट आने के बाद इस घटना की स्मृति में किश्तवाड़ के राज महल में एक ड्योढ़ी बनाई जो 27 फुट लम्बी और 18 फुट चौड़ी थी। उसने बन्दर कोट में अपने रहने के लिए नये महल बनवाये। 1629 में गौड़ सिंह की मौत हुई और उसके बाद जगत सिंह किश्तवाड़ का राजा बना।

राजा जगत सिंह—राजा जगत सिंह ने किश्तवाड़ की राजगद्दी पर बैठने के कुछ समय बाद भद्रवाह पर आक्रमण किया। बल्लपुर के राजा भूपतपाल को जब यह सूचना मिली कि इस समय किश्तवाड़ की सेना भद्रवाह में है, तो उसने किश्तवाड़ पर हमला करके उस पर अधिकार कर लिया। राजा जगत सिंह को जब किश्तवाड़ पर आक्रमण की सूचना मिली तो वह वापिस लौटा किन्तु लड़ाई में लड़ता हुआ मारा गया। भूपतपाल ने कंठक को किश्तवाड़ का हाकम नियुक्त किया और वहाँ से नीलकंठ का शालिग्राम लेकर बसोहली लौट आया। राजा जगत सिंह की मृत्यु सम्भवत: 1642 में हुई।

राजा भगवान सिंह—भगवान सिंह राजा गौड़ सिंह का छोटा बेटा था। मुगल दरबार ने जब गौड़ सिंह को मुक्त किया तो उसके बेटे भगवान सिंह को जमानत के रूप में अपने दरबार में रखा।

भगवान सिंह को जब अपने भाई जगत सिंह की मृत्यु का समाचार मिला तो उसने मुगल सम्राट् से एक हज़ार सैनिकों का एक दल अपने साथ लिया और किश्तवाड़ पर आक्रमण करके कंठक का वध कर दिया।

राजा भगवान सिंह ने 1661 तक राज्य किया। उसने रामवन का क्षेत्र जीत कर किश्तवाड़ के साथ मिलाया।

महासिंह—इस राजा को किश्तवाड़ में एक विद्वान तथा धर्मात्मा के रूप में पूजा जाता है। यह उच्चकोटि का कवि तथा दार्शनिक था। इस ने अपने शासनकाल में मुसलमानों को विशेष सुविधाएँ दीं और किश्तवाड़ में मस्जिद का निर्माण करवाया।

राजा जयसिंह—जयसिंह 1674 में किश्तवाड़ का राजा बना। उसने अपने भाई राम सिंह को अपना वजीर बनाया। उस का एक और छोटा भाई श्रीधर सिंह भी था, उसे राजा ने अपना सेनापति नियुक्त किया।

इस राजा के शासनकाल में एक मुसलमान संत सैय्यद मुहम्मद फरीद-उ-द्दीन कादिरी किश्तवाड़ आया। वह बगदाद का रहने वाला था। राजा जयसिंह इस संत का अनुयायी बन गया। उसने इस्लाम धर्म में दीक्षा ली और अपना नया नाम बख्तियार खान रखा।

राजा कीरतसिंह—जयसिंह के देहान्त के बाद 1681 में कीर्ति सिंह या कीरत सिंह किश्तवाड़ का राजा बना। उसका बाप इस्लाम धर्म स्वीकार कर चुका था। अत: कश्मीर के हाकिम ने भी उसे इस्लाम धर्म में दीक्षा लेने के लिए दबाव डाला। किन्तु वह मुसलमान बनने को तैयार नहीं हुआ। उस का चाचा रत्न सिंह मुसलमान बन चुका था और उस का नया नाम दिनदार खान था। उसने मुगल सम्राट् औरंगजेब से अनुरोध किया

कि वह कीरत सिंह को आदेश दे कि या तो वह मुसलमान बन जाए या गद्दी छोड़ दे क्योंकि उस का बाप मुसलमान बन चुका था। अन्त में कश्मीर के हाकिम ने राजा कीरत सिंह को श्रीनगर बुलाया और ईद के दिन 1687 को शाह हमदान जयारत में उसे विधिवत मुसलमान बना दिया। उस का नया नाम 'सादत यार खान' रखा गया।

किश्तवाड़ के लोगों को जब यह सूचना मिली कि उन के राजा कीरत सिंह को औरंगजेब ने बलपूर्वक मुसलमान बनाया है, तो उन्होंने बावा तुलसीगिर के नेतृत्व में मुगलों के विरुद्ध विद्रोह कर दिया जिसे अन्ततः कश्मीर से मुगल सेना ने आकर दबा दिया।

राजा कीरत सिंह मुसलमान बनने के बाद जब किश्तवाड़ आया तो उसे धर्म परिवर्तन करने के कारण बहुत ही आत्मग्लानि हुई। किश्तवाड़ के लोगों ने भी उसे स्वीकार नहीं किया जब वह भ्रमण करने के लिए गुलाब बाग की ओर गया हुआ था तो एक ठाकुर सरदार कृष्णा पाडियार ने उस का वध कर के किश्तवाड़ पर अधिकार कर लिया। किन्तु 1728 में अनायतउल्ला ने उस का वध करके किश्तवाड को उस से मुक्त करवा लिया।

राजा अमलूक सिंह–अमलूक सिंह सादतमंद खान के नाम से किश्तवाड़ की गद्दी पर 1728 में बैठा। उसने 43 वर्ष राज्य किया और 1771 में उस की मृत्यु हुई।

राजा मेहर सिंह–यह राजा सेदमंदखान के नाम से किश्तवाड़ की गद्दी पर 1771 में बैठा। उस के शासनकाल में बसोहली के राजा विजयपाल (1776-1806) ने किश्तवाड़ पर आक्रमण किया और राजा मेहर सिंह उस के आगे टिक न सका और कश्मीर भाग गया। विजयपाल ने किश्तवाड़ पर अधिकार कर लिया। चम्बा के राजा जय सिंह को जब यह पता चला कि मेहर सिंह भाग गया है तो उसने बारह हज़ार सैनिकों का एक दल अपने साथ लिया और किश्तवाड़ से विजयपाल के सैनिक को भगा दिया। किन्तु विजयपाल के सैनिक भागते-भागते किश्तवाड़ के महल और भवनों को जला कर राख कर गए। इस से किश्तवाड़ को बहुत क्षति पहुँची।

किश्तवाड़ का राजा मेहर सिंह कश्मीर में कुछ समय रहा। उसने वहाँ के हाकम से सेना का एक दल लिया और किश्तवाड़ की ओर आ गया। मेहर सिंह के भाई सुजान सिंह ने भी जम्मू से फौज ली और किश्तवाड़ को चम्बा के राजा से खाली करवा लिया।

राजा सुजान सिंह–राजा मेहर सिंह की मृत्यु के बाद उसके भाई सुजान सिंह ने छल और बल से 1782 में किश्तवाड़ की गद्दी पर अधिकार कर लिया। सुजान सिंह केवल दस महीने ही प्रशासन चला सका। उस की मृत्यु के बाद दरबारियों ने मेहर सिंह के संदिग्ध पुत्र पृथ्वी सिंह को गद्दी पर बैठाया। किन्तु अभी उसे गद्दी पर बैठे छह महीने

भी नहीं हुए थे कि मेहर सिंह के बेटे अजीत सिंह ने उसे चन्द्रभागा में डुबो दिया और स्वयं राजा बन गया। किन्तु बाद में किश्तवाड़ के सरदारों के अनुरोध पर महाराजा रणजीत देव ने किश्तवाड़ की गद्दी अनायत-उल्ला सिंह को प्रदान की।

राजा अनायत-उल्लाह सिंह—अनयात-उल्ला 1785 में किश्तवाड़ का राजा बना। वह राजा सुजान सिंह का बेटा था और जम्मू में महाराजा रणजीत देव के दरबार में धरोहर के रूप में रहता था। उसने किश्तवाड़ में आते ही नूर-उ-द्दीन को अपना दीवान बनाया और शासन चलाने लगा। किन्तु उस के दीवान ने उस के साथ विश्वासघात किया। उसने राजा के चचेरे भाई गुलाब सिंह के कहने पर राजा को विष दिया जिस से राजा मर गया। राजा की मृत्यु के बाद गुलाब सिंह गद्दी पर बैठा किन्तु लोगों के विद्रोह के कारण उसे गद्दी छोड़नी पड़ी। अन्ततः अनायत-उल्ला सिंह का बेटा तेग सिंह किश्तवाड़ की गद्दी पर बैठा।

राजा मुहम्मद तेग सिंह—तेग सिंह 1786 में किश्तवाड़ का राजा बना। उसके शासनकाल में कश्मीर के हाकम नवाब अब्दुल्ला खान ने अहमद शाह दुरानी से अपने सम्बन्ध तोड़ लिये और स्वयं को कश्मीर का शासक घोषित किया। उसने दुरानी की सेना को मुंह तोड़ जवाब देने के लिए तेग सिंह से भी सैनिक सहायता माँगी। तेग सिंह ने एक सैनिक दल दलीपू के नेतृत्व में कश्मीर भेजा जो अपना अभियान पूरा कर के किश्तवाड़ लौट आया। तेग सिंह ने भी कश्मीर के नवाब से भद्रवाह पर आक्रमण करते समय सहायता माँगी। कश्मीर के हाकम ने खुदा दोस्त के नेतृत्व में एक सैनिक टुकड़ी किश्तवाड़ भेजी। किश्तवाड़ और कश्मीर की सेना ने वजीर दलपत के नेतृत्व में भद्रवाह पर आक्रमण किया। भद्रवाह के हाकम वजीर नत्थु ने इस सेना का बड़ी वीरता से मुकाबला किया किन्तु वह अधिक देर टिक न सका और उसने आत्मसमर्पण कर दिया। किश्तवाड़ की सेना ने भद्रवाह को लूटा, नत्थू से बीस हज़ार रुपये वसूल किये और किश्तवाड़ लौट आई। राजा तेग सिंह ने इस विजय का श्रेय वजीर लखपत को दिया। उस ने उसे पुरस्कार के रूप में भुंजवाह की जागीर दी।

राजा तेग सिंह ने किश्तवाड़ के गौरव को बढ़ाने के लिए पुनः उन इलाकों को हस्तगत किया जो उस के पूर्वजों के हाथ से निकल चुके थे। उसने डांग, सिराज, मरवा और बनिहाल के क्षेत्र के अतिरिक्त पाडर को भी पुनः हस्तगत किया और अपने राज्य की सीमाओं को सुदृढ़ किया। उसने अपनी प्रजा को कुशल प्रशासन देने के लिए दो वजीर नियुक्त किये। उसके एक वजीर का नाम लखपतराय था और दूसरे का ख्वाजा भूंजा था। वह वजीर गुलाब सिंह का बेटा था। उसने वजीर बलिराम को महत्वपूर्ण पद दिया। उसने मेहता अमरु को नागरिक और सैनिक मामलों का मंत्री बनाया। राजा ने बख्शी नन्दराम, बख्शी चेतराम, रामू पाडियार तथा उत्तम पडियार को भी ऊंचे पद प्रदान

किए। इससे उस के प्रशासनिक कार्यों में सक्रियता आ गई। राजा ने मौलवी हाफिजुल्ला, काज़ी अज़ीज़-उल्लाह, बहाउद्दीन को भी महत्वपूर्ण पद प्रदान किये। उस के कार्यों से उस की जनता प्रसन्न थी।

किन्तु उसके शासनकाल में एक ऐसी घटना घटी जो उसके लिए विपदा और आपदा का कारण बनी। उसके समय में शाह शुजा-उल मुल्क काबुल से भागकर पंजाब केसरी महाराजा रंजीत देव की शरण में आया। पंजाब के महाराजा ने उस की बहुत आव-भगत की और उसे प्रत्येक प्रकार की सुख-सुविधा प्रदान की। किन्तु शाह शुजा को जब यह सन्देह हुआ कि महाराजा उससे कोहेनूर हीरा लेना चाहता है तो वह लाहौर से छद्म वेश में भाग आया और स्यालकोट, जम्मू, राजौरी का भ्रमण करता हुआ किश्तवाड़ पहुँच गया यहाँ राजा तेग सिंह ने उस का भव्य स्वागत किया।

शाह शुजा ने किश्तवाड़ में एक सेना गठित की और किश्तवाड़ के राजा की सहायता से कश्मीर पर आक्रमण कर दिया। कश्मीर के हाकम मुहम्मद अज़ीम खान ने शाह शुजा को लड़ाई में पराजित करके कश्मीर से भगा दिया। शाह शुजा हारने के बाद पुनः किश्तवाड़ आ गया।

पंजाब केसरी को जब यह पता चला कि शाह शुजा कश्मीर से पराजित होने के बाद किश्तवाड़ में है तो उसने तेगसिंह को आदेश दिया कि वह शाह शुजा को उसके दरबार में प्रस्तुत करे। किन्तु तेग सिंह ने रंजीत सिंह का आदेश नहीं माना और शाह शुजा को किश्तवाड़ से भगा दिया। महाराजा रंजीत सिंह को जब यह सूचना मिली कि शाह शुजा भाग गया है तो वह तेग सिंह पर बहुत नाराज़ हुआ। उसने राजा गुलाब सिंह को आदेश दिया कि वह किश्तवाड़ पर आक्रमण कर दे।

राजा गुलाब सिंह बड़ा ही नीतिज्ञ और होशियार था। उसे किश्तवाड़ की भौगोलिक स्थिति का पता था वह जानता था कि किश्तवाड़ को जीतना सहज नहीं है। अतः उसने कूटनीति से काम लिया। उसने राजा तेग सिंह के मन में वजीर लखपत के विरुद्ध एक जाली पत्र लिखकर सन्देह पैदा किया। सन्देहशील राजा ने अपने आदमियों से वजीर पर जब घातक हमला करवाया तो उस में वजीर तो बच गया किन्तु उसकी निष्ठा राजा के प्रति समाप्त हो गई। वह किसी प्रकार जम्मू जा पहुँचा। उसने राजा गुलाब सिंह का किश्तवाड़ पर विजय प्राप्त करने का मार्ग प्रशस्त किया।

राजा गुलाब सिंह ने पुनः कूटनीति से काम लिया। उसने राजा को डोडा में मंत्रणा के लिए बुलाया। राजा डोडा पहुँचा तो गुलाब सिंह ने उसे बन्दी बना कर जम्मू भेज दिया और उस की अनुपस्थिति में बिना किसी विरोध के 1820 में किश्तवाड पर अधिकार कर लिया।

राजा तेग सिंह को गुलाब सिंह ने कुछ समय के बाद मुक्त कर दिया। वह सीधा लाहौर गया और महाराजा रंजीत सिंह से मिला और उससे प्रार्थना की कि वह उसका राज्य उसे लौटा दे। महाराजा ने उसे आश्वासन दिया कि वह ऐसा ही करेगा। किन्तु 1823 में तेगसिंह के ही एक कर्मचारी ने उसके खाने में विष मिलाया जिसके कारण उस की मृत्यु हो गई।

राजा तेग सिंह के तीन बेटे थे जिन के नाम जैमल सिंह, जोरावर सिंह और दिलावर सिंह थे। जोरावर सिंह शाहशुजा के साथ चला गया और बाद में वह ईसाई बना। वह किश्तवाड़ भी वेश बदल कर आया, यहाँ उसे पहचान लिया गया। सरकारी अधिकारियों ने उसे पकड़ कर जम्मू भेज दिया। वह कई वर्ष जम्मू किले में रहा। जब उसे मुक्त किया तो वह फकीर बन कर घूमने लगा। 1870 में उसकी मृत्यु हुई।

जैमल सिंह और दिलावर सिंह जिला कांगड़ा के अन्तर्गत तिलोकपुर आ गए। जैमल सिंह नि:सन्तान मरा और दिलावर सिंह के वंशज अब भी वही रहते हैं।

सदियों पुराने किश्तवाड़ के इस राजवंश का पतन इस प्रकार 1820 में हुआ। किन्तु इन राजाओं के किले और महल लोगों को आज भी इन की याद दिलाते हैं।



परचोत्स (पुंछ)

परचोत्स पर्वतीय क्षेत्र का प्राचीनतम राज्य माना जाता है। दन्तकथाओं में कहा जाता है कि इस राज्य का संस्थापक पुलस्त्य नाम का एक ऋषि था। पुलस्त्य से ही बिगड़ कर इस का नाम पुंछ पड़ा। कश्मीरी भाषा में आज भी इसे प्रोनस ही कहा जाता है। एक अन्य दन्त कथा में कश्मीर के एक शासक पुरुषसेन को इस राज्य का संस्थापक कहा गया है किन्तु स्थानीय इतिहासकार खुशदेव मैनी के मतानुसार इस का आदि नाम अभिसारप्रस्त था, बाद में अभिसार शब्द तो लुप्त हो गया और प्रस्त शब्द से पुंछ शब्द का विकास हुआ। सुखदेव मैनी का मत अधिक सशक्त है। डॉ० सुखेदव सिंह चाड़क का मत भी यही है कि आदि काल में जिस प्रदेश को दार्वअभिसार कहते थे वह राजौरी और पुंछ का ही क्षेत्र था।

'परचोत्स' इतिहासकारों के अनुसार पाँचवीं शताब्दी से भी पूर्व का राज्य है। सातवीं शताब्दी में चीनी पर्यटक ह्यूनसांग ने भी इस इलाके की यात्रा की थी और इसे बुद्ध-मतावलम्बी कहा था। कल्हण कृत राजतरंगिणी के अनुसार 850 ई० में इस क्षेत्र का राजा नर था, जो घोड़ों का पारखी था। कश्मीर नरेश ललितादित्य (715-752 ई०) के समय में परचोत्स कश्मीर के अधीन था। ललितादित्य ने यहीं से गुजर कर उत्तर-भारत के कई राज्यों पर आक्रमण किये थे। राजतरंगिणी में भी ऐसा उल्लेख कई बार हुआ है जिस में परचोत्स को कश्मीर के राजाओं के अधीन एक करदाता राज्य कहा गया है। कारकोट राजाओं के समय में भी यह राज्य कश्मीर का एक भाग था।

किन्तु 870 ई० के बाद कश्मीर की गद्दी पर जब दुर्बल राजा सतारूढ़ हुए तो परचोत्स कश्मीर से अलग हो गया और नरवाहन नामक एक योद्धा ने यहाँ अपना राज्य स्थापित किया। नरवाहन् सुखदेव मैनी के अनुसार नर का बेटा था। इसने 883 ई० से लेकर 902 तक राज्य किया।

उस के देहावसान के बाद उसी के वंश के फल, सातवाहन, चन्द्र और हिन्दुराज ने शासन किया। इन का शासनकाल 902 ई० से लेकर 950 तक रहा। हिन्दूराज की मृत्यु के बाद उसका बेटा संघराज सन् 950 ई० में सिंहासनारूढ़ हुआ। उसने लोहरकोट को अपनी राजधानी बनाया।

राजा संघराज—कल्हण ने राजतरंगिणी में संघराज की तुलना इन्द्र से करके उसे वीर योद्धा और अदम्य उत्साही लिखा है। संघराज ने राजा बनते ही सीमावर्ती क्षेत्रों में कई नये दुर्गों का निर्माण करवाया। उसने पुंछ और कश्मीर के व्यापार को बढ़ावा देने के

लिए मार्ग को सुविधाजनक बनाया और व्यापारियों के आवास के लिए सरायें निर्मित कीं। उस ने अपने राज्य का विस्तार किया और प्रशासन को गतिशील बनाया। संघराज ने अपनी पुत्री दिद्दा का विवाह कश्मीर नरेश से किया इस से कश्मीर का राजवंश इस के निकट आ गया। कश्मीर के राजा की मृत्यु के बाद संघराज की बेटी दिद्दा जब कश्मीर की शासिका बनी तो उसने अपने मायके के लोगों को बहुत अधिक महत्व दिया।

राजा संघराज ने 950 से लेकर 958 तक राज्य किया। उस के देहावसान के बाद उस का बड़ा बेटा विग्रहराज लोहरकोट का राजा बना।

विग्रहराज–विग्रहराज जब लोहर कोट का राजा बना तब कश्मीर की राजनीति में बहुत उतार चढ़ाव आ रहा था। उसी वर्ष कश्मीर में उसके बहनोई राजा गुप्त की मृत्यु हुई और उसके बाद उस का भांजा अभिमन्यु कश्मीर का राजा बना। 972 में अभिमन्यु भी मर गया तो उसका पुत्र नन्दी गुप्त कश्मीर का राजा बना। उसने भी केवल एक ही वर्ष राज्य किया। तदुपरान्त वह भी मर गया। फिर उस का भाई भीमगुप्त राजा बना और वह भी 980 में मर गया। इस के बाद दिद्दां कश्मीर की निरंकुश शासिका बन गई। उसने बुद्दल के एक गडरिये तुंग को अपने प्रशासन में बहुत ऊंचा पद दिया। तुंग ने जब कश्मीर और पड़ोसी राज्यों में बहुत उत्पात मचाया तो स्थानीय लोगों के अनुरोध पर विग्रह राज कश्मीर गया और वहाँ स्थिति सामान्य देख कर वापिस लौट आया।

रानी दिद्दा ने कश्मीर का उत्तराधिकारी अपने भतीजे संग्राम राज को बनाया। संग्राम राज विग्रहराज का भी भतीजा था। 1003 ई॰ में जब दिद्दा का देहान्त हो गया तो वह कश्मीर की राजगद्दी पर बैठा। इस से लोहरकोट के राज परिवार के अधिकार में कश्मीर का राज्य भी आ गया। इन दोनों राज्यों ने अपनी सुरक्षा के लिए शक्तिशाली सेना का गठन किया।

राजा विग्रहराज के शासनकाल में ही महमूद गजनवी ने 1014 में नगर कोट को लूटने के बाद कश्मीर पर पुंछ के मार्ग से आक्रमण करने की योजना बनाई। वह अपने सैन्यदल के साथ पुंछ नदी के निकट तक पहुँच गया। कश्मीर के राजा संग्राम राज ने अपने सेनापति तुंग को महमूद गजनवी की सेना को आगे बढ़ने से रोकने के लिए भेजा। वह लोहरकोट के मार्ग से पुंछ में आया और उसने बिना सोच-विचार किये महमूद गजनवी की सेना पर आक्रमण कर दिया। किन्तु महमूद की सेना ने संगठित होकर जब उस पर प्रत्याक्रमण किया तो वह भाग कर लोहर कोट के दुर्ग में पहुँच गया।

लोहर कोट दुर्ग के निकट कश्मीर की सेना और महमूद गजनवी की सेना के मध्य प्रबल लड़ाई हुई। इस लड़ाई में गजनवी को पराजय का मुँह देखना पड़ा और वह 1015 ई॰ में कश्मीर को पुनः जीतने का संकल्प करके वापिस लौट गया। 1021 ई॰ में महमूद

ने कश्मीर पर पुनः चढ़ाई की किन्तु लोहर कोट में उसे पुनः पराजय का मुँह देखना पड़ा और वह लज्जित होकर पुनः वापिस लौट आया।

सन् 1028 में कश्मीर के राजा संग्राम पाल की मृत्यु के बाद उस का बेटा हरिराज कश्मीर का राजा बना। वह केवल 26 दिन ही राज्य करने के बाद मर गया। उसके बाद उस का बेटा अनन्त कश्मीर की गद्दी पर बैठा। वह अल्पव्यस्क था। अतः उसकी माता श्री लेखा उस की संरक्षिका बनी। विग्रहराज को श्री लेखा का संरक्षिका बनना अच्छा न लगा, अतः उसने कश्मीर पर आक्रमण करके उस पर अधिकार करने का प्रयास किया। किन्तु कश्मीर के सेनापति नाग ने एक मठ के निकट उस का वध करके उस की सेना को घाटी से भगा दिया। विग्रहराज की मृत्यु के बाद कुश्तीराज लोहर कोट का राजा बना।

कुश्तीराज–कुश्तीराज 1030 के लगभग लोहर कोट का राजा बना। वह एक नीतिज्ञ, कुशल प्रशासक और महान योद्धा था। उसने राजपुरी पर आक्रमण करके उसे अपने अधीन किया। किन्तु कीर्तिराज ने उसके पुत्र भवनराज को अपने पक्ष में करके उससे राजा के विरुद्ध विद्रोह करवा दिया। इससे कुश्तीराज अपने पुत्र पर बहुत नाराज हुआ। उसने कश्मीर का राज्य अनन्तदेव के पोते उपकृष्ण को सौंपा और स्वयं तीर्थ यात्रा करने चला गया। मार्ग में चक्रधर स्थान पर उस की मृत्यु हुई।

उपकृष्ण–कुश्तीराज के बाद लोहरकोट में उपकृष्ण गद्दी पर बैठा। उसने अभी प्रशासन सम्भाला ही था कि कुश्ती राज के बेटे भवनराय ने नीलपुर के राजा कीर्तिराज से सहायता प्राप्त करके लोहर कोट पर आक्रमण कर दिया। उपकृष्ण ने कश्मीर की सेना की सहायता से उसके आक्रमण को असफल बना दिया। उन्हीं दिनों कश्मीर में भी सत्ता प्राप्त करने के लिए उपकृष्ण के पिता कलश ने अपने पिता अनन्त के विरुद्ध–विद्रोह किया। अनन्त कलश के विद्रोह का दमन करने में सफल न हुआ और कलश ने अपने बाप को गद्दी से हटा दिया और स्वयं कश्मीर का शासक बन गया।

राजा कलश के पाँच बेटे–हर्ष, उपकृष्ण, उच्चल, सुस्सल और सहन थे। इन भाईयों में भी कश्मीर की गद्दी प्राप्त करने के लिए संघर्ष हुआ। इस संघर्ष में उपकृष्ण ने आत्महत्या कर ली और हर्ष कश्मीर का राजा बन गया। हर्ष ने अपने भाईयों को अपने रास्ते का कांटा समझ कर उन की हत्या की योजना बनाई, किन्तु उन्हें उस योजना का पता चल गया। उच्चल भाग कर राजपुरी चला गया और सुस्सल ने कालंजर (मीरपुर-कोटली) में शरण ली।

उच्चल ने राजपुरी के राजा से सैनिक सहायता लेकर पहले लोहर कोट पर अधिकार किया। उन दिनों लोहरकोट कश्मीर का ही एक हिस्सा था और हर्ष ने कपिल को वहाँ का प्रशासक नियुक्त किया था। कपिल भी उच्चल के साथ मिल गया। सुस्सल

भी उच्चल की सहायता के लिए कलंजर के सेना लेकर आ गया। उच्चल ने सुस्सल की सहायता से कश्मीर पर प्रबल आक्रमण किया। आरम्भ में उसे विशेष सफलता न मिली किन्तु उसने पुनः सेना संगठित की और श्रीनगर को घेरे में ले लिया। उच्चल के सैनिकों ने 1101 ई० में हर्ष और उसके बेटे का बध करके उच्चल को गद्दी पर बैठा दिया। उच्चल ने अपने भाई सुस्सल को लोहरकोट का प्रशासक नियुक्त किया। सुस्सल लोहर कोट आ गया।

सुस्सल–सुस्सल 1101 ई० के लगभग लोहरकोट का शासक बना। उसे लोहर कोट आये हुए अभी दो वर्ष भी नहीं हुए थे कि कश्मीर के दरबारियों ने उसे कश्मीर पर हमला कर के उच्चल के स्थान पर कश्मीर का राजा बनने का प्रस्ताव भेजा। सुस्सल पहले ही महत्वाकांक्षी था। अतः वह अपनी सेना लेकर जैसे ही कश्मीर गया उच्चल ने उसे पराजित करके लोहर कोट भगा दिया। किन्तु सुस्सल फिर भी निरुत्साहित नहीं हुआ। उसने कश्मीर पर दूसरी बार और फिर तीसरी बार आक्रमण किया किन्तु उच्चल ने उसके आक्रमणों को विफल कर दिया। 1112 ई० में उसे उच्चल के मंत्री गर्गचन्द और सल्हण के कश्मीर पर आक्रमण करने के जैसे ही सन्देश मिले, उसने पुनः अपनी सेना के साथ कश्मीर की ओर प्रस्थान किया। इस बार कश्मीर की सेना ने उस का कोई विशेष अवरोध नहीं किया और वह कश्मीर पर अधिकार करने में सफल हो गया। उसने कश्मीर का राजा बनने के बाद भी लोहरकोट को अपने अधिकार में रखा और गर्गचन्द को उस का प्रशासक बना कर भेज दिया। सुस्सल ने 1112 से लेकर 1120 तक कश्मीर में राज्य किया।

1120 में हर्ष के पोते भिक्षाचारी ने पड़ोसी राजाओं की सहायता से कश्मीर पर हमला किया। कश्मीर की जनता ने भिक्षाचारी का साथ दिया, अतः सुस्सल भागकर लोहर कोट चला आया।

भिक्षाचारी ने कश्मीर का राजा बनते ही 1121 में सुस्सल को पकड़ने के लिए एक सेना भेजी। राजपुरी की सेना ने भी कश्मीर की सेना को सहयोग दिया। दोनों सेनाओं ने मिलकर सुस्सल पर आक्रमण किया। सुस्सल ने पुंछ नदी के निकट दोनों सेनाओं को पराजित कर के उन्हें लड़ाई के मैदान से भगा दिया।

सुस्सल ने कालंजर के राजा से सैनिक सहायता लेकर एक बार पुनः कश्मीर पर चढ़ाई की। इस बार वह सफल रहा। राजा भिक्षाचारी लड़ाई के मैदान से भाग गया और सुस्सल 1121 में कश्मीर का पुनः राजा बन गया। उसने इस बार 'भागक' नामक एक सेनानायक को लोहर कोट का प्रशासक नियुक्त किया और स्वयं कश्मीर में रह कर भिक्षाचारी के सहयोगियों को पकड़ कर उन्हें दंड देने लगा।

1128 में उसने कश्मीर की गद्दी पर अपने बेटे जयसिंह को बैठाया और स्वयं भिक्षाचारी की सेना से लड़ने के लिए पहाड़ों की ओर चला गया और वहीं भिक्षाचारी के सैनिकों ने उस की हत्या की।

प्रस्मन–जयसिंह ने 1128 में कश्मीर का राजा बनने के बाद अपने भाई प्रस्मन को पुंछ का राजा नियुक्त किया। प्रस्मन बड़ा ही विलासी निकला। लोगों ने उसके विरुद्ध विद्रोह करके लोथन को लोहर कोट की राजगद्दी पर बैठा दिया।

लोथन–1130 ई० में लोथन लोहरकोट का राजा बना। कश्मीर के राजा जयसिंह ने लोहरकोट पर पुन: अधिकार करने के लिए कश्मीर से सेना भेजी किन्तु लोथन ने राजापुरी के राजा की सहायता से कश्मीर की सेना को पराजित करके भगा दिया। लोथन ने इस लड़ाई के बाद 'सज्जी' नामक सेनानायक को अपना मंत्री बनाया। लोग सज्जी को पसंद नहीं करते थे, अत: उन्होंने लोथन के विरुद्ध-विद्रोह किया और उसके भतीजे मलार्जुन को लोहरकोट का राजा बना दिया।

मलार्जुन–यह राजा भी प्रस्मन की भांति अति विलासी सिद्ध हुआ। इसने लोहरकोट का अमूल्य कोश दोनों हाथों से लुटाया। लोथन ने सत्ता प्राप्त करने के लिए मलार्जुन पर कई हमले किये। किन्तु मलार्जुन उस से पराजित नहीं हुआ। उसे गद्दी से हटाने के लिए कश्मीर के राजा जयसिंह ने 'सज्जी' की सहायता ली। सज्जी की शक्ति के सन्मुख मलार्जुन टिक न सका और लोहरकोट का कोश अपने साथ लेकर लोहरकोट से भाग गया।

मलार्जुन के बाद हर्षित लोहरकोट का राजा बना। उसने 1132 से लेकर 1145 तक राज्य किया।

गल्हण–गल्हण कश्मीर के राजा जयसिंह का अल्पव्यस्क पुत्र था। वह प्राय: कश्मीर में ही रहता था। 1162 में कश्मीर का राजा जयसिंह तुर्कों के साथ लड़ता हुआ मारा गया तो कश्मीर की गद्दी पर उसका बड़ा बेटा प्रणु बैठा। किन्तु लोहर कोट के राजा गल्हण का अन्त कब और कैसे हुआ इस का कोई व्योरा इतिहास की पुस्तकों में नहीं मिलता है। अनुमान है कि गल्हण के बाद यह राज्य पुन: छोटे-छोटे राज्यों में विभाजित हो गया होगा जिन के प्रमुख कबीलों के सरदार रहे होंगे। कश्मीर के इतिहास में यह उल्लेख मिलता है कि 1316 ई० में कश्मीर के सुलतान कुतुबद्दीन ने लोहर कोट को जीतने के लिए अपने मंत्री लोलट को भेजा था, किन्तु वह सफल नहीं रहा।

लोहरकोट के मुस्लिम शासक

कश्मीर के इतिहास का अवलोकन करने से विदित होता है कि सुलतान कुतुबद्दीन के बाद इस क्षेत्र पर अधिकार करने के लिए हाजीखान ने 1452 ई० में हमला किया था

और उसे आंशिक सफलता मिली। हाज़ी खान कश्मीर के सुलतान जैन-अल्ला-उ-द्दीन का बेटा था। बाद में जैन अल्ला-उ-द्दीन स्वयं सेना लेकर इस इलाके में आया और उसने इस पूरे इलाके पर अधिकार कर लिया। सुलतान ने राजापुरी और नौशहरा का इलाका भी इसी के साथ सम्मिलित किया और हाज़ी खान को इस पूरे इलाके का हाकम नियुक्त किया।

हाजी खान–हाकम बनने के बाद हाजी खान ने कश्मीर पर हमला करके अपने बाप की गद्दी पर बैठने की कल्पना की। उसे डर था कि उस का बाप कहीं उस के बड़े भाई आदमखान को अपना उत्तराधिकारी न बना दे। अतः वह राजापुरी की सेना को भी अपने साथ लेकर बैरमगला के मार्ग से कश्मीर पहुँच गया। उसने अपने बाप के विरुद्ध बगावत की घोषणा करके कश्मीर पर हमला कर दिया। किन्तु सुलतान ने तोपखाने का प्रयोग करके हाजी खान को घाटी से भगा दिया।

सुलतान ने हाज़ी खान की गतिविधियों पर अंकुश रखने के लिए अपने बड़े बेटे आदमखान को कामराज के इलाके का हाकम बनाया। हाजी खान और कामराज की सेनाओं में पहाड़ी क्षेत्र में टकराव चलता रहा।

सुलतान के बड़े बेटे आदमखान ने भी जब सुलतान के विरुद्ध बगावत की तो सुलतान ने हाजी खान को लोहरकोट से बुला लिया और उसके स्थान पर हाजी खान के बेटे हस्नखान को लोहरगढ़ का प्रशासक बनाया।

हसनखान–हसनखान 1457 में लोहरकोट का शासक बना। उसने अपने बाप हाजीखान की कश्मीर का सुलतान बनने में बड़ी सहायता की। वह लोहरकोट से एक प्रबल सेना लेकर कश्मीर आया। उसने आदमखान को घेरे में लेकर उस पर आक्रमण किया। आदमखान बड़ी कठिनाई से अपने प्राण बचाकर राजपुरी की ओर भाग गया। 1472 ई॰ में हस्नखान अपने बाप के देहान्त के बाद कश्मीर का सुलतान बन गया और उसने जहाँगीर मागरे को लोहरकोट का प्रशासक नियुक्त किया।

जहाँगीर मागरे–जहांगीर मागरे हस्न खान का विश्वास पात्र सेना नायक था। वह अभी लोहरकोट पहुँचा ही था कि सुलतान हस्न शाह का देहावसान हो गया। सैय्यद मुहम्मद शाह ने हस्न खान के सात वर्षीय पुत्र मुहम्मद शाह को कश्मीर का सुलतान बनाया और स्वयं उसका संरक्षक बनकर प्रशासन चलाने लगा।

किन्तु जैन-अल्लाउद्दीन के बड़े बेटे आदमखान के पुत्र फतहेखान ने जो राजपुरी में रहता था, जहांगीर मागरे के विरुद्ध जनमत इकट्ठा किया और 1505 में कश्मीर पर अधिकार कर लिया। हस्न खान का पुत्र मुहम्मद शाह जो उस समय कश्मीर का सुलतान

था, वह भाग कर पंजाब चला गया। उस की अनुपस्थिति में उसके एक मंत्री मलिक काजी ने लोहरकोट पर अधिकार कर लिया।

मुहम्मद शाह पंजाब के नवाब सिकन्दर लोधी से सैनिक सहायता लेकर पुनः कश्मीर आया और उसने फतेहखान को पराजित कर के कश्मीर पर पुनः अधिकार कर लिया। सन् 1528 में मुहम्मद शाह का पुत्र इब्राहीम स्वयं कश्मीर का सुलतान बन गया और उसने मुहम्मद शाह को लोहर कोट के किले में कैद कर लिया। अब्दुल बागड़ी जो जहांगीर मागरे का पोता था, मुहम्मदशाह की सहायता के लिए आगे आया। उसने 1530 में मुहम्मदशाह को लोहर कोट से मुक्त करवा कर उसे तीसरी बार कश्मीर का सुलतान बनाया। मुहम्मदशाह ने कश्मीर का सुलतान बनने के बाद मलिक काजी को लोहरकोट का हाकम नियुक्त किया।

मलिक काज़ी—मुहम्मद काज़ी लोहरकोट का हाकम बनने से पूर्व कश्मीर दरबार में उच्च-पदों पर रहा था। वह महत्वाकांक्षी था। वह पुनः कश्मीर की राजनीति में आना चाहता था, अतः वह सेना लेकर जब कश्मीर घाटी की ओर बढ़ा तो अब्दुल बागरी ने उसे पुनः लोहर कोट की ओर भागने के लिए विवश कर दिया।

सन् 1537 में मुहम्मदशाह का देहान्त हुआ तो उसके स्थान पर शमस कश्मीर का सुलतान बना। उसने अब्दुल बागड़ी को जब कोई ऊंचा पद न दिया तो वह लाहौर में गया और मिर्जा हैदर के साथ मिला। हैदर ने कश्मीर पर 1649 में आक्रमण किया और मिर्जा हैदर शमस को भगा कर स्वयं कश्मीर का सुलतान बन गया। उसने अब्दुल बागड़ी को अपना वजीर बनाया।

मलिक काज़ी ने जो लोहरकोट का शासक था, पुनः कश्मीर गया और उसने मिर्जा हैदर को लड़ाई में मार डाला। हैदर के बाद नाजुक शाह कश्मीर का सुलतान बना।

उन दिनों गाज़ी चक्क भी कश्मीर में अपनी कूटनीति के कारण ऊँचे पद पर पहुँच चुका था। उसने नाजुक शाह के स्थान पर सुलतान मुहम्मद शाह के पुत्र इब्राहीम शाह को पुनः कश्मीर का सुलतान बना दिया। लोहर कोट के हाकम फतेह चक्क ने इब्राहीम के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। किन्तु गाज़ी चक्क ने उसके विद्रोह को दबा दिया।

कश्मीर में जब भी कोई उथल पुथल हुई उस में लोहर कोट के हाकमों की सक्रिय भूमिका रही। उस समय में लोहर कोट कश्मीर का ही अंग बना रहा। सन 1563 में जब हुस्न चक्क कश्मीर का सुलतान बना या 1579 में मुहम्मद युसूफ शाह चक्क सुलतान बना, लोहरकोट पर उसका प्रभाव अवश्य पड़ा। 1585 में अकबर ने कश्मीर को अपने अधिकार में लेने के लिए भगवानदास को सेना देकर भेजा तो लोहर कोट के हाकम बहराम के सहयोग से ही भगवानदास कश्मीर पर अधिकार करने में सफल हुआ।

इस प्रकार कश्मीर की राजनीति में लोहरकोट की भूमिका बहुत ही महत्वपूर्ण रही और प्राय: लोहर कोट के ही हाकम कश्मीर के सुलतान या बजीर बने। यह क्रम मुगलों के कश्मीर में आगमन तक चलता रहा।

राजा सिराज-उल-दीन—तारीख अक्वाम पुंछ के अनुसार सिराज-उल-दीन का पूर्व नाम सुर्जन सिंह था। वह राठौर के राणा उदय सिंह का पोता था। एक मुस्लिम फकीर के आदेश पर उसने इस्लाम धर्म में दीक्षा ली। उसके परिवारजनों ने उसे तंग किया तो वह राजपूताना से भागकर पहाड़ों की ओर आ गया और कहूरा गाँव में रहने लगा। कहूरा के सरदार ज़ेब चौहान ने अपनी इकलौती बेटी का विवाह उससे कर दिया। जब ज़ेब चौहान मर गया तो सिराज-उल-द्दीन अपने कबीले का सरदार बन गया। सन् 1594 में मुगल सम्राट अकबर शाहज़ादा सलीम को साथ लेकर कहूटा के मार्ग से कश्मीर जा रहा था तो सिराज-उल-द्दीन ने सम्राट अकबर और सलीम का भव्य स्वागत किया। शाहज़ादा सलीम उसके व्यक्तित्व से बहुत ही प्रभावित हुआ। उसने मुगल-सम्राट अकबर से अनुरोध किया कि वह गुज्जर सरदार सिराज-उल-द्दीन को इस क्षेत्र का राज्य प्रदान करे। सम्राट् ने अपने शाहज़ादा की संस्तुति पर सिराज-उल-द्दीन को पुंछ का इलाका जागीर के रूप में दिया और उसे 'राजा' की पदवी भी प्रदान की।

सिराज-उल-द्दीन कहूटा से पुंछ क्षेत्र में आ गया। वह इस पूरे क्षेत्र में घूमा। उसे पुंछ का छोटा सा नगर बहुत पसंद आया। उसने लोहर कोट के स्थान पर इसी नगर को अपनी राजधानी बना लिया।

सिराज-उल-द्दीन ने पचास वर्ष तक पुंछ में राज्य किया। उसका देहान्त 1646 ई॰ में हुआ। उस की मृत्यु के बाद राजा फतह मुहम्मद खान पुंछ का राजा बना।

राजा फतह मुहम्मद खान—फतहखान जब राजा बना उस समय पुंछ क्षेत्र के कई कबीलों ने विद्रोह कर दिया जिन क़ा दमन इसे बड़ी कठोरता से करना पड़ा। इस राजा ने अपने राज्य की सीमाओं को उड़ी तक बढ़ाया और उड़ी तथा खख प्रदेश के राजाओं के साथ सीमा विवाद सुलझाये। 1700 ई॰ में कश्मीर कें मुगल हाकम जानू खान ने इस का दमन करने के लिए सेना भेजी। 1700 ई॰ में मुगल सेना के साथ लड़ता हुआ राजा फतह मुहम्मद वीर गति को प्राप्त हुआ।

राजा अब्दुल रज़ाक—फतह मुहम्मद खान के देहावसान के बाद अब्दुल रज़ाक 1701 में पुंछ का राजा बना। उसने पुंछ राज्य की सीमा को कोटली, भिम्बर तथा मीरपुर तक बढ़ाया। राजा ने पुंछ में एक किला बनवाया और पुराने महलों को नया रूप दिया। कश्मीर के मुगल हाकम मुहम्मद अली खान ने जब इसे तंग किया तो इस ने कश्मीर पर चढ़ाई की। किन्तु उस में इसे सफलता न मिली और पराजित होकर वापिस लौटना पड़ा।

इस का देहान्त 1747 में पुंछ में हुआ।

राजा मुह़म्मद ज़माल खान—ज़माल खान ने 1747 में राजा बनते ही कश्मीर के हाकम को सत्ता से च्युत करने के लिए पुंछ की सेना को कश्मीर घाटी में पहुँचा कर उपद्रव मचाया। हाकम ने पुंछ के राजा और उसके चार बेटों को लड़ाई के मैदान में मारने के बाद पुंछ की रियासत पर अधिकार कर लिया। तेरह वर्ष के बाद ज़मान खान के छोटे बेटे अली गौहर को पुंछ का राज्य बड़े संघर्ष के बाद प्राप्त हुआ।

राजा रुस्तम खान—अली गौहर ही रुस्तम खान के नाम से 1760 को पुंछ का राजा बना। यह राज़ा बहुत ही दयालु तथा न्याय प्रिय था। इसने पुंछ में सुख शान्ति और समृद्धि लाने का भरसक प्रयास किया। राजा ने ललित कलाओं को प्रोत्साहन दिया। इस के शासनकाल़ में व्यापार में बहुत बढ़ोत्तरी हुई। यह राजा सभी धर्मों के लोगों को समदृष्टि से देखता था, अतः इसे सभी चाहते थे। रुस्तम खान ने कश्मीर के हाकम के साथ अपने सम्बन्ध सुधारे और विद्रोहियों का दमन करने में उस की सहायता की। 28 वर्ष तक राज्य करने के बाद 1787 में लम्बी बीमारी के बाद राजा की मृत्यु हुई।

इस राजा ने पुंछ नगर का नाम बदलकर रुस्तम नगरी रखा। किन्तु राजा के देहान्त के बाद यह नाम नहीं चला।

राजा शहनाज़ खान—रुस्तम के देहान्त के बाद उसका बेटा शाहनाज़ खान 1787 ई॰ में पुंछ का राजा बना। वह भी अपने बाप के समान एक कुशल प्रशासक था। उसके शासन काल में राजापुरी के राजा करम-उल्लाह-खान ने पुंछ पर आक्रमण किया किन्तु शाहनाज़ ने उसे विफल कर दिया। शाहनाज़ खान 1792 में निःसन्तान मरा। दरबारियों ने करम-उल्लाह खान के बेटे अग्गर खान को पुंछ का राजा बनाया किन्तु पुंछ के लोगों ने उसे स्वीकार नहीं किया और उसे भागने पर विवश किया।

राजा खान बहादुर खान—अग्गर खान के पलायन के बाद पुंछ के लोगों ने राजा शहनाज़ खान के छोटे भाई खान बहादुर खान को पुंछ का राजा बनाया। उसने रुह्-उल्लाह खान को अपना वजीर बनाया।

कश्मीर के सूबेदार ने बहादुर खान को कश्मीर बुलाया। जब वह कश्मीर में सूबेदार के पास गया तो सूबेदार ने भोजन में विष मिलाकर इस राजा को मार डाला। खान बहादुर खान ने 1792 से 1798 ई॰ तक राज्य किया।

राजा अमीर खान—खान बहादुर खान की मृत्यु के बाद उसके मंत्री रूह-उल्लाह खान ने अपने बेटे अमीरखान को पुंछ की गद्दी पर बैठाया और स्वयं उस का वजीर बन कर प्रशासन चलाने लगा।

सिराज-उल-द्दीन वंश के एक सरदार राजा शेरवाज़ ने अमीरखान को राजा स्वीकार नहीं किया। उसने कश्मीर के हाकम से सैनिक सहायता लेकर राजा अमीर खान और उसके बाप को पुंछ से भगा दिया और स्वयं पुंछ का राजा बन गया।

रूह-उल्लाह खान भी शांत नहीं रहा। वह भी कश्मीर से सैनिक सहायता प्राप्त करने में सफल रहा। उसने शेर मुहम्मद खान को लड़ाई में पराजित करके पुंछ पर पुन: अधिकार कर लिया।

पंजाब के महाराजा रणजीत सिंह ने चिभाल (भिम्बर) के राजा को अपने अधीन करने के बाद कश्मीर पर अधिकार करने की योजना बनाई। इस के लिए उसे राजौरी और पुंछ के राजाओं के सहयोग की आवश्यकता थी। उसने इन दोनों राजाओं से सहयोग मांगा। राजौरी का राजा सहयोग देने के लिए मान गया किन्तु पुंछ के वजीर रूह-उल्लाह खान ने किसी भी प्रकार का सहयोग देने में अपनी असमर्थता व्यक्त की। महाराजा ने पुंछ के इस वजीर को अपने अधीन करने के लिए पुंछ के मार्ग से कश्मीर पर आक्रमण करने का निर्णय लिया।

महाराजा ने अपनी सेना का नेतृत्व स्वयं किया। उसने राजौरी में पहुँच कर अपनी सेना को तीन दलों में विभाजित किया। एक दल उस ने वुद्दल के मार्ग से कश्मीर भेजा। दूसरे दल का नेतृत्व राजपुरी के राजा ने किया। वह वरहाम गले से कश्मीर की ओर बढ़ा। तीसरे दल का नेतृत्व महाराजा ने स्वयं किया। वह अपना दल लेकर पुंछ की ओर बढ़ा। रूह-उल्लाह खान ने सब से पहले खालसा सेना पर स्वर्णकोट के स्थान पर हमला किया। किन्तु वह लड़ाई में अधिक देर टिक न सका और पहाड़ों की ओर भाग गया। खालसा सेना ने इस लड़ाई के बाद बहराम गले पर अधिकार कर लिया।

28 जून 1814 को खालसा सेना ने पुंछ नगर को भी घेर लिया। रुह-उल्लाह को पराजित किये बिना खालसा सेना तोश मैदान में पहुँच गई। यहाँ कश्मीर के हाकम मुहम्मद अज़ीम खान की फौज के एक दल से खालसा सैनिकों का टकराव हुआ। रूह उल्लाह खान के सैनिकों ने भी खालसा सेना पर तीखे प्रहार किये। मौसम भी विपरीत था। खालसा सेना को पीछे हटना पड़ा। 12 अगस्त 1814 को रंजीत सिंह अपने अभियान में असफल रहने के बाद लाहौर वापिस लौट आया।

महाराजा ने अपने अभियान की असफलता का कारण राजौरी के राजा उगर खान को समझा। महाराजा ने सरदार दिलसिंह को उग्गर खान का दमन करने के लिए राजौरी भेजा। उग्गर खान ने पुंछ के राजा अमीर खान से इस संकट के समय सैनिक सहायता मांगी। अमीर खान अपनी सेना लेकर जैसे ही राजौरी की ओर बढ़ा, खालसा सेना ने उसे घेर लिया। लड़ाई में अमीर खान की छाती में गोली लगी और वह मर गया। राजौरी का

राजा उग्गर खान राजौरी छोड़ कर कोटली भाग गया।

राजा मीर वाज़—अमीर खान के देहान्त के बाद रूह–अल्लाह खान ने अपने पोते मीर वाज़ को पुंछ की गद्दी पर बैठाया और स्वयं उस का वजीर बन गया। किन्तु 1819 में रूह–उल्लाह का देहान्त हो गया और उस की मृत्यु के साथ ही पुंछ का ह्रास आरम्भ हो गया।

रूह–अल्लाह के देहान्त के बाद महाराजा रणजीत सिंह ने कश्मीर पर अधिकार करने के लिए 1819 में लाहौर से पुनः प्रस्थान किया। इस बार पुंछ के राजा मीर वाज़ ने महाराजा की अधीनता स्वीकार कर ली और युद्ध-अभियान में भाग भी लिया। महाराजा ने कश्मीर घाटी में पहुँच कर पठान हाकम को पराजित करके कश्मीर पर अधिकार कर लिया।

सन् 1822 में पुंछ के राजा मीर वाज़ ने लाहौर दरबार के विरुद्ध–विद्रोह किया। लाहौर दरबार ने राजौरी के राजा रहीम–अल्लाह को पुंछ के राजा के विद्रोह का दमन करने का आदेश दिया। राजौरी के राजा ने पुंछ के राजा को लड़ाई में परास्त करके उसे कैद कर लिया। 1823 में उसने मीर वाज को लाहौर भेज दिया।

1837 ई॰ में पीर बख्श नाम के एक व्यक्ति ने व्यक्तिगत शत्रुता के कारण मीर वाज खान का वध कर दिया। इस के साथ ही पुंछ के इस राजवंश का अन्त हो गया।

सन् 1823 में मीरवाज़ को बन्दी बना लेने के बाद महाराजा रणजीत सिंह ने पुंछ का इलाका अपने राज्य में शामिल कर लिया और यहाँ का प्रशासन चलाने के लिए धनपतराय और हाकम सिंह चमनी को भेजा। स्थानीय कबीलों ने इन अधिकरियों की अधीनता स्वीकार नहीं की। सुद्धन, दोली, डोमाल, राठौर, मलयाल, डूढ़, थकियाल कबीलों के सरदारों ने पूरे क्षेत्र में कोहराम मचा दिया। इस पूरे क्षेत्र में प्रशासन ठप्प सा हो गया। खालसा राज्य के प्रतिनिधि केवल पुंछ नगर के इर्द–गिर्द ही घूमने लगे।

महाराजा रणजीत सिंह को जब यथार्थ स्थिति का पता चला तो उन्होंने पुंछ, भिम्बर, चिभाल का क्षेत्र अपने प्रधानमंत्री राजा ध्यान सिंह को 20 जून 1827 को एक जागीर के रूप में प्रदान किया।

राजा ध्यान सिंह ने 1827 को ही अपने एक अनुभवी तथा विश्वासपात्र कृष्ण गोपाल को पुंछ का प्रशासन चलाने के लिए भेजा। उसने पुंछ का चक्कर लगाया और राजा ध्यान सिंह को सूचित किया कि स्थानीय सरदारों की सहायता लिए बिना पुंछ में शांति स्थापित करना सम्भव नहीं है। अतः पुंछ के लोकप्रिय सरदार शमस खान को प्रशासन में सहायक बनाने की अनुमति दी जाये। राजा ध्यानसिंह ने कृष्ण गोपाल को शमस को अपना सहायक बनाने की अनुमति दे दी।

शमस खान—शमस खान पुंछ के मलयाल कबीले से था। पुंछ के निकट कलाली गाँव उस का जन्म स्थान था। वह पुंछ के लोगों में बहुत लोकप्रिय था। राजा ध्यानसिंह ने जब उसे उपप्रशासक नियुक्त किया तो पुंछ के लोग बहुत प्रसन्न हुए। शमस ने अपनी प्रशासनिक योग्यता से पुंछ में शांति का दौर लाया।

पुंछ के मुख्य प्रशासक कृष्ण गोपाल की जब मृत्यु हो गई तो जम्मू के राजा गुलाब सिंह ने दिलबाग सिंह को पुंछ का दीवान नियुक्त किया। दिलबाग सिंह और शमस खान में बनी नहीं। उन दोनों में टकराव शुरू हो गया। दिलबाग सिंह ने शमस की शिकायत गुलाब सिंह से की। गुलाब सिंह ने उसे जम्मू बुलाया और उससे राजस्व का हिसाब मांगा। शमस राजस्व का 26 हज़ार रुपया राजा गुलाब सिंह को दे नहीं सका। वह जम्मू से भाग कर पुंछ आ गया और उसने खालसा राज्य के विरुद्ध-विद्रोह किया। पुंछ के लोग उसके साथ थे, अत: उसने पुंछ के एक दर्जन के करीब दुर्गों पर अधिकार कर लिया। पुंछ का एक भाग जब उसके अधिकार में आ गया तो उसने अपने आप को पुंछ का राजा घोषित किया। उसने एक सेना गठित की जिस में सैनिकों की संख्या चार हज़ार के लगभग थी।

खालसा सरकार को जब शमस के विद्रोह की सूचना मिली तो उसने कश्मीर के हाकम मोहन सिंह को विद्रोह का दमन करने के लिए लिखा। मोहन सिंह ने एक सैनिक दल पुंछ भेजा किन्तु उसे कोई सफलता न मिली। अन्ततः महाराजा रणजीत सिंह ने शमस का विद्रोह कुचलने के लिए गुलाब सिंह को पुंछ जाने को कहा। गुलाब सिंह सेना लेकर पुंछ आ गया। शमस को गुलाब सिंह के आगमन की जैसे ही सूचना मिली वह पुंछ से बाग चला गया। वहाँ उसने अपने मित्र शेरवाज़ खान से शरण माँगी। शमस के साथ उस का भतीजा राजबल्ली भी साथ था। अलीखान ने इन दोनों को अपने घर में रखा किन्तु बाद में लोभ के वशीभूत होकर शमस और राजबल्ली की हत्या कर के उनके सिर गुलाब सिंह को भेंट किये। शमस खान के वध के बाद विद्रोह ठंडा पड़ गया। गुलाब सिंह ने बाग के डूड कबीले के लोगों को इसलिये यातनाएँ दीं कि उन्होंने विद्रोह में शमस का साथ दिया था। गुलाब सिंह ने सुद्धोन्ती क्षेत्र के सुद्धन कबीले के लोगों के विद्रोह को भी दबाया। 1841 में गुलाब सिंह ने सुद्धोन्ती के राजा शेरवाज को कैद कर लिया।

सन् 1843 में पुंछ के जागीरदार राजा ध्यान सिंह का लाहौर में बध हुआ और 1845 में उसके बड़े बेटे हीरा सिंह की भी एक षड्यंत्र में लाहौर दरबार के कुछ दरबारियों ने हत्या कर दी। राजा ध्यान सिंह के दूसरे दोनों बेटे जवाहर सिंह और मोती सिंह इन घटनाओं के बाद लाहौर से जम्मू आ गए। उन्होंने राजा गुलाब सिंह से अपने पिता और भाई की जागीरों का आधिपत्य माँगा किन्तु गुलाब सिंह ने उन्हें टाल दिया और

जागीरों का अधिकार नहीं दिया।

15 मार्च 1846 को अमृतसर संधि के अन्तर्गत अंग्रेज़ों ने गुलाब सिंह को जम्मू कश्मीर का महाराजा बनाया। गुलाब सिंह ने महाराजा बनने के बाद अपने भतीजों को जब उनके पिता और भाई की जागीरें नहीं लुटाई तो उन्होंने अधिकार प्राप्त करने के लिए ब्रिटिश सरकार के दरवाजे खटखटाये। ब्रिटिश सरकार ने उन्हें यह सलाह दी कि वे इस सम्बन्ध में महाराजा गुलाब सिंह से बात करें। दोनों भाई गुलाब सिंह के पास आये। गुलाब सिंह ने जवाहर सिंह को नौशहरा और कोटली का इलाका और मोती सिंह को पुंछ का इलाका जागीर के रूप में 1850 को प्रदान किया। बाद में दोनों भाई पैतृक सम्पत्ति के बंटवारे के कारण झगड़ने लगे तो उन का मुकद्दमा लारेंस ने सुना और फैसला दिया कि पुंछ की जागीर मोती सिंह के पास रहेगी और चिभाल का इलाका जवाहर सिंह का होगा। इस फैसले के बाद मोती सिंह पुंछ चला गया। किन्तु जवाहर सिंह ने एक संधि के अन्तर्गत अपनी जागीर का प्रशासन महाराजा गुलाब सिंह को सौंप दिया। 1860 में जवाहर सिंह का देहान्त अम्बाला में हुआ तो उस की जागीर का विलय भी जम्मू कश्मीर राज्य के साथ किया गया।

पुंछ के डोगरा राजा–पुंछ की जागीर महाराजा रणजीत सिंह ने 1827 में अपने प्रधान मंत्री राजा ध्यान सिंह को दी थी। किन्तु राजा ध्यान सिंह अपने जीवनकाल में कभी भी पुंछ में नहीं आया। उसके प्रतिनिधि ही पुंछ का प्रशासन चलाते रहे। उसके देहान्त के बाद 1850 में गुलाब सिंह ने उसके सब से छोटे बेटे मोती सिंह का अपने हाथों से राजतिलक किया और उसे राजा की पदवी दे कर पुंछ भेज दिया।

राजा मोती सिंह–राजा मोती सिंह अपनी जागीर पुंछ में पहुँचा तो उसने देखा कि पूरी जागीर में राजसत्ता का कोई चिन्ह ही नहीं था। गाँव-गाँव में सरदार अपने-अपने क्षेत्र के सर्वेसर्वा थे। मोती सिंह ने अपनी जागीर के एक-एक गाँव का चक्कर लगाया और लोगों को अपने पक्ष में किया। उसने पुंछ में प्रशासन व्यवस्था कायम की और कई नये विभाग स्थापित किये। उसने शिक्षित लोगों को बाहर से बुलाया और उन्हें ऊँचे-ऊँचे पदों पर नियुक्त किया। उसने व्यापार उद्योग और शिल्प को प्रोत्साहन दिया।

राजा मोती सिंह ने पुंछ में कई नये भवन बनवाये और पुराने किले का पुनरुद्धार किया। उसने नदियों पर झूला पुल बन्धवाये। यातायात को नियमित बनाने के लिये राजा ने पुंछ से उड़ी तथा पुंछ से रावलपिण्डी तक पगडंडी बनाई।

उसने भूमि को ठेके पर देने की प्रथा चलाई। किन्तु यह प्रथा कृषकों के लिए उपयोगी सिद्ध न हुई। ठेकेदारों ने इस प्रथा के अन्तर्गत किसानों का शोषण किया।

राजा मोती सिंह बसन्त पंचमी के अवसर पर एक खुले दरबार का आयोजन भी करता था। इस अवसर पर वह अपने दरबारियों और प्रजा से उपहार ग्रहण करता था।

राजा मोती सिंह ने अपने रहने के लिए जम्मू में भी महल बनवाया था। वह सर्दियें जम्मू में ही व्यतीत करता था। सन् 1892 में उसदा देहावसान जम्मू में ही हुआ।

राजा बलदेव सिंह—सन् 1892 में राजा मोती सिंह के देहावसान के बाद उसका बड़ा बेटा बलदेव सिंह पुंछ का राजा बना। उसने राजा बनते ही सब से पहले आन्तरिक स्वायतत्ता प्राप्त करने के लिए जम्मू कश्मीर सरकार से लम्बी लड़ाई लड़ी जिस में अन्त में उसे सफलता मिली। आन्तरिक स्वायत्तता प्राप्त करने के बाद उसने भूमि सुधार की ओर ध्यान दिया। राजा मोती सिंह ने जिस ठेकेदारी प्रणाली का सूत्रपात किया था बलदेव सिंह ने उसे समाप्त किया। उसने जमीन का बन्दोबस्त करवाने के लिए एक अंग्रेज अधिकारी की सेवाएँ प्राप्त कीं। उसने शिक्षा के प्रचार और प्रसार की ओर भी ध्यान दिया। उसके शासनकाल में पुंछ में हाई स्कूल खुला। उसने गांव-गाांव में स्कूल खोले और योग्य विद्यार्थियों को छात्रवृतियां देकर पढ़ने के लिए देश और विदेश में भेजा।

राजा ने कई नई सड़कें बनवाईं, पुलों का निर्माण करवाया और अपने अधिकारियों के लिए बंगले बनवाये। इस राजा के शासनकाल में भारत सरकार का गवर्नर जनरल लार्ड मिन्टो पुंछ आया। प्रथम विश्व युद्ध शुरू होने पर राजा ने ब्रिटिश सरकार को अपनी रियासत से 25 हज़ार सैनिक दिए। सन् 1917 में पुंछ में अकाल पड़ा तो राजा ने बाहर से अन्न मंगवा कर हज़ारों लोगों को मरने से बचाया।

पुंछ के इस लोकप्रिय राजा का देहावसान सन् 1918 में पुंछ में ही हुआ।

राजा सुखदेव सिंह—राजा बलदेव सिंह की मृत्यु के समय सुखदेव सिंह अल्प व्यस्क था और वह अजमेर में शिक्षा ग्रहण कर रहा था। अत: पुंछ का प्रशासन पुंछ के वजीर चौधरी मुहम्मदद्दीन और विशेष सहायक रेजीडेंट चलाने लगे। सन् 1922 में राजा व्यस्क हुआ तो उसने पुंछ का प्रशासन स्वयं अपने हाथ में लिया। उसके शासनकाल में जम्मू कश्मीर सरकार ने राजा के अधिकार कम कर दिये। इस से पुंछ के लोग आन्दोलित हो उठे।

इस आन्दोलन में पुंछ के उन हज़ारों पूर्व सैनिकों ने सक्रिय भाग लिया जो प्रथम विश्व युद्ध में ब्रिटिश सेना में भर्ती होने के बाद अपना सेवाकाल पूरा करके अब अपने घरों में लौट आये थे। पुंछ की राजमाता ने जम्मू कश्मीर सरकार को ऐसी विकट स्थिति में हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया। राजमाता के अनुरोध पर कश्मीर दरबार ने ठाकुर जनकसिंह को स्थिति का अवलोकन करने के लिए भेजा। जनकसिंह की रिपोर्ट के आधार पर कश्मीर सरकार ने ठाकुर करतार सिंह को विद्रोह का कारण जानने के लिए

पुंछ भेजा। करतार सिंह ने कश्मीर सरकार को सूचित किया कि विद्रोहियों को उत्तेजित करने में पुंछ के राजा और उसके दरबारियों का हाथ है। कश्मीर सरकार ने करतार सिंह की रिपोर्ट पर राजा को अल्प-आयु का होने के कारण अपरिपक्व समझते हुए क्षमा कर दिया किन्तु उसके दरबारियों को कड़े दंड दिये और उनमें से कईयों को नौकरी से और कईयो को पुंछ से निष्कासित कर दिया।

राजा ने कश्मीर सरकार के इस फैसले को अपना अपमान समझा और वह पुंछ से आ गया और विदेश भ्रमण के लिए योरुप चला गया। विदेश से वापिस लौटने पर वह बीमार पड़ गया जिस के कारण 15 अक्तूबर 1927 को छब्बीस वर्ष की अल्पायु में उस का देहान्त हो गया।

राजा जगत सिंह–राजा सुखदेव सिंह नि:सन्तान मरा था। उस के दो भाई और थे जिन में एक का नाम जगत सिंह और दूसरे का नाम पदम सिंह था। जगत सिंह जम्मू व कश्मीर राज्य के महाराजा प्रताप सिंह का दत्तक पुत्र भी था किन्तु महाराजा ने उसे अपना उत्तराधिकारी घोषित नहीं किया था। राजा सुखदेव की मृत्यु के बाद पदमदेव सिंह ने पुंछ की गद्दी पर अपना दावा पेश किया। किन्तु कश्मीर सरकार ने उसके दावे को स्वीकार नहीं किया और जगत सिंह को पुंछ का जागीरदार घोषित कर दिया। जगत सिंह पुंछ चला गया। वह पुंछ का पहला राजा था जिसने जम्मू और पुंछ को मोटर मार्ग से जोड़ा। उसने पुंछ के विकास के लिए कई योजनाएँ आरम्भ कीं। उसने पुंछ में शिक्षा का प्रसार किया और प्रतिभाशाली छात्रों को छात्रवृत्तियां प्रदान करके पढ़ने के लिए विदेशों में भेजा। उसने पुंछ में नये और आकर्षक भवन बनवाये और पुंछ के सौंदर्य को बढ़ाया।

1931 में जब पुंछ में साम्प्रदायिक दंगे भड़के तो राजा ने बड़ी सूझ-बूझ से काम लिया। उसने दोनों सम्प्रदाय के लोगों को समझा बुझा कर शान्त किया। शेख-मुहम्मद अब्दुल्ला ने भी पुंछ का दौरा लगाया और लोगों से सद्भावना बनाये रखने की अपील की।

राजा जगत सिंह के शासनकाल में तीन समाचार-पत्र पुंछ से छपने लगे। पुंछ में साहित्यिक और सांस्कृतिक चेतना पैदा हुई।

राजा जगत सिंह युवा-अवस्था में ही 36 वर्ष की अल्पायु में 2 जुलाई सन् 1940 से इस संसार से चल बसा।

राजकुमार शिवदेव सिंह–राजा जगत सिंह की मृत्यु के समय उस का बेटा राजकुमार शिवदेव सिंह अल्प व्यस्क था, अत: पुंछ को महाराजा हरिसिंह ने अपने अधीन रखा और इस क्षेत्र का प्रशासन चलाने के लिए शेख अब्दुल क्यूम को नियुक्त किया। जुलाई 1940 को महाराजा ने शिवदेव सिंह को 'राजा' की उपाधि प्रदान की।

किन्तु प्रशासन मंत्री भीमसेन को सौंपा।

पुंछ की सम्पत्ति के प्रश्न को लेकर राजा जगतदेव की विधवा रानी ने लाहौर हाईकोर्ट में महाराजा हरिसिंह के विरुद्ध हाईकोर्ट में मुकद्दमा दायर किया। महाराजा ने रानी पर नाराज हो कर उसे नज़रबन्द करने का आदेश मंत्री भीमसेन को दिया। भीमसेन और अब्दुल क्यूम ने रानी को नज़रबन्द किया तो पुंछ के लोगों ने आक्रोश में आकर महाराजा के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ा। अन्तत: जगत सिंह की विधवा अपनी दो पुत्रियों को साथ लेकर सन् 1945 को पुंछ को हमेशा के लिए छोड़ कर पंजाब चली गई और वहाँ से वह देहरादून गई और फिर वहीं बस गई।

भारत विभाजन से पहले पुंछ जम्मू कश्मीर राज्य के अन्तर्गत एक जागीर थी। इस जागीर का क्षेत्रफल 1627 वर्गमील था। इस की चार तहसीलें थीं। तहसील हवेली का क्षेत्रफल 308 वर्गमील, बाग का 382 वर्गमील, सद्धोती का 345 वर्गमील और मेंढ़र का 470 वर्ग मील था। कियोला भी पुंछ के अन्तर्गत था और इस का क्षेत्रफल 93.25 वर्ग मील था। इस रियासत में मुसलमानों की जनसंख्या 95 प्रतिशत और अन्य जातियों की जनसंख्या 5 प्रतिशत थी। तहसील सद्धोती में सुद्धन कबीले के लोग अधिक संख्या में रहते थे। सन् 1946 में महाराज हरिसिंह सुद्धोती आया किन्तु वह लोगों के प्रतिनिधियों से मिले बिना ही वहाँ से चला गया। सुद्धोती के एक जन नेता चौधरी इब्राहीम खान ने महाराजा की इस बात के लिए कड़ी आलोचना की और कहा कि जो राजा अपनी प्रजा से मिलने को तैयार नहीं, प्रजा भी उसके आदेश को मानने को तैयार नहीं। इब्राहीम ने महाराजा हरिसिंह के विरुद्ध आन्दोलन छेड़ दिया जिसमें पुंछ की सभी तहसीलों के लोग सम्मिलित हुए। महाराजा ने आन्दोलनकारियों से बात-चीत करने के लिए अपने प्रतिनिधि पुंछ भेजे किन्तु पुंछ के नेताओं ने उन का बहिष्कार किया। पुंछ जागीर में पच्चास हजार के लगभग भूतपूर्व सैनिक थे जिन्होंने प्रथम-विश्व युद्ध और द्वितीय विश्वयुद्ध में भाग लिया था, वे भी इस आन्दोलन में सम्मिलित हो गये और उन्होंने महाराजा के विरुद्ध सशस्त्र विद्रोह किया। महाराजा ने विद्रोह को दबाने के लिए अपनी सेना भेजी किन्तु विद्रोह का वह दमन करने में सफल न रही।

15 अगस्त 1947 को देश का विभाजन हुआ। पुंछ के मुस्लिम नेता चौधरी मुहम्मद इब्राहीम ने पूर्व सैनिकों की सहायता से तहसील सद्धोती, तहसील बाग, तहसील मेंढर और तहसील हवेली में साम्प्रदायिक दंगे भड़काये जिस का परिणाम यह निकला कि साठ हज़ार अल्पसंख्यक अपने गाँव छोड़कर पुंछ में आ गये यहाँ सरकार ने उन्हें शरणार्थी शिविरों में ठहराया।

अक्तूबर 1947 को चौधरी मुहम्मद इब्राहीम ने पाकिस्तानी सेना और कबाइलियों

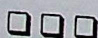
की सहायता से डोगरा सैनिकों पर इतने तीव्र हमले किये कि वे सुद्धोती, बाग आदि स्थानों से पलायन करके पुंछ आ गये। डोगरा सेना जैसे ही पुंछ के भीतरी क्षेत्र से हटी चौधरी मुहम्मद इब्राहीम ने पाकिस्तान के कहने पर उस क्षेत्र का नाम तथाकथित आज़ाद कश्मीर रखा और पलन्दरी को उसकी राजधानी बनाकर स्वयं उस इलाके का अध्यक्ष बन कर प्रशासन चलाने लगा।

26 अक्तूबर 1947 को महाराजा ने जम्मू कश्मीर राज्य का विलय भारत से किया। 27 अक्तूबर को भारतीय सेना कश्मीर पहुँच गई और उसने लुटेरों को घाटी से खदेड़ना आरम्भ किया। 21 नवम्बर 1947 को भारतीय सेना का एक दल सरदार प्रियतम सिंह के नेतृत्व में पुंछ पहुंचा। इस दल ने पुंछ नगर की सुरक्षा के लिए नई मोर्चाबन्दी की। वहाँ हवाई अड्डा बनाया। हवाई अड्डा बनने के बाद वहाँ और सैनिक दल भी आ पहुँचे। भारतीय सेना ने पुंछ को पाकिस्तान के कबाइलियों से मुक्त करवाने के लिए सैनिक कारवाई शुरू की। भारतीय सेना ने मेंढर तहसील को मुक्त करवाने के बाद तहसील बाग और हवेली को मुक्त कराने का जैसे ही अभियान छेड़ा कि संयुक्त राष्ट्र के आग्रह पर पहली जनवरी 1949 को युद्ध विराम हुआ। भारतीय सेना उस दिन यहाँ थी, वही रही। इस युद्ध विराम के कारण पुंछ का तहसील सुद्धोती, तहसील बाग का बहुत बड़ा भाग और तहसील हवेली का कुछ हिस्सा पुंछ से अलग हो गया। आज भी इस क्षेत्र पर पाकिस्तान का अनाधिकार है।

पुंछ का नाम मात्र राजा शिवरत्न सिंह भी बदले हुए परिवेश में पुंछ नहीं आया। वह बहुत समय जम्मू में ही रहा और बाद में देहरादून चला गया और वहीं सन् 1967 में उस का देहावसान हुआ।

1947 के बाद जम्मू कश्मीर सरकार ने जब जिलों का पुनर्गठन किया तो पुंछ को जिला का दर्जा दिया। आज पुंछ जम्मू कश्मीर राज्य का एक जिला है।

पुंछ कश्मीर की सीमा पर स्थित एक प्राचीन राज्य रहा है, अतः कश्मीर की संस्कृति का इस क्षेत्र पर भी आंशिक प्रभाव है। मुख्यतः इस क्षेत्र की अपनी अलग पहचान भी है। इस इलाके की भाषा पुंछी है जिस के पहाड़ी रूप पर खस बोली का प्रभाव है। पुंछ साहित्य कला और दर्शन का भी केन्द्र रहा है। पुंछ क्षेत्र की वास्तुकला पर कश्मीरी शैली का प्रभाव स्पष्ट द्रष्टव्य है। पुंछ का किला, शीश महल, राज महल पुंछ की स्थापत्य कला के सुन्दर नमूने हैं। पुंछ की प्राचीन वास्तुकला के अवशेष मेढ़र के निकट बिखरे हैं जिन के विषय में कहा जाता है कि वे अवशेष यूनानी युग के हैं।



अठारहवां अध्याय

राजा पुरी

राजा पुरी डुग्गर का एक गौरवशाली राज्य था। इस राज्य के उत्तर में पीर पंचाल, पश्चिम में पुरचोत्स (पुंछ) दक्षिण में चिभाल और पूर्व में रियासी तथा अखनूर थे। यह राज्य सर ए. कनिंघम के अनुसार 40 मील (64 किलोमीटर) लम्बा और इतना ही चौड़ा था। राजापुर की तवी नदी की सम्पूर्ण घाटी इसी राज्य में अन्तर्निहित थी।

राजा पुरी अति प्राचीन राज्य था। डॉ॰ सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार पांचवीं शताब्दी में इस की स्थापना हो चुकी होगी क्योंकि 630 ई॰ में जब ह्यूसांग कश्मीर से लौटा था तो उसने इस राज्य का उल्लेख भी अपने यात्रा वृत में किया था।

डॉ॰ चाड़क का मत है कि आठवीं या नवमीं शताब्दी में बंगाल के पालवंशीय राजाओं ने इस राज्य पर अधिकार कर लिया होगा क्योंकि कश्मीर के इतिहास में दसवीं शताब्दी के कश्मीर के राजाओं के सन्दर्भ में राजापुरी के राजाओं का उल्लेख मिलने लगता है। कल्हणकृत राजतरंगिणी में राजापुरी के जिस राजा का प्रथम बार उल्लेख हुआ है उसका नाम पृथ्वीपाल था और वह कश्मीर के राजा अभिमन्यु का समकालीन था। राजतरंगिणी में इस राज्य के जिन अन्य पालवंशीय राजाओं का उल्लेख हुआ है वे हैं:- पृथ्वीपाल, सहजपाल, संग्रामपाल, मदन पाल, सोमपाल, प्रतापपाल, नागपाल और भूपाल। राजापुरी के पालवंशीय राजा कश्मीर के राजाओं के अधीन कभी करदाता राजा रहते थे और कभी वे उनसे स्वतन्त्र हो जाते थे, जिसके कारण इन का टकराव कश्मीर के राजाओं के साथ चलता रहता था। कश्मीर के राजा अभिमन्यु (958-72) कलस (1063-89) सुस्सल (1112-20) भिक्षाचारी (1120-21) जय सिंह (1128-49) के शासन काल में राजापुरी के राजाओं का कश्मीर के राजाओं के साथ कई बार टकराव हुआ जिस में कश्मीर ने राजापुरी को और राजपुरी के राजाओं ने कश्मीर के राजाओं को क्षति पहुँचाई।

भूपाल ने राजापुरी में 1145 से लेकर 1149 तक राज्य किया। तारीख डोगरा देश के अनुसार इस वंश का अन्तिम राजा अमनापाल (1194) था। इसके बाद के राजाओं के नामों का पता नहीं चलता है। जोनराज और श्री वर की राजतरंगणियों से यह आभास मिलता है कि अमनापाल के बाद भी इस राज्य में हिन्दू राजा शासन करते थे।

दिल्ली के सुलतान फिरोज़शाह तुगलक (1356-88) के शासन काल में जहांगीर के इतिहास के अनुसार राजापुरी के हिन्दू राजा ने धर्म परिवर्तन किया और वह मुसलमान बन गया।

स्थानीय इतिहास के अनुसार नूरशाह अथवा नील सिन्हा राजपुरी का पहला मुसलमान राजा था। उसे नुर-उ-द्दीन खान भी कहा गया है। उस के जीवन चरित्र के विषय में ऐतिहासिक पुस्तकों में विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। उस की मृत्यु के बाद बाहि-उ-द्दीन खान जिसे भाग सिन्हा भी कहते थे, राजौरी का राजा बना। इसके विषय में कहा जाता है कि उसने अपने राज्य का विस्तार किया और राजापुरी में कुछ भवन भी बनाये। उसके बाद अनवर खान (आवर्धन सिन्हा) राजौरी का शासक बना। वह एक विलासी राजा था और अपना अधिकांश समय रंग महल में ही व्यतीत करता था। उसने अपने एक भाई को सेनापति और दूसरे को प्रशासक बना दिया। जब वह बूढ़ा हुआ तो उसे संदेह हुआ कि उसके भाई उसके बेटे के स्थान पर स्वयं ही राजा न बन जाये, उसने अपने जीवन काल में ही अपने बेटे का राज्याभिषेक किया और स्वयं सत्ता से हट गया। उसके बेटे का नाम सिरदार खान तथा रत्ना सिंह था। वह बहुत ही शिथिल सिद्ध हुआ। उसके शासनकाल में पड़ोसी राजाओं ने सीमावर्ती इलाकों में कई उपद्रव किये जिस के कारण तनाव की स्थिति बनी रही। उसके देहान्त के बाद शाहसवर खान जिस का हिन्दू नाम संसार सिन्हा था, राजापुरी की गद्दी पर बैठा। वह एक बहादुर राजा था। उसने पड़ोसी राजाओं के साथ कई लड़ाईयां लड़ीं और अपने राज्य का खोया हुआ इलाका दोबारा प्राप्त किया। उसके बाद शाह यामन खान या चक्क सिन्हा राजौरी का राजा बना।

यामन शाह एक कुशल प्रशासक था। उसने राजा बनते ही अपने राज्य की सीमाओं को सुदृढ़ करने के लिए अपनी सेना में बढ़ोत्तरी की। कश्मीर के सुलतान ने जब बलतिस्तान पर हमला करने के लिए उससे सहायता मांगी तो राजा ने अपने बड़े पुत्र शहाबुद्दीन खान को सेना देकर कश्मीर भेजा। यहाँ राजापुरी की सेना ने अपनी बहादुरी की धाक जमाई। राजा यामन खान ने पौनी और भारख दो नये गांव बसाये और ये दोनों गांव अपने छोटे बेटों को जागीर के रूप में दे दिये। इन जागीरदारों को राव कहा गया। भारख की जागीर 1947 तक कायम रही और उसके शासक अपने नाम के साथ 'राव' की पदवी जोड़ते रहे।

यामन शाह के बाद उस का बड़ा बेटा शहाबुद्दीन गद्दी पर बैठा। इस राजा ने अपने राज्य का राजस्व बढ़ाने के लिए सिंचाई की योजनाएं शुरू कीं। इस राजा के पश्चात् बहराम खान जिसका हिन्दू नाम बहराम सिन्हा था, गद्दी पर बैठा। वह आखेट का बहुत शौकीन था और अपना अधिकांश समय उसी में व्यतीत करता था। उसका उत्तराधिकारी उसका बड़ा बेटा बुर्हुनुद्दीन बना। उसका हिन्दू नाम बैरम सिन्हा था। इस राजा ने प्रशासन में कई सुधार लाए और आखेट क्रीड़ा में विशेष रुचि नहीं दिखाई जिसके कारण इसके बाप के साथी इससे दूर हो गए। इसके दो बेटे हुए। वे दोनों अभी अल्पव्यस्क थे कि राजा बीमार हो गया। उसने अपने बड़े बेटे का हाथ अपने छोटे भाई को थमाया और

स्वयं चल बसा। इस का बेटा जब बड़ा हुआ तो वह अलीखान के नाम से प्रसिद्ध हुआ। अली खान धार्मिक प्रवृत्ति का राजा था। उसने अपने जीवन काल में ही राजपाट अपने भाई को सौंपा और स्वयं फकीर बन गया। अलीखान के बाद उसका छोटा भाई बहादुर खान (हिन्दुनाम बहादुर सिंह) युवावस्था में गद्दी पर बैठा। बहादुर खान के बाद उसका बड़ा बेटा मस्तखान राजौरी का राजा बना। डॉ॰ सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार वह अकबर का समकालीन था और अनुमानत: 1580 को गद्दी पर बैठा।

राजा मस्तखान

इस राजा को सरमस्त खान भी कहते थे। इस के शासन काल में अकबर ने कश्मीर विजय की योजना बनाई और 1585 को मुगल सेना को इस अभियान के लिए भेजा। किन्तु, मुगल सेना समुचित मार्गदर्शक न मिलने के कारण कश्मीर घाटी तक पहुंच ही न सकी और मार्ग में ही पराजित होकर वापिस लौट आई। 1586 में मुगल-सम्राट अकबर ने मुगल सेना कश्मीर को जीतने के लिए दोबारा भेजी। इस बार अकबर ने राजौरी के राजा सरमस्तखान से इस अभियान को सफल बनाने के लिए सहायता मांगी। मुगल सेना मुहम्मद कासिम खान के नेतृत्व में राजौरी में पहुंची तो राजा मस्तखान ने मुगल सेना का स्वागत किया और उसकी सहायता करने के लिए मुगल सेना का मार्ग दर्शन किया। इस बार मुगल सेना राजौरी के मार्ग से पीर पंचाल की ओर बढ़ी। राजौरी के राजा ने नन्दनसर का मार्ग सुरक्षित समझा और सेना का एक दल नन्दनसर के मार्ग से और दूसरा दराट के मार्ग से घाटी की और भेजा। मुंगल सेना सहज ही पीर पंचाल को पार करके शोपेइयां पहुंच गई यहाँ उस की पहली टक्कर कश्मीरी सेना से हुई। कश्मीरी सेना ने तीन दिन तक मुगल सेना के साथ लड़ाई की किन्तु अन्तत: पराजित होने के बाद लड़ाई के मैदान से भाग गई। मुगल सेना ने कश्मीर की राजधानी पर अधिकार कर लिया। मुगलों ने राजा मस्तखान को इस विजय के उपलक्ष्य में सम्मानित किया और उसे पच्चास हज़ार रुपये की जागीर कश्मीर में दी। मुगल सम्राट अकबर 1589 ई॰ में जब कश्मीर यात्रा पर आया तो राजा मस्तखान ने राजौरी में उसका भव्य स्वागत किया। अकबर ने मस्तखान को राजा के स्थान पर 'नवाब' शब्द का प्रयोग करने की सलाह दी, किन्तु मस्तखान ने मुगलसम्राट से अनुरोध किया कि स्थानीय लोग 'नवाब' शब्द से परिचित नहीं हैं, अत: उसे 'राजा' उपाधि ही दी जाये। अकबर ने उसके अनुरोध को स्वीकार कर लिया किन्तु साथ ही यह आदेश दिया कि भविष्य में राजवंश के लोग 'मिर्जा' की उपाधि अपने नाम के साथ अवश्य धारण करें। अकबर के इस आदेश के बाद राजवंश के लोगों को मिर्जा कहा जाने लगा। आज भी इस वंश के लोगों को लोग मिर्जा ही कहते हैं। राजा सरमस्तखान का देहान्त 1592 में हुआ और उसके बाद उसका बेटा ताज-उल्ल दीन खान राजौरी की गद्दी पर बैठा।

राजा ताज-उ-द्दीन खान—यह राजा मुगल सम्राट जहाँगीर का समकालीन था। उसके शासन काल में 1620 में जहाँगीर कश्मीर जाते हुए राजौरी भी रुका। जहाँगीर ने तुजुक-ए-जहाँगीरी में राजौरी के विषय में लिखा है कि यहाँ का राजा चाहे मुसलमान है किन्तु उसके वंश की परम्पराएं हिन्दुओं जैसी हैं। जहाँगीर ने यह भी लिखा है कि हिन्दुओं और मुसलमानों में जो रोटी-बेटी का सम्बन्ध था, उसे उसने अपने आदेश से बन्द करवाया।

जहाँगीर ने राजा ताज-उ-द्दीन-खान को मुगल सड़क की सुरक्षा का काम भी सौंपा और उसे आदेश दिया कि वह स्थान-स्थान पर चौकियां स्थापित करके इस सड़क पर निगरानी रखे।

राजा ताज-उ-द्दीन खान की एक अति सुन्दर बेटी भी थी जिसका नाम राजवानू था। 1644 में शाहजहाँ जब कश्मीर में आया तो इसने राजवानू को देखा तो वह उसके सौंदर्य को देखता ही रह गया। उसने राजवानू का निकाह अपने बेटे औरंगजेब से करने का प्रस्ताव राजौरी के राजा के सन्मुख रखा तो वह मान गया। राजवानू की कोख से जो लड़का पैदा हुआ उसका नाम मुअज़म था और औरंगजेब के देहान्त के बाद वह बहादुर शाह के नाम से भारत का सम्राट बना।

राजा इनायत-उल्ला खान- राजा ताज-उ-द्दीन खान की मृत्यु के बाद उसका पोता इनायत-उल्ल खान (चतर सिंह) 1648 ई० में राजौरी का राजा बना। वह राजा बनने से पूर्व नौशहरा का हाकिम रह चुका था, अंतः उसे प्रशासन का अनुभव था। उसने सब से पहले अपनी सेना का गठन नये ढंग से किया और उसे नये शस्त्रों से सुसज्जित किया। इस राजा के शासन काल में भिम्बर के इलाके के अधिकार के प्रश्न को लेकर एक बार लड़ाई भी हुई। पहली लड़ाई में तो राजौरी की सेना परास्त हुई किन्तु दूसरी बार जम्मू के राजा भूपत जम्बाल के समय में इनायत-उल्ला खान की सेना ने जम्मू की सेना को न केवल भिम्बर से भगाया अपितु उस की सेना ने जम्मू पर भी अधिकार किया। जम्मू के महलों की ईंटों को राजौरी की सेना उखाड़ कर अपने साथ ले आई और उन ईंटों से राजा ने राजौरी में दीवान खाना बनवाया।

सन् 1657 में शाहजहाँ के बीमार पड़ जाने के बाद जब उत्तराधिकार के लिए मुगल शाहज़ादों में लड़ाई हुई तो राजौरी के राजा ने औरंगजेब का साथ दिया। औरंगजेब ने सुलतान बनने के बाद पुंछ, मनावर और भिम्बर आदि का इलाका इस राजा को जागीर के रूप में दिया।

राजा इनायत-उल्ला-खान की रुचि भवन निर्माण में भी थी। उसने मुगल शैली में राजौरी में अपने रहने के लिए महल बनवाये। उसने एक किला इन्द्रकोट में और दूसरा

मनावर में बनवाया। उस ने राजौरी में शालीमार बाग भी लगवाया जो तवी नदी के तट पर स्थित था।

राजा अज़मत-उल्ला खान- राजा इनायत-उल्ल-खान के देहावसान के बाद हिदायत-उल्ला-खान 1660 के लगभग राजौरी का राजा बना। वह स्वयं एक अच्छा प्रशासक नहीं था अत: उसने अपने भाई रफी-उल्ला खान को प्रशासन का काम सौंपा। उसने केवल 23 वर्ष राज किया। 1683 में उस का देहान्त हो गया। उस की मृत्यु के समय उसके बेटे अज़मत-उल्ल-खान की आयु केवल तीन वर्ष की थी। अत: 1683 में जब वह राजा बना तो उसका चाचा रफी-उल्ला खान उस का संरक्षक बन कर प्रशासन चलाने लगा। शिशु राजा की संरक्षिका उसकी माता बनी।

राजा हिदायत-उल्ल-खान ने अपने शासन काल में मेहता अज़ीबसिंह को अपना वजीर नियुक्त किया था। जब राजा अज़मत-उल्ल खान अल्प व्यस्क अवस्था में राजा बना तो उसके चाचा रफी उल्ल-खान ने मेहता अजीबसिंह से बजीर का पद छीन लिया और सारी सत्ता अपने हाथ में लेकर वह निरंकुश होकर शासन चलाने लगा।

मेहता अजीबसिंह वजीर का पद छोड़ने के बाद निष्क्रिय होकर नहीं बैठा। उसने राँजा की माता बेगम को रफी-उल्ल खान के विरुद्ध भड़काया। माता बेगम ने रफी-उल्ल खान को हटाने की योजना बनाई तो इसका पता रफी-उल्ल खान को चल गया। उसने एक दिन शिशु राजा का वध करके स्वयं राजा बनने की बात अपनी बेगम को बता दी। उसकी बेगम ने माता बेगम को अपने पति की योजना के बारे में बताया। माता बेगम ने उसी समय अपने राजा पुत्र अज़मत-उल्ल खान को मेहता अजीब सिंह के संरक्षण में दिल्ली में राजवानू के पास भेज दिया जो रिश्ते में अज़मत की बुआ लगती थी।

राजवानू ने जो औरंगजेब की बेगम थी और जिसे राज महल बेगम भी कहते थे, अनायत-उल्ल-खान को अपने पास रखा। उसने उसका शाहज़ादों की भाँति पालन-पोषण किया। उसकी पढ़ाई का भी समुचित प्रबन्ध किया। जब वह व्यस्क हो गया तो राज-महल बेगम ने उसे अमूल्य उपहार देकर औरंगजेब की अनुमति से राजौरी भेज दिया। अजमत-उल्ल खान जब राजौरी पहुँचा तो वहाँ के लोगों और अधिकारियों ने उस का भव्य स्वागत किया। उसका चाचा रफीक-उल्ल-खान उसके आने से पूर्व ही अपनी जागीर में चला गया और इस प्रकार सत्ता का हस्तान्तरण शांतिपूर्ण ढंग से हुआ।

सन् 1707 में औरंगजेब का देहान्त हुआ। उसके दोनों शाहज़ादों में सत्ता के लिए लड़ाई शुरू हुई। इस लड़ाई में अज़मत-उल्ला खान ने मुअज़म का साथ दिया। वह जीत गया और उसने अज़मत को जागीरें और अमूल्य उपहार दिये।

'तारीख-ए-राजौर' के अनुसार अज़मत-उल्ल खान के शासन-काल में राजौरी रियासत की आर्थिक स्थिति बहुत ही सुदृढ़ थी। राज्य की वार्षिक आय चार लाख रुपये से भी अधिक थी। अतः इस राजा के शासन काल में राजौरी राज्य का चहुँमुखी विकास हुआ जिसके कारण राज्य में समृद्धि आ गई।

राजौरी के इस राजा ने मुगल दरबार की भाँति राजौरी में भी दरबार-ए-आम और दरबार-ए-खास निर्मित किये और मुगल शैली में अपने भवनों को नया रूप दिया। उसने प्रशासन चलाने के लिए कुछ अधिकारी दिल्ली से भी बुलाये।

किन्तु वृद्धावस्था में राजा बहुत ही विलासी हो गया। वह बहुत अधिक शराब पीने लगा जिसके कारण उस में शिथिलता आ गई। उसके जीवन काल में ही पुंछ, भिम्बर की जागीरें उससे मुक्त हो गईं और मनावर जम्मू के अधिकार में आ गया।

राजा अज़मत-उल्ला खान के शासन काल में ही अहमद-शाह दुरानी ने कश्मीर पर आक्रमण किया। उसने अज़मत से भी सहायता मांगी। अज़मत ने अपने बड़े बेटे रहमत-उल्ल खान के नेतृत्व में दो हज़ार सैनिक दुरानी की सहायता के लिए कश्मीर भेजे।

दुरानी ने राजौरी की सेना की सहायता से कश्मीर पर अधिकार कर लिया। किन्तु अज़मत का बेटा रहमत-उल्ल खान वहाँ बीमार पड़ा और मर गया।

बेटे की मृत्यु का समाचार सुनकर अज़मत शोक से संतप्त होकर सितम्बर 1753 को मर गया। उसके बाद रहमत-उल्ल खान का लड़का इज़्ज़ातुला-खान राजौरी का राजा बना। वह केवल पांच वर्ष ही राज्य कर सका। उसकी अचानक मृत्यु हो जाने के बाद उसका तीसरा भाई करम-उल्ला-खान राजौरी का राजा बना।

राजा करम-उल्लाह खान- करम-उल्ला 1758 के लगभग राजौरी का राजा बना। इसने राजगद्दी पर बैठते ही एक शक्तिशाली सेना का गठन किया और खोई हुई जागीरों को अपने अधिकार में करने के लिए उसने एक साथ जम्मू, भिम्बर और पुंछ पर हमले कर दिये। किन्तु इससे उसकी सेना विघटित हो गई, इसलिए उसे इसमें सफलता न मिली।

करम-उल्ला खान के शासन काल में क़श्मीर का हाकम एक पठान था। वह करम-उल्ला खान की बेटी से निकाह करना चाहता था। इसके लिए उसने करम-उल्ला को सन्देश भेजा किन्तु करम-उल्ला ने इस प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया। इस घटना के बाद कश्मीर के नवाब ने राज़ौरी पर हमला कर दिया किन्तु राजौरी के राजा ने उसका डट कर सामना किया और उसे राज़ौरी पर अधिकार न करने दिया। अपने अभियान में असफल रहने के बाद कश्मीर के हाकम ने करम-उल्ला से मित्रता के सम्बन्ध जोड़ने के

लिए उसे कश्मीर बुलाया। वह कश्मीर गया और वहाँ से सुरक्षित लौट आया। 1773 में अहमदशाह दुरानी की मृत्यु के बाद पंजाब में सिक्ख मिसलों ने अपना प्रभाव बढ़ाया। अन्ततः उनके अन्तर्कलह से महाराजा रंजीत सिंह पंजाब का शासक बन गया। करम-उल्ला खान ने बदली हुई स्थिति को समझा और पंजाब के महाराजा के साथ अपने सम्बन्ध सुधारे जिस का परिणाम यह निकला कि उसके शासनकाल में सिक्खों ने राजौरी की ओर नहीं देखा। यह राजा 1808 में मरा।

राजा अगर-उल्लाह खान

राजा करम-उल्लाह खान की दो बेगमें थीं। बड़ी बेगम हिन्दू और छोटी मुसलमान थी। बड़ी बेगम से जो बेटा पैदा हुआ उस का नाम अगर-उल्लाह खान रखा गया। छोटी बेगम के बेटे का नाम रहम-उल्लाह खान था। राजा करम-उल्लाह खान की मृत्यु के बाद उसके उत्तराधिकारी के प्रश्न को लेकर विवाद छिड़ा। कई दरबारी मुसलमान बेगम के बेटे रहम-उल्लाह खान को राजौरी का राजा बनाना चाहते थे। अन्ततः परम्परा के अनुसार बड़ा बेटा अगर उल्लाह खान ही गद्दी पर बैठा। उसने अपने भाई रहम-उल्लाह खान को आज़मगढ़ की जागीर प्रदान की और उसे वहीं भेज दिया।

राजा अगर-उल्लाह खान राजौरी की राजगद्दी पर बैठ तो गया किन्तु वह अपने सौतेले भाई और कट्टरवादी दरबारियों से सशंकित रहता था। उसे भय था कि वे सब मिल कर कहीं उसे गद्दी से हटा न दें। अतः वह अपने छोटे भाई को दूर-दूर ही रखता था।

उन्हीं दिनों पंजाब में एक नई शक्ति उभर आई थी। महाराजा रंजीत सिंह ने पंजाब के मैदानी भाग में अधिकार कर लिया था और अब उस की दृष्टि उत्तर में स्थित पहाड़ी रियासतों और कश्मीर की ओर थी। कश्मीर को जीतने के लिये आवश्यक था कि पहले भिम्बर, राजौरी और पुंछ के राजाओं को अपने अधीन करना। तदार्थ उसने 1810 में भिम्बर को हस्तगत करने के लिए पाँच हज़ार घुड़सवार सेना भेजी किन्तु भिम्बर के राजा ने इस सेना को पीछे धकेल दिया। महाराजा ने 1812 में पुनः भिम्बर पर आक्रमण किया और भिम्बर के राजा को पराजित करके उसे अपने अधीन कर लिया। उसी वर्ष राजौरी भी महाराजा रंजीत सिंह का करदाता राज्य बन गया।

1814 में महाराजा ने कश्मीर पर आक्रमण करने की योजना बनाई और वह अपने साथ बहुत बड़ी सेना लेकर 11 जून को राजौरी पहुँच गया। राजौरी के राजा अगरुल्लाह खान ने एक ओर तो पंजाब के महाराजा को कश्मीर विजय में पूर्ण सहयोग देने का आश्वासन दिया और दूसरी ओर उसने कश्मीर के हाकम के कहने पर महाराजा की सेना को गुमराह किया जिस के कारण सिक्ख सेना बुरी तरह से पराजित होकर वापिस लौट

आई। महाराजा रंजीत सिंह भी बड़ी कठिनाई से जान बचाकर अपने कुछेक विश्वासपात्रों को साथ लेकर लाहौर पहुंचने में सफल हुए। इस अभियान में सिक्ख सेना को बहुत क्षति पहुंची। उन्होंने इस क्षति का कारण राजौरी के राजा को माना और 1815 में राजौरी पर भयंकर आक्रमण कर दिया। राजा जान बचा कर कोटली की ओर भाग गया। सिक्ख सेना ने उसके महल जला कर राख कर दिये। जब सिक्ख सेना वापिस चली गई तो राजा भी राजौरी लौट आया और उसने अपने नष्ट-भ्रष्ट महलों का पुनरुद्धार किया।

महाराजा रंजीत सिंह ने 1819 में कश्मीर पर आक्रमण करने की एक बार पुन: योजना बनाई। इस बार महाराजा ने कूटनीति से काम लिया। उन्होंने अगरुल्लाह खान के छोटे भाई रहमुल्लाह खान को वजीरावाद बुलाया। उसे आश्वासन दिया कि यदि वह सिक्ख सेना का कश्मीर विजय में साथ देगा तो लाहौर दरबार की ओर से उसे जागीर और उपहार दिये जायेंगे। उसने सिक्ख सेना की सहायता करना मान लिया। अप्रैल 1819 को सिक्ख सेना ने प्रस्थान किया और वह कश्मीर की ओर चल पड़ी। राजौरी तथा पुंछ के राजा ने कश्मीर के पठान शासक का साथ दिया। किन्तु इस बार सिक्ख सेना कश्मीर पहुँचने में सफल हो गई और उसने कश्मीर पर अधिकार कर लिया। महाराजा ने रहमुल्लाह खान को कश्मीर में जागीर दी और उसे कई उपहार देकर भेजा दिया।

राजौरी का राजा अगरूल्लाह खान कश्मीर के पतन के बाद राजौरी से भाग कर बुद्दल चला गया। उसने वहाँ के सरदारों से शरण मांगी किन्तु किसी ने भी उस की सहायता न की। वह वहां से भाग कर नाज़ के जागीरदार के पास पहुँचा।

महाराजा रंजीत सिंह के आदेश पर गुलाब सिंह ने उस का पीछा किया और 1820 में उसको पकड़ कर लाहौर में भेज दिया। वही बन्दी गृह में 1825 में उस की मृत्यु हुई।

राजा रहिमुल्लाह खान

पंजाब के महाराजा ने 1819 में अगरुल्लाह खान को गद्दी से उतार कर उसके सौतेले भाई रहिमुल्लाह खान को राजौरी का राजा बनाया। इसने सिक्ख सेना की पुंछ हाज़रा तथा अन्य निकटवर्ती क्षेत्रों को जिताने में बड़ी सहायता की। इसके शासनकाल में अगरुल्लाह खान के पुत्र हसिबुल्लाह खान ने इसके विरुद्ध विद्रोह किया और राजौरी पर अधिकार करने के लिए सेना गठित करके आक्रमण भी कर दिया किन्तु सिक्ख सैनिकों ने उसके इस प्रयास को विफल कर दिया। सिक्ख सैनिकों ने हसिबुल्लाह को लड़ाई के मैदान में ही जिन्दा पकड़ लिया और उसे बन्दी बना कर लाहौर भेज दिया।

रहिमुल्लाह खान के राजौरी का राजा बनने के बाद डुग्गर प्रदेश की राजनीति में बहुत बड़ा परिवर्तन आया। 1822 में गुलाब सिंह जम्मू का और सुचेत सिंह बन्दरालता का राजा बन गया। 1827 में पुंछ, भिम्बर का इलाका राजा ध्यान सिंह को जागीर में

मिला। जसरोटा की जागीर राजा ध्यान सिंह के बड़े बेटे हीरा सिंह के पास थी। अब केवल राजौरी ही ऐसा राज्य था जो इन भाईयों के अधिकार से बाहर था और सीधा लाहौर दरबार से सम्बद्ध था। डोगरा भाईयों ने आरम्भ में इस राज्य को भी अपने राज्य में आत्मघात करने का प्रयास किया किन्तु महाराजा रंजीत सिंह की राजौरी के राजा पर विशेष कृपा के कारण वे अपने उद्देश्य में सफल नहीं हो सके।

अन्तत: 16 अप्रैल 1846 को गुलाबसिंह और अंग्रेजों के मध्य एक संधि हुई जिसे अमृतसर संधि के नाम से जाना जाता है। इस संधि के अन्तर्गत राजौरी का क्षेत्र भी गुलाबसिंह को मिल गया। गुलाबसिंह ने राजौरी पर अधिकार करने के लिए अपनी सेना भेजी। रहिमुल्लाह खान के पुत्र फकीरुल्ला खान ने उसके साथ टक्कर ली। कश्मीर के हाक़म ने भी उस की सहायता की किन्तु अन्त में डोगरा सेना ने राजौरी पर अधिकार कर लिया। अंग्रेज सरकार ने रहिमुल्लाह खान के उस प्रार्थना पत्र को भी स्वीकार नहीं किया जिस में उसने राजौरी राज्य पर उसके अधिकार को वैध कहा गया था।

अन्तत: अक्तूबर 1846 को एक अंग्रेज अधिकारी के साथ गुलाब सिंह राजौरी आया। उन्होंने रहिमुल्ला खान के बेटे को जम्मू कश्मीर राज्य के अधीन रहने का आग्रह किया। उसने उनके प्रस्ताव को स्वीकार नहीं किया। अन्तत: अंग्रेज सरकार ने राजौरी के राजा को कांगड़ा के अन्तर्गत रेहलु का किला और मकान रहने के लिए दिए। राजा की पेन्शन 16,000 रुपये जम्मू कश्मीर राज्य के कोश से देने का फैसला भी दिया।

इस नये समझौते के बाद राजौरी का राज परिवार राजौरी छोड़कर रेहलु में चला गया और वहीं राजा रहिमुल्लाह खान का देहान्त जून 1847 को हुआ। उसके बाद राजा की पदवी उसके पोते हमीद-उल्लाह खान को मिली क्योंकि उस के दोनों बेटे उसके जीवन काल में ही मर गए थे।

कुछ वर्ष रेहलु में रहने के बाद राजौरी के राजपरिवार ने अंग्रेज सरकार से प्रार्थना की कि रेहलु में स्थान कम है और उनका परिवार अधिक है अत: उन्हें किसी दूसरे स्थान पर जगह खरीदने की अनुमति दी जाये। अंग्रेज सरकार ने उन्हें बजीरावाद के अन्तर्गत समन भुर्ज में रहने की अनुमति दे दी। इस प्रकार इस राजवंश के कुछ लोग कांगड़ा में और कुछ लोग बजीरावाद में रहने लगे। जो लोग वजीराबाद में गये उन्होंने महाराजा रंजीत सिंह के पुराने महलों में अपना डेरा जमाया।

डॉ॰ सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार राजा फकिरूल्लाह खान के दो बेटे मिर्जा अताउल्लाह खान और मिर्जा अब्दुल्ला खान हुए। उन दोनों ने अंग्रेजी सेना में नौकरी की और ऊंचे पद प्राप्त किये। अता-उल्लाहखान को अंग्रेजों ने काबुल में अपना राजदूत बना कर भेजा। उस का देहान्त 1902 को हुआ। उस का बेटा राजा इकरमुल्लाह खान विधान

परिषद का सदस्य बना। राजौरी के राज परिवार की जो शाखा रेहलु में थी उसे अंग्रेजों ने जागीर दी। 1905 में जब कांगड़ा में भूचाल आया तो इस परिवार के 29 सदस्य मरे। भारत विभाजन पर रेहलु का राजपरिवार पाकिस्तान चला गया और इस परिवार के लोग अब भी वहीं रहते हैं।

राजौरी क्षेत्र में स्थित किला अज़ीमगढ़, किला घंती, किला डंनीधार, सराय चिंगस, सराय फतेहपुर, सराय साज़, सराय थन्ना मंडी, सराय चंडी मढ़, सराय पौशाना और राजौरी राजमहल राजौरी के राजाओं की याद दिलाते हैं।



---

1. सूचना विभाग जम्मू एंड कश्मीर-वर्ष 1998 द्वारा प्रकाशित पुस्तक के अनुसार राजौरी का पहला पालवंशीय राजा पृथ्वीपाल था। उसने 1003 से 1035 तक शासन किया। उसके बाद जानकी पाल (1035-63) संग्राम पाल (1063-1101) सोमपाल (1101-1113) बाहुपाल (1113-94) और अमनापाल (1194) राजौरी के शासक रहे।

2. राजौरी के जराल वंशीय राजाओं के नाम इस पुस्तक में इस प्रकार हैं :-

1. राजा नूर-उ-द्दीन (1194) राजा अनवर खान (1252); राजा सरदार खान (1289), राजा शाह-उ-द्दीन (1412), राजा मस्तवली खान (1565) राजा ताज-उ-द्दीन (1604) राजा अनायत उल्लाह खान (1648), राजा अज़मत उल्लाह खान (1683), राजा इज़्ज़त उल्लाह खान (1762), राजा कर्म-उल्लाह खान (1767), राजा अग्गर उल्लाह खान (1808) तथा राजा रहीम उल्लाह खान (1819), राजा रहीम उल्लाह खान जराल वंश का अंतिम राजा था। इस वंश ने 21 अक्तूबर 1846 ई. तक राज्य किया।

3. राजौरी के उल्लेख कई ऐतिहासिक ग्रंथों में राजावरी के नाम से भी हुआ है।

उन्नीसवां अध्याय

चिभाल

चिभाल राज्य चन्द्र भागा और वितस्ता नदियों के मध्य स्थित बाह्य पहाड़ियों के बीच में स्थित था। इस राज्य की राजधानी भिम्बर थी। भिम्बर जम्मू के पशिचम में स्थित है। इस की दूरी जम्मू से 80 किलोमीटर, गुजरात (पाकिस्तान) से 45 किलोमीटर जेहलम नगर से 30 किलोमीटर और श्रीनगर से मुगल सड़क द्वारा 230 किलोमीटर थी।

डाक्टर सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार पहले इस क्षेत्र का नाम दार्व-अभिसार था। दार्व और अभिसार दो कबीले थे जो इस क्षेत्र में बसते थे। यूनानी इतिहासकारों ने सिकन्दर के सन्दर्भ में इस राज्य का उल्लेख किया है। कल्हण कृत राजतरंगिणी में भी इस राज्य का नाम कई बार आया है। सम्भवत: तेरहवीं शताब्दी तक इस क्षेत्र को इसी नाम से अभिहित किंया जाता रहा है। दार्व-अभिसार के अन्तर्गत राजौरी और पुंछ का क्षेत्र भी परिगणित होता था।

चौदहवीं सदी में दार्व-अभिसार के कुछ क्षेत्र पर थकियाल राजपूत कबीलें का अधिकार था। इस कबीले का एक प्रमुख श्रीपत इस क्षेत्र में राज्य करता था। राजा श्रीपत की एक कन्या थी जिस का विवाह उसने नारायणचन्द कटोल के पुत्र चिबचन्द से किया। चिबचन्द ने अपने ससुर के देहावसान के बाद उसके राज्य पर अधिकार करके अपने नाम पर चिभाल राज्य की स्थापना 1400 ई० के लगभग की।

चिबचन्द के विषय में कहा जाता है कि उसके पूर्वज कांगड़ा के कटोच कबीले से सम्बन्धित थे। किन्तु राजा चिबचन्द के वंशज चिब कहलाये।

लोक श्रुति यह भी है कि थकियाल राजपूत चिबचन्द को अपना शासक मानने को तैयार नहीं थे किन्तु कूटनीति से चिबचन्द ने उनको इस क्षेत्र से भगा दिया और पूरे क्षेत्र पर अधिकार कर लिया।

चिबचन्द के बाद चिभाल राज्य के जो राजा बने उनके नाम-कलस चन्द, रूपलचन्द, अजान चन्द, भावरी चन्द, शान्तिचन्द, गोजा चन्द है। गोजा चन्द के बाद धर्म चन्द चिभाल का राजा बना।

राजा धर्मचन्द- धर्म चन्द दिल्ली के सुलतान इब्राहीम लोधी का समकालीन था। डॉ० सुखदेव सिंह चाड़क के मतानुसार वह 1515 में चिभाल का राजा बना। राजा धर्मचन्द एक अच्छा चिकित्सक भी था। वह त्वचा के रोगों का विशेषज्ञ था। एक बार सुलतान इब्राहीम त्वचा रोग से पीड़ित हुआ। जब किसी भी दवाई से वह ठीक न हुआ तो दिल्ली के एक व्यापारी ने सुलतान को राजा धर्मचन्द के विषय में बताया। वह व्यापारी

राजा धर्मचन्द को जानता था क्योंकि दिल्ली से श्रीनगर जाते समय वह उसकी राजधानी में टिकता था।

सुलतान इब्राहीम ने राजा धर्मचन्द को दिल्ली बुलाया और राजा चला गया। वहां उसने सुलतान का इलाज किया और सुलतान ठीक हो गया। सुलतान ने उस पर प्रसन्न होकर उसका विवाह अपने दरबारी की लड़की से करवा कर उसे मुसलमान बना दिया। राजा धर्मचन्द पहले ही विवाहित था, उसकी रानी थकियाल से दो पुत्र भूप चन्द और रूप चन्द थे। किन्तु फिर भी वह सुलतान के सन्मुख इन्कार न कर सका। उस की नई बेगम से भी दो बच्चे हुए जिन के नाम मलखान और गुलाम मुहम्मद खान थे।

एक दिन राजा को अपनी पहली पत्नी और अपने बच्चों की याद आई। वह चुपके से दिल्ली से अपने राज्य की ओर चल पड़ा किन्तु सुलतान को पता चल गया। उसने राजा का पीछा करने के लिये हैवात खान कादरी को भेजा। कादरी ने गुजरात के निकट फतहपुर गांव में राजा को घेर लिया। दोनों में जम कर लड़ाई हुई। राजा ने कादरी को मार डाला और कादरी ने राजा को घायल कर दिया। राजा घायलावस्था में ही घोड़े पर चढ़ कर अपने महलों की ओर चल पड़ा। किन्तु अभी वह आधी ढक्क तक ही पहुंचा था कि रक्तस्राव से उस का शरीर निर्जीव होकर धरती पर गिर पड़ा और वह मर गया। उस की रानी थकियाल को अपने पति की मृत्यु का पता चला तो वह भी मूर्छित होकर गिर पड़ी और फिर होश में कभी नहीं आई। चिब कबीले के लोगों ने राजा धर्मचन्द को एक महान शहीद की मान्यता दीं और उस की तथा रानी की कब्र पर एक स्मारक निर्मित किया। चिब कबीले के लोग उसके स्मारक को बहुत पवित्र मानते हैं और अपने बच्चों के मुंडन संस्कार वहीं सम्पन्न करते हैं। राजा धर्मचन्द का देहान्त डॉ॰ चाड़क के अनुसार 1535 के लगभग हुआ।

राजा भूपचन्द– राजा धर्म चन्द के हिन्दू रानी से दो बेटे रूप चन्द और भूप चन्द थे। उसकी मुसलमान बेगम से भी दो बेटे मलखान और गुलाम मुहम्मद खान थे। राजा के देहान्त के बाद उसके उत्तराधिकार के प्रश्न को लेकर उसके हिन्दू और मुसलमान बेटों में विवाद छिड़ गया। अन्त में कबीले के लोगों ने चिभाल राज्य का विभाजन किया। चिभाल नदी के पूर्व का भाग भूपचन्द को और पश्चिम का भाग मलखान को मिला। राजा भूपचन्द ने अपने नये राज्य का पुनः गठन किया और परम्परागत ढंग से राज्य करने लगा। राजा भूपचन्द अपने पीछे दो लड़के छोड़ कर मर गया। उसके देहान्त के बाद राजा धर्मचन्द के मुसलमान बेटों ने भिम्बर की गद्दी पर अपना अधिकार पुनः जतलाया। उन्होंने मुगल–दरबार में इस आशय का प्रार्थना पत्र भी भेजा जिस में लिखा था कि उन का बाप मुसलमान बन चुका था, अतः उसके राज्य पर मुसलमान बेटों का ही हक बनता है। मुगल–अधिकारियों ने भूपचन्द के बेटों धघी और गनी चन्द को आदेश

दिया कि या तो वे मुसलमान बन जाएं या गद्दी छोड़ दें। भूपचन्द के बड़े बेटे घघी ने धर्म परिवर्तन करने से इन्कार कर दिया, अत: उसने गद्दी छोड़ दी। राजा के दूसरे बेटे गनी चन्द ने इस्लाम कबूल कर लिया और वह गनीखान के नाम से चिभाल की गद्दी पर बैठा। उसकी दो रानियां थीं। एक हिन्दू और दूसरी मुसलमान। हिन्दू रानी के बेटे हिन्दू ही रहे और वे बाद में देव-वटाला में बसे। गनी चन्द की मुस्लिम पत्नी के बेटे चिभाल के उत्तराधिकारी बने। गनी खान के बाद इस क्षेत्र के जिन राजाओं के नाम वंशावली में मिलते हैं वे हैं:-जसमेदखान, जफ़रखान, शाहमुहम्मद खान, लदखान और इस्माईल खान। इस्माईल खान औरंगजेब का समकालीन था। ये सभी राजा मुगल दरबार के प्रति निष्ठावान रहे। इस्माईल खान के बाद ज़नत खान, रहमतुल्लाह खान, करीमुल्ला खान, शेर सफदर खान तथा मासीरखान इस राज्य के राजा बने। इस के बाद मुनीम खान गद्दी पर बैठा। वह जम्मू नरेश रणजीत देव का समकालीन था। इसके शासन काल में अहमदशाह दुरानी ने कश्मीर पर जम्मू के राजा रणजीत देव के सहयोग से अधिकार किया। दुरानी का समर्थन प्राप्त करने के बाद रणजीत देव ने अपना प्रभाव पहाड़ी रियासतों में बढ़ाया और उनको जम्मू राज्य के अधीन किया। इस प्रकार मुनीम खान को भी जम्मू की अधीनता स्वीकार करना पड़ी। उसने बहादुर सिंह मेहता को अपना वकील बना कर जम्मू दरबार में भेजा। किन्तु मुनीम खान मन से मेहता वीर सिंह से विद्वेष करता था अत: जब वह भिम्बर में आया तो राजा ने उस का वध करवा दिया। मेहता बहादुर सिंह के बेटे सुजान सिंह ने मुनीम खान पर आरोप पत्र तैयार किया और जम्मू के राजा को पेश किया। जम्मू का राजा अभी उस आरोप पत्र की जांच-पड़ताल कर ही रहा था कि राजा मुनीम खान मर गया। उसके बाद उसका बेटा सुलेमान खान गद्दी पर बैठा। उसने बहादुर सिंह के बेटे सुजान सिंह को अपना वजीर बनाया। सुलेमान के बाद उसका बेटा सुलतान खान राजा बना।

राजा सुलतान खान

सुलतान खान पंजाब के महाराजा रंजीत सिंह का समकालीन था। उसे अपने जीवन में बहुत उतार-चढ़ाव देखने पड़े। 1810 में पंजाब के महाराजा रंजीत सिंह की सेना ने चिभाल पर जबर्दस्त हमला किया। सुलतान ने खालसा सेना का बड़ी वीरता से सामना किया। सुलतान के पास सैनिक शक्ति कम थी अत: अन्त में उसे पराजय का मुंह देखना पड़ा। उसने महाराजा की अधीनता स्वीकार कर ली और खालसा दरबार को चालीस हज़ार रुपये वार्षिक नज़राना के रूप में देना माना। रंजीत सिंह ने उसकी शक्ति को तोड़ने के लिए उसके राज्य का एक हिस्सा उसी के एक सम्बन्धी ईस्माइल खान को जागीर के रूप में दिया। सुलतान खान दो वर्ष तक तो चुप रहा किन्तु उसके बाद उसने

ईस्माइल खान को एक झगड़ा होने के बाद मार डाला। 1812 में महाराजा ने राजकुमार खड्ग सिंह के नेतृत्व में सुलतान खान का दमन करने के लिए सिक्ख सेना भेजी। सुलतान खान एक पहाड़ी पर चढ़ गया। बड़ी कठिनाई के बाद वह सिक्ख सेना के हाथ आया। सिक्ख सेना उसे पकड़ कर लाहौर ले गई। महाराजा ने उसे बन्दी बना लिया और वह छह वर्ष तक लाहौर के बन्दीगृह में रहा। महाराजा ने चिभाल का क्षेत्र कुंवर खड्ग सिंह को जागीर के रूप में दे दिया।

1819 में महाराजा रंजीत सिंह ने कश्मीर पर आक्रमण करने की एक बार फिर योजना बनाई। इस योजना को क्रियान्वित करने के लिए महाराजा को सुलतान ख़ान की सहायता की आवश्यकता पड़ी। उसने उसे बन्दी गृह से मुक्त किया और अपने साथ राजौरी ले गया। सुलतान खान ने कश्मीर विजय में महाराजा की बहुत सहायता की। परिणामस्वरूप महाराजा ने उसे उसके राज्य का एक भाग लौटा दिया।

सुलतान खान के दुर्भाग्य का कारण उस की नवविवाहित बेगम हयात बीबी बनी। सुलतान ने पच्चास वर्ष की आयु में जब उससे निकाह किया तो वह केवल 18 वर्ष की थी। उसने सुलतान को अपने वश में कर लिया और प्रशासन उसी के संकेत से चलने लगा। बीबी हयात की नीतियों के कारण सुलतान खान के दरबारी उससे उन्मुख हो गए और उसके विरुद्ध षड्यंत्र रचने लगे। उसी एक षड्यंत्र के अन्तर्गत गुलाब सिंह ने उसे 1825 में जम्मू बुलाया। वहां उसने सुलतान खान की आंखें निकलवा दीं और उसे बाहु दुर्ग में कैद रखा। वहीं 80 वर्ष की आयु में उसका देहान्त हुआ।

महाराजा रंजीत सिंह ने 1827 में चिभाल का क्षेत्र अपने प्रधानमंत्री राजा ध्यान सिंह को जागीर के रूप में प्रदान किया। 1846 की संधि के अन्तर्गत यह क्षेत्र गुलाब सिंह को मिला किन्तु ध्यान सिंह के पुत्र जवाहर सिंह ने ब्रिटिश सरकार से अपील की कि वह उसके बाप की जागीर गुलाब सिंह से उसे वापिस दिलवाये। ब्रिटिश सरकार ने जवाहर सिंह की प्रार्थना स्वीकार कर ली और चिभाल की जागीर उसे प्रदान कर दी। बाद में जवाहर सिंह ने इस जागीर की आय का तीसरा भाग स्वीकार करके इसका प्रशासन जम्मू कश्मीर सरकार को सौंप दिया। महाराजा रणवीर सिंह के शासनकाल में जवाहर सिंह पर महाराजा का वध करने की योजना बनाने का आरोप लगा तो वह रियासत से भाग कर अम्बाला चला गया और उस की मृत्यु के बाद चिभाल जम्मू कश्मीर राज्य का भाग बन गया।

सन् 1947 में देश का विभाजन हुआ तो कबायलियों ने जम्मू कश्मीर राज्य पर पाकिस्तान के सहयोग से आक्रमण किया। इस आक्रमण में कबायलियों ने चिभाल की राजधानी भिम्बर, मीरपुर और कोटली के क्षेत्र पर अधिकार कर लिया। आज भी इस

रियासत का बहुत बड़ा भाग पाकिस्तान के अनाधिकार में है।

खड़ी-खड़ेयाली

खड़ी खड़ेयाली चिभाल राज्य से विघटित एक छोटा सा राज्य था। चिभाल के राजा धर्मचन्द ने दिल्ली में धर्म परिवर्तन करके अपना नाम शदाब खान रख लिया था। उसने मुस्लिम परिवार में दूसरी शादी भी की थी। अत: उसके देहान्त के बाद उत्तराधिकार के प्रश्न पर उसके हिन्दू और मुसलमान बेटों में झगड़ा पैदा हो गया। मुगल अधिकारियों ने इस झगड़े को निपटाने के लिए चिभाल राज्य का विभाजित किया। भिम्बर नदी को इस राज्य की सीमा निश्चित किया गया। विभाजन के बाद जिस भाग में धर्म चन्द का हिन्दू पुत्र शासक बना उसका नाम चिभाल ही रहा और जो भाग उसके मुसलमान बेटों को मिला उसे खड़ी खड़ेयाली नाम से अभिहित किया गया।

खड़ी खड़ेयाली जागीर का पहला मुसलमान शासन धर्म चन्द का मुसलमान बेटा मल्लखान था। मल्लखान सम्भवत: 1535 ई० में खड़ी-खड़ेयाली का जागीरदार बना। उसने पिंडी भुंजा गाँव को अपनी राजधानी बनाया और इस गांव को विकसित करने के लिए उसने अपने रहने के लिए हवेलियां भी बनाईं।

राजा मल्ल खान के बाद उसका पुत्र अगलाश खान इस जागीर का राजा बना। खड़ी-खड़ेयाली जागीर के शासकों के विषय में इतिहास में विशेष जानकारी नहीं मिलती है। उनके विषय में केवल इतना ही पता चलता है कि वह अपने नाम के साथ

---

1. डा॰ मेजर सिंह की उर्दू पुस्तक तारीख-ए-चिबाल के अनुसार-चिभ राज्य की स्थापना कांगड़ा के कटोच कबीले की एक शाखा ने 1400 ई॰ के लगभग की। इस पुस्तक के अनुसार कांगड़ा के राजा मेघ चन्द (1390 ई॰) के तीन बेटे थे। उनके नाम हरिचन्द, कर्मचन्द और प्रतापचन्द थे। मेघचन्द के देहान्त के बाद उसका बड़ा बेटा हरिचन्द राजा बना। वह आखेट खेलने गया और वापिस नहीं लौटा, अत: उसके बाद उसका भाई कर्म चन्द कांगड़ा का राजा बना। मेघचन्द का तीसरा बेटा प्रताप चन्द था। प्रताप चन्द के बेटे का नाम नारायण चन्द था। नारायण चन्द ने कांगड़ा का परित्याग किया और वह रावी पार कर जम्मू आ गया। जम्मू से वह चन्द्रभागा नदी पार करके दार्व-अभिसार के इलाके में चला गया। वहाँ वह मालेरिया गांव में बसा। नारायण चन्द जम्मू के राजा मालदेव का समकालीन था। इसी नारायण चन्द के बड़े लड़के का नाम चिबचन्द था। इसी चिबचन्द को चिभाल राज्य का संस्थापक माना जाता है।

2. तारीख डोगरा देश के अनुसार भिम्बर नगर की स्थापना राजा धर्म चन्द के बेटे भूपचन्द ने अपने नाम पर की।

3. राजा सुलतान खान को बन्दी बना लेने के बाद लाहौर दरबार ने उसके भतीजे फैज़ तालिब खान को भिम्बर का राजा बनाया। वह नाम-मात्र का राजा था। वास्तविक सत्ता गुलाब सिंह के हाथ थी। मार्च 1846 की संधि के अन्तर्गत चिभाल भी जब जम्मू कश्मीर का भाग बन गया तो फैज तालिब खान गुजरात (पाकिस्तान) के अन्तर्गत पट्ठी गांव चला गया। उसे 10,000 रुपये की पेन्शन जम्मू व कश्मीर रियासत की ओर से प्रदान की गई अब यह परिवार पाकिस्तान में ही रहता है।

राजा की पदवी जोड़ते थे।

खड़ी खड़ेयाली के राजाओं का उल्लेख पंजाब के इतिहास में सिक्ख मिसलों के सन्दर्भ में मिलता है। कहा जाता है कि अठारहवीं शताब्दी के आरम्भ में ही सिक्ख मिसलों के सरदारों ने पहाड़ी रियासतों पर जब आक्रमण आरम्भ किये तो उनका शिकार यह छोटा राज्य भी हुआ। पंजाब के महाराजा रंजीत सिंह ने गुजरात पर अधिकार करने के बाद चिभाल के साथ-साथ खड़ी-खड़ेयाली पर भी कई हमले किये। महाराजा ने इस राज्य के राजा उमरखान से चुनियां का दुर्ग छीन लिया तो वह मंगला दुर्ग की ओर भाग गया। अन्त में उमर खान के देहान्त के बाद उसके उत्तराधिकारियों ने महाराजा से सन्धि की जिसके अन्तर्गत महाराजा रंजीत सिंह ने इस राज्य को अपने अधिकार में ले लिया और उमर खान के बेटे अमरखान की चार हजार रुपये वार्षिक पेन्शन निश्चित की।

1846 की संधि के अन्तर्गत खड़ी-खड़ेयाली की इस छोटी सी रियासत का विलय जम्मू कश्मीर रियासत में हुआ। गुलाब सिंह ने इस राज्य के उत्तराधिकारियों की आजीविका के लिए पेन्शन निश्चित की। अमरखान के देहान्त के बाद फज़ींखान इस रियासत का पेन्शन जाफ्ता राजा बना और उसके बाद यह पद फज़ीदाद खान को मिला किन्तु उसके समय यह पेन्शन घटकर 1,075 रुपये रह गई।

खड़ी-खड़ेयाली जागीर के जम्मू कश्मीर राज्य में विलय हो जाने के बाद राजवंश के लोग जम्मू प्रान्त के अन्तर्गत मीरपुर में चले गए।

---

1. डाक्टर सुखदेव सिंह चाड़क के अनुसार खड़ी खड़ेयाली राज्य की स्थापना 1400 ई० में चिब चन्द के छोटे भाई खड़क चन्द ने की थी।

बीसवां अध्याय

सन्दर्भ

लोकतन्त्र का उदय

जम्मू कश्मीर का विलय भारत के साथ करने के बाद महाराजा ने शेख मुहम्मद अब्दुल्ला की नियुक्ति हैड-आफ दी एडमिस्ट्रेशन (मुख्य प्रशासक) के रूप में की। 30 अक्तूबर 1947 को पद सम्भालने के बाद शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने घोषणा की- 'अब हम आज़ाद हैं।'

शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने जैसे ही अपना पद सम्भाला राजतन्त्र की जड़े उखड़ने लगीं। शेख़ साहब चाहे आपद काल के लिए मुख्य प्रशासक नियुक्त हुए थे किन्तु जनता ने उनका भारी स्वागत किया। वह जम्मू में आये और जम्मू प्रान्त का चक्कर भी लगाया। लोगों ने उनका लोकनायक की भाँति स्वागत किया। उन्होंने कश्मीर घाटी में अल्पसंख्यकों की सुरक्षा करके जो ख्याति अर्जित की उससे वे राष्ट्रीय स्तर के नेता माने जाने लगे।

5 मार्च 1948 को शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को महाराजा ने जम्मू कश्मीर रियासत का प्रधानमंत्री नियुक्त किया। महाराजा ने लोकतान्त्रिक संविधान के निर्माण की घोषणा भी की।

शेख मुहम्मद अब्दुल्ला का जन्म सन् 1905 ई॰ में श्रीनगर से छह किलोमीटर की दूरी पर सौरा नामक गांव में हुआ। इनके पिता शाल के व्यापारी थे। शेख अभी अल्प व्यस्क ही थे कि इन के पिता का देहान्त हो गया। इनका पालन-पोषण उन के भाईयों ने किया। शेख मुहम्मद अब्दुल्ला पढ़ने में बड़े कुशाग्र थे। सन् 1930 में उन्होंने मुस्लिम विश्वविद्यालय अलीगढ़ से एम. एस. सी. की परीक्षा उत्तीर्ण की। वे उसी वर्ष श्रीनगर के एक हाई स्कूल में विज्ञान के अध्यापक नियुक्त हुए। किन्तु उन्हीं दिनों मुस्लिम लीग ने श्रीनगर में एक आन्दोलन चलाया। वे उससे इतने प्रभावित हुए कि नौकरी छोड़ कर आन्दोलन में सम्मिलित हो गए। उन्होंने 1932 में मुस्लिम कान्फ्रेंस की स्थापना की। शेख मुहम्मद अब्दुल्ला का राजनैतिक प्रतिद्वन्दी मीरवाज़ युसूफ शाह था। उसने मुस्लिम कान्फ्रेस छोड़ दी और घाटी में एक नई पार्टी की स्थापना की जिसका नाम उसने आज़ाद पार्टी रखा। कश्मीर के लोग शेख साहिब को पार्टी की 'शेर पार्टी' और यूसुफ शाह की पार्टी को 'बकरा पार्टी' कहने लगे। इसी आधार पर शेख मुहम्मद अब्दुल्ला का नाम 'शेर-ए-कश्मीर' प्रचलित हो गया। उनको जनता का भारी समर्थन प्राप्त हुआ।

शेख अब्दुल्ला जब जम्मू कश्मीर के नेता बन गये तो उन्होंने अनुभव किया कि

राजतन्त्र प्रणाली के अन्तर्गत केवल एक सम्प्रदाय के लोग ही नहीं अपितु सभी सम्प्रदायां के लोग दुःखी हैं। उन्होंने अपनी संस्था में दूसरे सम्प्रदाय के लोगों को शामिल करने के लिए सोचा। इस काम में सब से बड़ी बाधा उनकी संस्था के नाम की थी। उन्होंने अपनी संस्था का नाम 1939 में मुस्लिम कान्फ्रेंस से बदल कर नेशनल कान्फ्रेंस किया। इससे उन्हें न केवल कश्मीर घाटी का ही समर्थन मिला अपितु राष्ट्रीय नेताओं ने जो ब्रिटिश सरकार से स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए संघर्षरत थे, शेख साहिब की प्रशंसा ही नहीं की अपितु उन्हें एक जननेता के रूप में स्वीकार किया।

हिन्दू सिक्ख और कई अन्य सम्प्रदायों के लोग भी नेशनल कान्फ्रेंस में सम्मिलित हो गए और उन्होंने शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के नेतृत्व में लोकतन्त्र की स्थापना के लिए संघर्ष तेज़ कर दिया।

यूसुफ शाह ने आज़ाद कान्फ्रेंस पार्टी का नाम बदला और नया नाम मुस्लिम कान्फ्रेंस रखा। मीरबाज़ का झुकाव अली मुहम्मद जिन्नाह के नेतृत्व वाली मुस्लिम लीग की ओर था। उनकी संस्था ने घाटी में साम्प्रदायिकता का प्रचार किया।

शेख मुहम्मद अब्दुल्ला ने घाटी में जो आन्दोलन चलाये उसका परिणाम यह निकला कि लोगों में जन–जागृति पैदा हुई और जम्मू कश्मीर के महाराजा ने यह अनुभव किया कि अव केवल दमन से आन्दोलित जनता को दबाया नहीं जा सकता। उन्होंने 'प्रजा–सभा' का गठन किया और लोगों के प्रतिनिधियों को महत्व देना शुरू किया।

शेख साहिब ने नेशनल कान्फ्रेंस का छठा अधिवेशन सोपुर में आयोजित किया तो उसमें इंडियन नेशनल कान्फ्रेंस के मूर्धन्य नेताओं ने भी भाग लिया। इसी प्रकार शेख अब्दुल्ला द्वारा संचालित 'कश्मीर छोड़ो', आन्दोलन भी पूरी घाटी में बहुत सफल हुआ।

सन 1947 में जब देश का बंटवारा हुआ तो शेख अब्दुल्ला जेल में थे। 30 सितम्बर 1947 को प्रशासन ने उन्हें कारावास से मुक्त किया।

अक्तूबर 1947 को कबायलियों ने कश्मीर पर आक्रमण किया। उससे जम्मू कश्मीर राज्य की सारी सीमाएं हिल गईं और कबायली कश्मीर घाटी के भीतर घुस गए। उन्होंने यहां जिस बर्बरता का प्रदर्शन किया उसका मुकाबला शेख मुहम्मद अब्दुल्ला और उनके साथियों ने बड़ी निडरता से किया। उन्होंने शांति सेना का गठन करके अल्पसंख्यक समुदायों की रक्षा की और कश्मीर में मानवीय रक्त की एक बूंद भी न बहने दी।

शेख अब्दुला ने प्रधानमंत्री बनते ही विस्थापिकों के पुनर्वास की ओर विशेष ध्यान दिया। पाकिस्तान से जो शरणार्थी जम्मू प्रान्त में मुजफ्फराबाद भिम्बर, मीरपुर,

कोटली, हवेली, बाग, सद्धोती क्षेत्रों से आये थे उनके स्थान-स्थान पर शिविर लगवाये उनके पुनर्वास का सुमचित प्रबन्ध किया।

शेख अब्दुल्ला ने जम्मू कश्मीर में नया कश्मीर कार्यक्रम को क्रियान्वित करने के लिए अपने मंत्रिमंडल के सहयोगियों को आदेश दिये। शेख अब्दुल्ला मंत्रिमंडल ने बड़े साहस से शोषित वर्ग के पक्ष में निर्णय लिये। मंत्रिमंडल ने जागीरदारी प्रथा का अन्त करके जागीरों का विलय राज्य के साथ किया। बड़े ज़मींदारों को केवल 182 कनाल ज़मीन अपने पास रखने का अधिकार दिया। कृषको को ज़मीन का स्वामी बनाया और भूमिहीनों को बची हुई भूमि वितरित की। नई सरकार ने समाजवादी समाज की स्थापना के लिए सहकारी आन्दोलन को सक्रिय किया। इसके अन्तर्गत गांव-गांव में सहकारी समितियां गठित की गईं। निर्धन किसानों को शाहुकारों के शोषण से मुक्त करने के लिए ऋण सम्बन्धी बोर्डों की स्थापना की जिसने शाहुकारों के झूठे खातों की पोल खोली।

सरकार ने जैलदारी प्रथा का अन्त किया। पैतृक नम्बरदारी प्रथा खत्म की और यह अनिवार्य किया कि गांव का नम्बरदार लोगों द्वारा निर्वाचित व्यक्ति ही हो सकेगा। सरकार ने शिक्षा के प्रचार तथा प्रसार की ओर विशेष ध्यान दिया। आवागमन के लिए नई सड़कें बनवाईं। स्वास्थ्य, खाद्य, संचार आदि विभागों का पुनर्गठन किया श्रीनगर में जम्मू कश्मीर विश्व विद्यालय की स्थापना की। प्रशासन व्यवस्था को चुस्त किया।

शेख सरकार ने भारतीय संविधान सभा के लिए मौ. मुहम्मद मसूदी, मिर्जा अफज़ल बेग और मोतीराम बैगड़ा को मनोनीत किया। जम्मू कश्मीर सरकार रियासत में समाजवादी समाज की स्थापना के लिए दृढ़ संकल्प थी। अतः राज्य की भीतरी स्वायत्तता बनाये रखने के लिए भारतीय संविधान में जम्मू कश्मीर राज्य को धारा 370 के अन्तर्गत विशिष्ट स्थान दिया गया।

कश्मीर तथा संयुक्त राष्ट्रसंघ

13 सितम्बर 1948 को भारत सरकार ने संयुक्त राष्ट्र संघ में यह शिकायत दर्ज की कि पाकिस्तान ने कबायलियों को कश्मीर पर आक्रमण करने के लिए न केवल प्रेरित ही किया है अपितु पाकिस्तानी सैनिक छद्म वेश में इस में भाग ले रहे हैं। पाकिस्तान ने शुरू में तो लड़ाई में अपना सम्बन्ध स्वीकार नहीं किया किन्तु भारत ने जब पुष्ट प्रमाण प्रस्तुत किये तो वह दोषी पाया गया। पाकिस्तान ने संयुक्त राष्ट्र संघ में जनमत संग्रह की मांग रखी। पाकिस्तानी सेना की बर्बरता से संयुक्त राष्ट्रसंघ को परिचित कराने के लिए शेख साहिब ने सुरक्षा परिषद में जनवरी 1948 को भाषण किया और कश्मीर के लोगों की स्थिति स्पष्ट की। सन् 1948 में सुरक्षा परिषद् कश्मीर के विषय में युद्ध विराम कराने के अतिरिक्त कोई निर्णय न ले सकी।

युवराज कर्ण सिंह

20 जून 1949 को महाराजा हरि सिंह ने अपने सभी अधिकार युवराज कर्णसिंह को स्थानान्तरित किये और वह स्वयं रियासत से बाहर चले गए।

प्रथम मई 1951 को संविधान सभा के चुनाव की घोषणा हुई। यह चुनाव व्यस्क मताधिकार के आधार पर हुआ। जम्मू प्रान्त की स्थानीय राजनैतिक संस्था प्रजा-परिषद ने इन चुनावों का बहिष्कार किया।

31 अक्तूबर 1951 को संविधान सभा का प्रथम सत्र आरम्भ हुआ। संविधान सभा ने सर्व सम्मति से परम्परावादी राजवंश के शासन को समाप्त किया। सभा ने राज्य का प्रमुख 'सदर-ए रियासत' रखा जिस का निर्वाचन विधान सभा द्वारा कराना निश्चित किया गया। पहली विधान सभा ने कर्ण सिंह को रियासत जम्मू कश्मीर का पहला सदर-ए-रियासत निर्वाचित किया। भारत के राष्ट्रपति ने इस निर्णय की पुष्टि की।

शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के समय में भी रियासत जम्मू कश्मीर में कई जन आन्दोलन चले। लद्दाख में इन आन्दोलनों का नेतृत्व कशुब-बकौला ने और जम्मू में प्रजा परिषद के प्रधान प्रेमनाथ डोगरा ने किया।

जम्मू आन्दोलन में शुरू-शुरू में बड़े-बड़े जागीरदार शाहुकार और व्यापारी ही सम्मिलित हुए। वे शेख सरकार की नीतियों से क्षुब्ध थे। किन्तु बाद में संविधान की धारा 370 को संविधान से हटवाने के लिए 1952 में प्रजा परिषद ने जिस आन्दोलन का संचालन किया उसका प्रभाव पूरे जम्मू प्रान्त पर पड़ा। इस आन्दोलन में एक दर्जन के लगभग लोग शहीद हुए। सरकार ने आन्दोलनकारियों के नेताओं को जेल में बन्द किया।

प्रजा परिषद के आन्दोलन का समर्थन करने के लिए जनसंघ के प्रधान श्यामा प्रसाद मुखर्जी बिना प्रवेश पत्र लिए जब जम्मू कश्मीर राज्य की सीमा के भीतर घुसे तो कश्मीर सरकार ने उन्हें बन्दी बना लिया। कारावास में उनकी मृत्यु हो ज़ाने से पूरा राष्ट्र उत्तेजित हो उठा।

आन्दोलन का दमन करने के लिए शेख सरकार ने अधिक कठोरता से क़ाम लिया। इससे जम्मू के लोग उन से नाराज़ हो गए। शेख साहब ने भी उन दिनों अपने भाषणों में कुछ ऐसा कहा जो सदर ए रियासत को आपत्ति जनक लगा। उन्होंने शेख अब्दुल्ला को प्रधानमंत्री के पद से हटा दिया और उनके स्थान पर बख्शी गुलाम मुहम्मद को प्रधानमंत्री बनाया।

बख्शी गुलाम मुहम्मद 1953 में रियासत का प्रधानमंत्री बना। उसके शासन

काल में रियासत का चहुंमुखी विकास हुआ। उसने आन्दोलनकारियों को भी तुष्ट किया। उस के समय में जम्मू कश्मीर की विधान सभा ने 17 नवम्बर 1956 को अपना नया संविधान लागू किया। इस संविधान की धारा तीन के अन्तर्गत जम्मू कश्मीर रियासत को भारत का अभिन्न अंग माना गया।

बख्शी मंत्री मंडल ने रियासत में कई सराहनीय कार्य किये। उसने रियासत से भारत जाने और भारत से रियासत के भीतर प्रवेश करने के लिए जो प्रवेश पत्र प्रणाली थी उसे समाप्त किया। उसके समय में पंचवर्षीय योजनाओं का आरम्भ हुआ जिन के अन्तर्गत रियासत के तीनों खण्डों का बड़ी तीव्र गति से विकास हुआ।

उसके समय में कश्मीर में शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के समर्थकों ने जनमत संग्रह मोर्चा गठित किया। बख्शी गुलाम मुहम्मद से नेशनल कान्फ्रेंस के जो नेता असन्तुष्ट थे उन्होंने डेमोक्रेटिक नेशनल कान्फ्रेंस नाम की एक नई संस्था का गठन किया। यह संस्था राजनैतिक थी।

अन्तत: 1963 में काम राज योजना के अन्तर्गत बख्शी गुलाम मुहम्मद ने त्यागपत्र दे दिया और शमशुद्दीन रियासत जम्मू कश्मीर का नया प्रधानमंत्री बना। उसके शासन काल में हज़रत बल से मुए मुक़दस की चोरी हुई जिसके कारण पूरी कश्मीर घाटी आन्दोलित हो उठी। इसका परिणाम यह निकला कि उसे त्यागपत्र देना पड़ा और उसके स्थान पर ख्वाजा गुलाम मुहम्मद सादिक रियासत का प्रधानमंत्री बना।

सादिक राष्ट्रवादी नेता था। वह उदार, ईमानदार नीतिज्ञ, समाजवादी और दूरदर्शी था। सादिक के समय में सदर ए रियासत और प्रधानमंत्री के स्थान पर राज्य पाल और मुख्यमंत्री के नाम रियासत के लिए अपनाए गए।

उसके समय में 1965 में पाकिस्तान ने कश्मीर में घुसपैठिये भेजे। किन्तु भारतीय सेना ने कश्मीर के लोगों के सहयोग से उन्हें भगा दिया। जम्मू में प्रदेश जनसंघ ने सादिक सरकार की खाद्यान्न नीति के विरुद्ध आन्दोलन भी चलाया। सादिक ने आन्दोलन कारियों की माँगे मान ली और आन्दोलन शान्त हो गया।

सादिक सरकार ने जम्मू के विकास के लिए गज़ेन्द्र गड़कर कमीशन की नियुक्ति की। जम्मू विश्वविद्यालय इस सरकार की देन है।

सन् 1971 में बंगला देश के सन्दर्भ में भारत और पाकिस्तान में पुन: युद्ध छिड़ा। सादिक सरकार ने इस लड़ाई में कश्मीर के लोगों को पाकिस्तान की चालों से दूर रहने का आह्वान किया।

सादिक सरकार ने शेख मुहम्मद अब्दुल्ला को भी कारावास से मुक्त किया और

उसका राजनैतिक मंच पर मुकाबला किया।

मीर कासिम

सादिक की मौत के बाद जम्मू व कश्मीर का मुख्यमंत्री मीर कासिम निर्वाचित हुआ। इसके समय में भारत सरकार और शेख मुहम्मद अब्दुल्ला के मध्य समझौता हुआ जिसे कश्मीर एकार्ड का नाम दिया गया। इस समझौते के अन्तर्गत 1975 में शेख मुहम्मद अब्दुला पुन्: रियासत के मुख्यमंत्री बने।

शेख पुनः सत्ता में

1975 में शेख साहिब पुनः सत्ता में आए। उन्होंने भ्रष्टाचार उन्मूलन आन्दोलन चलाया। 1976 में देश में जब आपात स्थिति घोषित हुई तो शेख सरकार ने अपने विरोधियों और सरकारी कर्मचारियों को जेल में बन्द किया जिससे उनकी लोकप्रियता में कमी आई।

सन् 1977 में केन्द्र में जनता पार्टी सत्ता में आई। शेख साहिब ने पुरानी विधान सभा भंग करने के लिए राज्यपाल से अनुरोध किया। राज्यपाल ने उनका अनुरोध स्वीकार किया और विधान सभा भंग कर दी। विधान सभा के जब नये चुनाव हुए तो उसमें उनकी पार्टी को बहुमत मिला और वे पुनः मुख्यमंत्री बन गए। सन् 1982 में शेख अब्दुल्ला के देहावसान के बाद फारुख अब्दुल्ला जम्मू कश्मीर राज्य का मुख्यमंत्री बना।

फारूख अब्दुल्ला

फारुख सरकार 1982 में सत्ता में आई। आरम्भ में तो केन्द्र ने उसका समर्थन किया किन्तु बाद में विरोध शुरू किया। किन्तु 1983 में जब चुनाव हुए तो फारूख सरकार पुनः सत्ता में आ गई। फारुख राजनीति में अपरिपक्व था अतः एक षड्यंत्र में उसके बहनोई गुलाम मुहम्मद शाह ने उसकी पार्टी के कुछ सदस्यों को अपनी ओर मिलाया और कांग्रेस के समर्थन से मुख्य मंत्री बन गया। उसके शासन काल में साम्प्रदायिक दंगे भड़के जिसके कारण राज्यपाल ने उसकी सरकार को बर्खास्त कर दिया। रियासत में राष्ट्रपति राज्य लागू हुआ। राज्यपाल जगमोहन ने राष्ट्रपति राज्य में रियासत का बहुत विकास किया। अन्ततः 1986 में पुनः चुनाव हुए। इन चुनावों में फारुख अब्दुल्ला की पार्टी पुनः सत्ता में आई। कांग्रेस ने भी फ़ारुख को समर्थन दिया।

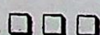
फारुख के दूसरी बार मुख्यमंत्री बनने के बाद कश्मीर घाटी में अलगाववादी शक्तियों ने पाकिस्तान का समर्थन प्राप्त कर के रियासत में विध्वंसकारी गतिविधियां आरम्भ की।

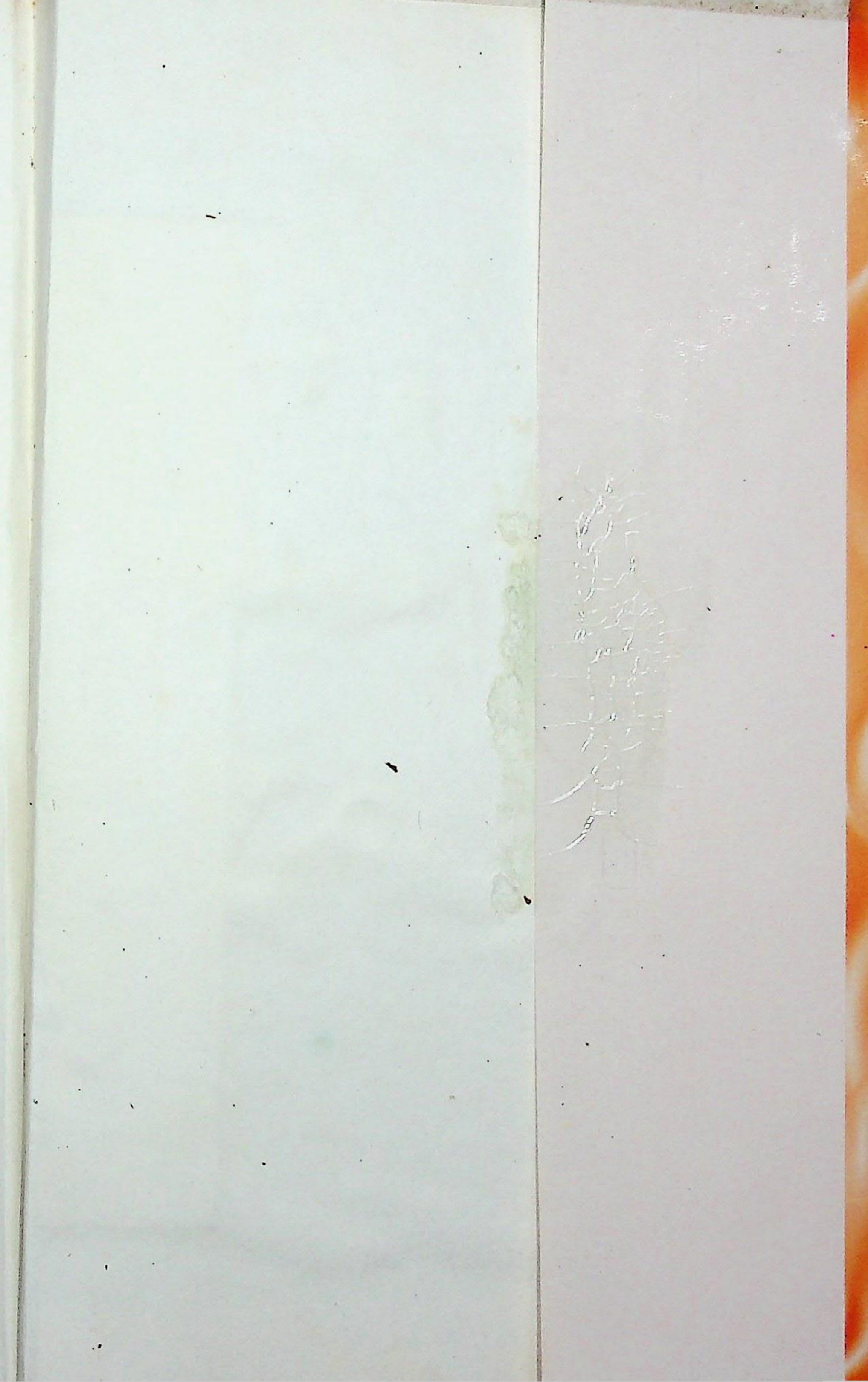
भारत में जब नये चुनाव हुए तो उसमें कांग्रेस पार्टी हार गई और जनता दल ने सरकार गठित की जिसमें कश्मीर के नेता मुफ्ती मुहम्मद सैय्यद भारत गणराज्य के गृहमंत्री बने। उनकी पुत्री रुविया का उग्रवादियों ने अपहरण किया। कश्मीर सरकार ने रुविया को छुड़ाने के लिए उग्रवादियों की मांगें मान लीं और उनके पांच नेता जेलों से मुक्त किये। उग्रवादियों ने इसे अपनी बड़ी सफलता माना। उन्होंने प्रोत्साहित होकर कश्मीर में तोड़ फोड़ शुरू कर दी। जिससे भयभीत होकर अल्पसंख्यक समुदाय के लोग घाटी से भागने लगे। केन्द्र सरकार ने ऐसी विकट स्थिति में जगमोहन को राज्य का राज्यपाल नियुक्त किया। फारुक सरकार ने जगमोहन को राज्यपाल के रूप में स्वीकार नहीं किया और त्यागपत्र दे दिया।

जगमोहन ने विधानसभा को भंग किया और रियासत में राष्ट्रपति शासन घोषित हुआ। जगमोहन के शासनकाल में कश्मीर से लाखों लोगों ने पलायन किया और वे जम्मू आ गए। जगमोहन के समय में शासन काल में कश्मीर में उग्रवाद में कमी नहीं आई। कई ऐसी घटनाएं भी हुईं जिन से विवश होकर जगमोहन ने त्यागपत्र दे दिया। उनके स्थान पर सेवा निवृत्त जनरल कृष्णा राव रियासत के नए राज्यपाल बने। उनके शासन काल में उग्रवाद चरम सीमा पर पहुंचा अन्तत: 1996 में विधान सभा के चुनाव हुए जिसमें डॉ० फारुक अब्दुला के नेतृत्व में नई सरकार ने शपथ ग्रहण की।

सहायक ग्रंथ सूची

1. राजदर्शनी – गणेशदास भटैहड़ा
2. तारीख डोगरा देश – नृसिंह दास नर्गिस
3. गुलाब नामा – दीवान ज्वाला सहाय
4. डुग्गर का सांस्कृतिक इतिहास – सं. ओम गोस्वामी
5. हिमाचल प्रदेश – ऐतिहासिक और सांस्कृतिक अध्ययन – पद्म चन्द्र कश्यप
6. कुलुत देश की कहानी – लाल चन्द्र प्राथी।
7. वासुकि पुराण– प्रियतम कृष्ण कौल
8. महाराजा रंजीत देव – डॉ सुखदेव सिंह चाड़क
9. हिस्टरी एंड कल्चर आफ हिमालियन स्टेट– डॉ. सुखदेव सिंह चाड़क
10. जनरल जोरावर सिंह – डॉ. सुखदेव सिंह चाड़क
11. ए शार्ट हिस्टरी आफ जम्मू किंगडम – डॉ. सुखदेव सिंह चाड़क
12. लाइफ एंड टाईम्स आफ महाराजा रणजीत सिंह – डॉ. सुखदेव सिंह चाड़क
13. द जम्मू फाक्स – डॉ. वावा
14. तारीख ए किश्तवाड़ – शिवजी धर
15. तारीख ए खानदान ए शाही डोगरा – रामजू धर
16. पुंछ – सुखदेव मैनी
17. तारीख ए राजगान ए जम्मू व कश्मीर – काहन सिंह बलौरियां
18. डुग्गर के लोक नायक – प्रो० रामनाथ शास्त्री
19. राज तरंगिणी – कल्हण
20. डुग्गर की संस्कृति – शिव निर्मोही
21. डुग्गर की लोक गाथाएं – शिव निर्मोही
22. द जम्मू एंड कश्मीर आर्मी– पायलट
23. फाउंडर आफ जम्मू एंड कश्मीर – पाणिकर
24. डोगरा–हिस्टरी एंड कल्चर – कनिंघम
25. शीराज़ा डोगरी – कल्चर अकादमी जम्मू
26. साढ़ा साहित्य – कल्चरल अकादमी जम्मू
27. चम्बा जिला का इतिहास:– मंगत राम वर्मा







लेखक परिचय

नाम–शिवदत
उपनाम–निर्मोही
लेखकीय नाम–शिव 'निर्मोही'
पिता का नाम–सावन मल उपाध्याय
जन्म स्थान–पैंथल (उधमपुर)
जन्म तिथि–19.4.1937
शिक्षा–एम. ए., साहित्य रत्न, प्रभाकर, बी. एड
व्यवसाय–अध्यापन

प्रकाशित रचनाएं

1. डुग्गर की लोक गाथाएं (जम्मू कश्मीर ललित कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी द्वारा पुरस्कृत)
2. डुग्गर का लोक साहित्य (जम्मू कश्मीर ललित कला, संस्कृति एवं भाषा अकादमी द्वारा पुरस्कृत)
3. डुग्गर की संस्कृति–केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय द्वारा पुरस्कृत
4. डुग्गर के देव स्थान-विनोद बुक डिपो, जम्मू द्वारा प्रकाशित
5. डुग्गर का भाषायी परिचय-नरेन्द्रा-पब्लिशिंगहाऊस द्वारा प्रकाशित
6. डुग्गर के लोक देवता-साहित्य संगम, जम्मू द्वारा प्रकाशित
7. डुग्गर के अमर सेनानी-साहित्य संगम, जम्मू द्वारा प्रकाशित
8. डोगरा गाँव पैंथल-मल्होत्रा ब्रदर्स; पक्का डंगा द्वारा प्रकाशित
9. डुग्गर की दन्त कथाएँ-मल्होत्रा ब्रदर्स, पक्का डंगा द्वारा प्रकाशित
10. स्वामी नित्यानन्द-नित्यानन्द स्मारक पैंथल द्वारा प्रकाशित
11. कश्मीर की कहानी-सूचना विभाग द्वारा पुरस्कृत
12. आलोचना सिद्धान्त–(सह-लेखक) जम्मू विश्वविद्यालय के बी. ए. प्रथम भाग के हिन्दी विषय में पाठ्य पुस्तक निर्धारित।

शिक्षा विभाग द्वारा स्टेट अवार्ड से सम्मानित कई साहित्यिक और सांस्कृतिक संस्थाओं द्वारा सम्मानित।

सम्प्रति

प्राचार्य, शिवालिक कॉलेज ऑफ एजुकेशन उधमपुर (जम्मू व कश्मीर)